

मुद्रक और प्रकाशक
जीवणजी डाह्याभाजी देसाजी
जीवन मुद्रणालय, अहमदावाद - १४

सर्वाधिकार नवजीवन ट्रस्टके अधीन

पहली आवृत्ति २०००, १९४७
पुनर्मुद्रण २०००, १९५३
पुनर्मुद्रण ११०००, १९५७

हो जायं। आज अनुका महत्त्व है। जब तक अनुका यह महत्त्व कायम रहेगा, तब तक वे जीवित रहें तो काफी है।

‘श्री विष्णुकी आज्ञासे प्रवर्तित’ अतिहासक्रमके कारण हिन्दुस्तानमें दुनियाके करीब-करीब सभी धर्म अिकट्टा हो गये हैं। हिन्दमाताकी अमृत-दृष्टिके कारण ये सब धर्म अेक ही परिवारके बालकोंकी तरह यहां रहेंगे। अिस परिवार-धर्मका स्वीकार करके हरअेक धर्म दूसरे धर्मोंके त्यौहारोंको अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार अपने जीवनमें स्थान दे, यह अुचित है। अिस तत्त्वको ध्यानमें रखकर हमने अपनी योजनामें कअी त्यौहार बड़ा दिये हैं। अिस तत्त्वका स्वीकार करने पर भी हमने अुसका नियम नहीं बनाया है। यही अुचित क्रम होगा कि अपने जीवनमें जो-जो चीज स्वाभाविक रूपसे दाखिल हो जाय अुसका विचारपूर्वक स्वागत किया जाय। हमारी अिस योजनामें पारसी त्यौहारोंको स्थान नहीं दिया गया है। अिसका कारण यह नहीं है कि हम अिस धर्मका महत्त्व कम समझते हैं, बल्कि यह है कि हमारी संस्थामें (आश्रममें) अभी तक यह सहकार बढ़ नहीं पाया है।

हम दृढ़ताके साथ यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानमें बसे हुअे सभी धर्मोंके पीछे हिन्दमाताका अेक सर्वसंग्राहक विश्वप्रेमी प्रेमधर्म है। अिस अुदार और सर्वसहिष्णु धर्मका प्रभाव जैसे-जैसे हरअेक धर्म पर पड़ता जायगा, वैसे-वैसे सब धर्मोंमें पारिवारिक भाव बढ़ता जायगा। हमारी योजनामें अिस बातको स्वीकार किया गया है। फिर भी हमने अैसी कोशिश नहीं की है कि जान-बूझकर भविष्यके प्रवाहको किसी विशेष मार्गमें ही मोड़ दिया जाय। पुरानी चीजोंमें से जो चीजें सार्वभौम धर्मतत्त्वकी विरोधी और देशकालके लिये अनचित्त मालूम हुअीं अुन्हें छोड़ दिया है। जो निर्दोष होते हुअे भी क्षीणसत्त्व और कालग्रस्त हो गअी हैं, अुन्हें कृत्रिम ढंगसे बनाये रखनेका प्रयत्न हमने नहीं किया है। हमारी योजनामें भविष्यकालकी तैयारीकी दृष्टि है। फिर भी अुसका ज्यादा अत्तर योजना पर नहीं पड़ने दिया है, क्योंकि भविष्यकालकी दिशाका निश्चित दर्शन होनेमें अभी कुछ देर है। वर्तमानकालकी बाकांदायें और भूतकालसे मिली हुअीं नकद विरासतका ही हमने विशेष विचार किया है।

निरुत्साही और निर्जीव शिक्षा-विभागकी शिक्षण-प्रथा सब जगह फैली हुअी है। अिसलिये स्कूलोंकी तरफसे त्यौहार मनानेका कार्य मुश्किल है, यह समझकर और निरुद्यमी समाजके अुद्यमी होनेके प्रयत्नमें त्यौहार वावाह्य न

प्रकाशकका निवेदन

सत्याग्रह आश्रमकी पाठशालाका एक नियम यह था कि जब वहाँका विद्यार्थी-मण्डल किसी अुत्सवके लिये अपना कोझी अच्छा-सा कार्यक्रम तैयार करके शिक्षकोंके पास पहुँचता, तभी अुस दिनका अुत्सव मनानेकी विजाजत दी जाती। माना यह जाता था कि बिना किसी कार्यक्रमके सुस्ती और बेकारीमें ही दिन बितानेको अुत्सव कहा जाता हो, तो शिक्षाकी दृष्टिसे बेहतर यह है कि वैसा अुत्सव मनाया ही न जाय।

अुत्सव-प्रिय विद्यार्थी कुछ कार्यक्रम तो तैयार करते ही थे। अगर कार्यक्रम तैयार करनेके आलस्यके कारण अुन्हें अुत्सव खोना पड़े, तो वह अुनकी युवक शोधक-बुद्धिके लिये लांछनरूप ही होता। लेकिन अगर मनचाहे अुत्सव मनाने हों, तो कार्यक्रमोंमें नवीनता और विविधता भी होनी चाहिये। बिसलिये बिस पर अपनी बुद्धि खर्च कर चुकनेके बाद विद्यार्थी शिक्षकोंसे सुझाव मांग-मांगकर अुन्हें परेशान किया करते थे। शिक्षक भी अुत्सव द्वारा अपनी शिक्षण-कलाका विकास करनेके लिये अुत्सुक थे ही। फिर, धार्मिक और सामाजिक शिक्षाके लिये अुत्सवसे बढ़कर सुलभ और सरस साधन दूसरा क्या हो सकता था ?

दोनों तरफकी बिस भूखका विचार करके शिक्षक-मंडलने यह निश्चय किया कि अुत्सवके समारोह, अुसके कार्यक्रमकी दिशा, अुस पर खर्च किया जाने-वाला समय, अुसका सामाजिक और धार्मिक महत्त्व — वगैरा कझी तरहके प्रश्नों पर विचार करके एक छोटा मार्गदर्शक सूचनापत्र तैयार किया जाय। और, शिक्षक-मंडलने यह काम श्री काकासाहब कालेलकरको सौंपा। 'जीवनका काव्य' अुसीका परिणाम है।

गुजरातीमें बिस पुस्तकके पहले दो संस्करणोंका आशासे अधिक स्वागत हुआ। बिससे पता चलता है कि हमारे धार्मिक जीवनकी जड़ें जितनी हम मानते हैं, अुससे ज्यादा गहरी हैं। यदि आजकलकी आलोचनात्मक दृष्टिके साथ समाजमें पुराना धार्मिक वाचन एक सामाजिक रिवाज या संस्थाके रूपमें रूढ़

होता, तो उससे समाजको कीमती लोक-शिक्षण मिला होता। जब तक दूसरी तरहसे इस कमीकी पूर्ति न हो, तब तक अिन त्यौहारोंके बारेमें अलग-अलग अवसरों पर श्री काकासाहबने जो लेख या टिप्पणियां लिखी हैं, उनका संग्रह कर देनेसे समाजको अपने सामाजिक और धार्मिक जीवनको फिरसे सजीवन करनेमें थोड़ा मार्गदर्शन अवश्य प्राप्त होगा, इस विचारसे जैसे लेखोंका संग्रह इस पुस्तकमें किया गया है।

आजके जमानेमें निरी श्रद्धासे काम नहीं चलता, और न कोरी तार्किक अश्रद्धासे ही समाजकी आत्माको सन्तोष होता है। लोक-हृदयको पौष्टिक आहार तो जैसे ही लेखोंसे प्राप्त हो सकता है, जिनमें अिन दोनोंका समन्वय किया गया हो।

यहां इस बातकी कोभी कल्पना नहीं की गयी है कि पिछले सौ दो-सौ वर्षोंमें जिस मुग्ध रीतिसे हमारा धार्मिक जीवन निभता आया है, उसका वही ढंग हमेशा बना रहे। हमें अपने युगको अपनी व्यापक आवश्यकताओंके अनुसार नयी-नयी कृतियोंसे सजाना होगा। आशा है, इसके लिये आवश्यक दृष्टिका निर्माण करनेमें ये लेख सहायक होंगे और धार्मिकताका वातावरण उत्पन्न करेंगे।

३१-५-'३९

नोट :— इस पुस्तकमें दी गयी तिथियां अमान्त मासके अनुसार हैं, जो दक्षिण और पश्चिम भारतमें प्रचलित हैं। उत्तर भारतमें महीनेका प्रारंभ कृष्ण (वदी) पक्षसे होता है। अतः कृष्णपक्षकी तिथियोंमें अेक महीनेका फर्क पड़ जाता है। इसका अुल्लेख इस संस्करणमें आवश्यकताके अनुसार किया गया है।

१५-६-'५७

अनुक्रमणिका

प्रकाशकका निवेदन	३
१. जीवित त्यौहार	३
२. अुत्सवके अुपवास	६
३. जयन्ती	८
४. त्यौहारोंकी सूची	१०
५. ध्वजारोपण	१२
ध्वजारोपण	१५
६. रामनवमी	१६
रामनवमी	१९
७. महावीर-जयन्ती	२०
१. महावीर स्वामी	२०
२. विश्वधर्म	२३
महावीर-जयन्ती	२७
८. लोगोंके हनुमान	२७
हनुमान-जयन्ती	३०
९. परशुराम और बुद्ध	३१
अधय-तृतीया	३३
१०. धर्ममणि श्री शंकराचार्य	३४
शंकर-जयन्ती	३७
११. बोधि-जयन्ती	३७
१. बोधि-प्राप्ति	३७
२. भगवान बुद्ध	३९
३. अेशियाका धर्मसम्राट्	४५
४. बुद्ध-अवतार	४९
बोधि-जयन्ती	५०
१२. मृत्यु विरुद्ध प्रेम	५१
वट-सावित्री	६५

१३. आषाढी महाअेकादशी	६५
१४. आचार्यदेवो भव गुरु-पूर्णिमा	६६ ६७
१५. नागपंचमी नागपंचमी	६७ ६९
१६. श्रावण-सोमवार	६९
१७. श्रावण-पूर्णिमा	७०
१८. जन्माष्टमी	७१
१. लोकनायक श्रीकृष्ण	७१
२. जन्माष्टमीका अुत्सव	७३
३. प्रतीक्षा	७९
४. दिव्य जन्म-कर्म	८१
५. जन्माष्टमी	८६
जन्माष्टमी	८९
१९. गणपतिकी अुपासना गणेश-चतुर्थी	९० ९५
२०. चरखा-द्वादशी	९६
२. गांधी-सप्ताह चरखा-द्वादशी	९९ १०२
२१. नवरात्रि	१०२
१. नवरात्रि	१०२
२. शारदाका अुद्बोधन सरस्वती-पूजा	१०४ १०५
२२. दशहरा	१०६
१. विजयादशमी	१०६
२. क्या यही दशहरा है ? दशहरा	११३ ११३
२३. सार्वभौम धर्म शरद् पूर्णिमा	११४ ११५
२४. घनतेरस	११६

२५. नरक-चतुर्दशी	११६
२६. दीवाली	११७
१. वलिका राज्य	११७
२. दीवाली	११९
३. मृत्युका अुत्सव	१२१
४. छोटे भाजीके विना दीवाली !	१२२
दीवाली	१२३
२७. नया वर्ष	१२४
२८. कहां है भैयादूज ?	१२४
भैयादूज	१२७
२९. महाअैकादशी	१२८
३०. युद्ध-गीताकी जयन्ती	१२९
गीता-जयन्ती	१३२
३१. दत्त-जयन्ती	१३२
३२. संक्रांति	१३३
मकर-संक्रांति	१३५
३३. वसन्त	१३६
३४. मंगलमूर्ति भीष्म	१३८
भीष्माष्टमी	१४१
३५. महाशिवरात्रि	१४२
१. हरिणोंका स्मरण	१४२
२. अेक पत्र	१४४
महाशिवरात्रि	१४६
३६. गुलामोंका त्यौहार	१४७
होली	१५०
३७. धर्म-रक्षक शिवाजी	१५१
शिवाजी-जयन्ती	१५५

अन्यघर्नी त्यौहार

३८. प्रेमवीर ब्रह्मचारी	१५६
वड़ा दिन	१५७

३९. मुहूर्म	१५७
मुहूर्म	१५८
४०. अंकताका त्यौहार	१५८
वक्र-अद	१६१

राष्ट्रीय त्यौहार

४१. स्वराज्य-महाव्रत	१६२
राष्ट्रीय सप्ताह	१६३
४२. गोखलेजीको श्रद्धांजलि	१६४
गोपालकृष्ण गोखले	१७३
४३. त्यागी देशबन्धु	१७४
देशबन्धु-पुण्यतिथि	१७५
४४. दादाभाजी नौरोजी	१७६
४५. स्वर्गीय लोकमान्य तिलक	१७६
तिलक-पुण्यतिथि	१८८

सन्त-जयन्ती

४६. नरसिंह मेहता .	१८९
४७. मीरा	१८९
४८. चोखामेळा	१९०
४९. जनावाडी	१९१
५०. जीवित अतिहास	१९३
आवश्यक वाचन	१९५

जीवनका काव्य

जीवित त्योंहार

भेड़ियेके समान खाना, विल्लीके समान जंभाना और अजगरके समान पड़े रहना ही कहीं कहीं त्योंहारका प्रमुख लक्षण हो गया है। अेक त्योंहारके मानी हैं कम-से-कम तीन दिनकी खराबी। अिस हालतमें से त्योंहारोंको बचाना हमारा प्रधान कर्तव्य है।

हमने अिस दृष्टिसे भी विचार किया कि 'त्योंहारोंको निकाल ही दिया जाय तो क्या हो?' हर रोजकी आवश्यक और स्फूर्तिदायक प्रवृत्तिको शिथिल करना, अैसे कपड़े पहनना जो अपनी हैसियतसे बाहरके हों, तरह-तरहके मिष्टान्न खाकर अिन्द्रियोंको लालचकी लत लगाना और ताश, शतरंज, चौसर आदि फिजूलके बैठे-खेलोंमें वक्तको बरबाद करनेमें अेक-दूसरेको अुत्तेजन देना— अितना ही अगर त्योंहारोंका अर्थ होता हो, तो अुन्हें निकाल देना ही ठीक है।

लेकिन हमारी कल्पनाके अनुसार त्योंहारों और अुत्सवोंका जीवनमें अेक विशिष्ट और महत्त्वका स्थान है। त्योंहारोंके जरिये ही हम संस्कृतिके कभी अंगोंकी अच्छी तरह रक्षा और विकास कर सकते हैं। विशेष प्रसंगों और अुनके महत्त्वोंको याद रख सकते हैं। ऋतुओंके परिवर्तनके अनुसार जीवनमें विशिष्ट परिवर्तन यथासमय संकल्पपूर्वक शुरू कर सकते हैं। और सामाजिक जीवनमें परस्पर सहकारके साथ ही अैक्यको भी ला सकते हैं।

कितनी ही वृत्तियां मनुष्य-हृदयके लिअे अितनी स्वाभाविक हैं कि अगर अुनका नियमन न किया जाय, तो वे बेहद बढ़कर सारी जिन्दगीको बरबाद कर देती हैं। अुनका सीधा विरोध या बाह्य निरोध करना संभव अथवा सुरक्षित नहीं होता। दबावकी बजहसे वे विकृत बनती हैं और चोरीसे या अस्वाभाविक रीतिसे अपनी तृप्तिकी तलाशमें रहती हैं। अिनमें से कभी वृत्तियां सीमित स्वरूपमें क्षम्य ही नहीं, बल्कि हितकारक भी होती हैं। अुनका नाश करनेके बजाय अगर अुन्हें विशुद्ध बनाकर अुन्नतिके रास्तेकी ओर मोड़ दिया जाय, तो संपूर्ण शिक्षामें अुससे काफी मदद पहुंचती है। यह कार्य कभी-कभी सामाजिक रीतिसे ही भलीभांति सवता है। अिसमें अिन त्योंहारोंसे खासी मदद मिल सकती है।

त्यौहारोंके बारेमें हमने यह दृष्टिविन्दु रखा है कि त्यौहारका दिन चाहे जिस तरह समय अड़ाने या आराम करनेका छुट्टीका दिन नहीं है। त्यौहार और अुत्सव दोनों शिक्षाके नैमित्तिक और कीमती अंग हैं। और अिसीलिअे जहां तक हो सके, पुरानी प्रथाको ध्यानमें रखकर त्यौहारोंके कार्यक्रम अिस तरहके सुझाये गये हैं कि अुस दिनका वैशिष्ट्य तो भली-भांति समझमें आ ही जाय और फिर भी प्रत्येक कार्यक्रम अितना हलका रहे कि त्यौहारकी थकानको दूर करनेके लिअे अुसके बादका दिन खराब न करना पड़े। अैसी अनिष्ट स्थिति नहीं आनी चाहिये कि रात तो जागरणमें विता दी और अगला दिन दिवानिद्रामें।

कुछ त्यौहार ही अैसे हैं कि जो महत्त्वके होते हुअे भी अुनके पीछे कोअी खास कार्यक्रम नहीं हो सकता। हमने अुन्हें आधे दिनका त्यौहार माना है।

अिससे भी आगे जाकर हमने कअी प्रसंग अैसे माने हैं कि जो आज अुत्सवों या त्यौहारोंमें नहीं गिने जाते; फिर भी जिनका महत्त्व विद्यार्थियोंके सामने वर्षानुवर्ष रखना ही चाहिये। अैसे प्रसंगोंके लिअे दिनमें अगर अेकाध घंटा दे दिया जाय तो काफी है। हमारी सिफारिश है कि चालीस मिनट, पौन घंटा या अेक घंटा, जिस प्रकारका समय-विभाग होगा वैसा अेक विभाग, अैसे प्रसंगोंके लिअे दिया जाय।

अुत्साही संस्थायें हर साल नये-नये त्यौहार खोज सकेंगी और अुससे त्यौहारोंकी वड़ी संख्यामें और भी वृद्धि कर सकेंगी। लेकिन अुसमें अगर अुचित संयम न हो, तो अल्पजीवी क्षुद्र त्यौहारोंके वढ़ जानेकी बहुत आशंका है। कअी त्यौहार अैसे हैं जिन्हें चाहिये कि वे जीवनधर्मका अनुसरण करके विस्मृतिके गर्भमें लुप्त हो जायं और नये त्यौहारोंके लिअे जगह खाली कर दें। त्यौहार तो मानव-जीवनके लिअे हैं। अिसलिअे मानव-जीवनके साथ अुनमें परिवर्तन होना ही चाहिये।

कुछ त्यौहार महावृक्षकी तरह सैकड़ों या हजारों वरस जीवित रहते हैं। कुछ साधारण वनस्पतिकी तरह थोड़े समयके लिअे जीवित रहकर अपना कार्य समाप्त करते हैं। पुराणप्रिय सनातन धर्ममें जो कअी दीर्घजीवी त्यौहार हैं अुनकी कद्र हमारी योजनामें की हुअी दिखाअी देगी। अुनमें कअी नये त्यौहार जोड़ दिये गये हैं और वह भी संयमपूर्वक। हमारी न यह अपेक्षा है और न अिच्छा ही कि अिस नअी वृद्धिके सभी त्यौहार दीर्घजीवी

हो जायं, अिसलिअे हरअेक त्पौहारका कार्यक्रम वहुत ही हलका रखा है। फिर भी अुनमें सृजनात्मक अथवा विघ्नअयक शिक्षाके विकासका स्पष्ट वीजारोपण है। शालेय जीवन जैसे-जैसे समृद्ध होता जायगा, वैसे-वैसे अिस वीजका विकास आप ही आप होता जायगा। लेकिन यह सब शिक्षकोंकी प्रतिभा और विद्यार्थियोंके अुत्साह पर निर्भर है।

कुछ नहीं तो हमारे शिक्षक, विद्यार्थी और मां-वाप, सबको प्रसन्न परिस्थितिमें अेकसाथ ले आनेके प्रसंगोंके रूपमें तो ये त्पौहार महत्त्वके हैं ही। समाज-सुस्थितिका चिन्तन करनेवाले चतुर शिक्षक अैसे अुत्सवोंसे लाभ अुठाकर अनायास सामाजिक प्रश्नोंके वारेमें लोक-मानसको जाग्रत करेंगे और अिस तरह लोक-शिक्षणका छोटा-सा प्रारंभ करेंगे। दूसरे, हमारे बढ़ते हुअे सामाजिक जीवनमें अेक ही दिशामें, लेकिन अलग-अलग मार्गोंसे जानेवाली संस्थाओंका परस्पर परिचय बढ़ानेमें भी हमारे अुत्सव काफी हिस्सा ले सकते हैं। स्नेह-सम्मेलनोंकी अपेक्षा समाज-मान्य अुत्सवोंके प्रसंग ही अिस प्रकारका परिचय नम्रताके वायुमंडलमें अधिक स्वाभाविक ढंगसे करा सकते हैं। सारांश, विद्यार्थियोंका सर्वांगीण विकास हो, हृदयके अुच्च भाव विशिष्ट रूपसे विकसित हों, और अुनके द्वारा मुख्यतः धार्मिक और सामान्यतया सामाजिक शिक्षाका आह्लाद-दायक साधन मिले, यही अुद्देश्य हमने अपने सामने रखा है।

२

अुत्सवके अुपवास

अेक मित्र पूछते हैं, 'जन्माष्टमी या रामनवमी जैसे दिनोंको तो असलमें अुत्सव और आनन्दके दिन मानना चाहिये। अुस दिन मिष्टान्न भोजन करनेके वदले अुपवास करनेकी प्रथा क्यों पड़ गअी होगी?'

प्रश्न पूछनेवाले तो मानो अैसा ही मानते मालूम होते हैं कि अुपवास दुःख या शोकके अवसर पर ही किया जाय। अुनसे हम पूछते हैं कि अगर अैसा ही होता, तो रूढ़िचुस्त लोग अितने वड़े-वड़े मृतभोज क्यों करते होंगे? अुपवासको हमने दुःख या संकटका चिह्न नहीं वनाया है। यह वात सही है कि जब चित्तमें ग्लानि हो, दुःखसे दवे हुअे हों, तो अैसे अवसर पर आरोग्यके नियमके अनुसार न खाना ही अुचित्त है। हृदयकी स्वाभाविक

अुत्सवके अुपवास

प्रेरणा भी यही सुझाती है। आरोग्यके नियमकी दृष्टिसे देखा जाय, तो जिस वक्त दिलको बहुत खुशी हुयी हो अुस वक्त भी हमें कुछ नहीं खाना चाहिये। मिष्टान्न भोजन या अति-आहार तो करना ही नहीं चाहिये। दुःखमें जिस तरह पाचन-शक्ति क्षीण हो जाती है, अुसी तरह आनन्दकी अुत्तेजनामें और क्षोभमें भी क्षीण हो जाती है। जिसलिये किसी भी कारणवश चित्तका स्वास्थ्य नष्ट हो गया हो, तो अुस समय अनशन या अल्पाहार ही अुचित है।

जन्माष्टमी जैसे अुत्सवके अवसर पर हम जो अुपवास करते हैं अुसका अुद्देश्य जिससे भी विशेष है। जन्माष्टमी कृष्णजन्मका समारोह नहीं, बल्कि कृष्णजन्मकी साधना है। द्वापर या त्रेतायुगमें कृष्णजन्म हुआ अुससे हमें क्या मतलब? जब हमारे हृदयमें कृष्णजन्म होगा अुसी समय हम पुनीत होंगे।

हमारे वचनमें जिस प्रकारके अुपवास करनेका हमें अधिकार न था। अुपवास तो घरके बड़े-बूढ़े लोग ही करते थे। हम तो बच्चे थे। दोनों शाम डटकर भोजन करके पूजामें मदद करना ही हमारा धर्म था। हालत यह थी कि घरके बड़े लोगोंको अुपवास करते देख हम भी अुपवास करनेका हठ पकड़ते और रो-बोकर और कभी मार खाकर भी न खानेका अधिकार प्राप्त करते थे।

सच देखा जाय तो अुपवास अेक साधना है। जिस तरह नहानेसे पवित्रताका अनुभव होता है, और मौन धारण करनेसे आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त किया जाता है, अुसी तरह अुपवाससे हम अन्तर्मुख होते हैं; और सात्त्विक वृत्तिको भी विकसित कर सकते हैं। हरअेक भोजनके साथ शरीरमें अेक प्रकारकी जड़ता तो आ ही जाती है। अुसे टालकर शरीरका बोझ हलका करनेसे ध्यान या अुपासनाके लिये अनुकूल परिस्थिति पैदा होती है अुपनयन, अुपनिषद्, अुपवास और अुपासना ये चारों शब्द अेकते हैं। जिन तरह ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ वीर्यरक्षा नहीं है, अुसी तरह अुपवासका मूल भी अनशन नहीं है। ब्रह्मचर्यके मानी हैं, अीश्वर-प्राप्तिके लिये वेदशास्त्रोंमें अध्ययनमें तन्मय हो जाना। चूँकि यह कार्य वीर्यरक्षाले ही संभव है, जिस-लिये वीर्यरक्षाले ही खास करके ब्रह्मचर्य नाम दिया गया। अुपवासमें भी यही भाव है। अुपवास यानी परमात्माके पास रहना, अुसके सान्निध्यका अनुभव करना। जो व्यक्ति जिन्द्रियोंकी तृप्ति करनेमें लगा रहता है, वह अीश्वरका नाम लेते हुअे भी अीश्वरके सान्निध्यका अनुभव नहीं कर सकता। आहार-मात्रका त्याग करके अथवा शरीर-प्रकृतिके साम्यकी रक्षा करनेके लिये

अल्प मात्रामें सात्त्विक आहार करके परमात्माका स्मरण करना, अुसकी भक्ति करना, अुसकी निकटताका अनुभव करना — जिसका नाम है अुपवास । यही अुपासना है । यह देखकर कि अुपासकके लिये आहार कम करनेके अलावा दूसरा मार्ग ही नहीं है, धार्मिक साधनाके लिये किये हुअे अन्नत्यागको ही अुपवास कहने लगे । कृष्णजन्म या रामजन्मके दिन यह आध्यात्मिकता, यह साधक-वृत्ति, लानेके लिये अुपवास रखा गया है ।

३

जयन्ती

अीश्वरकी सृष्टिमें असंख्य मनुष्य पैदा होते हैं । अुन सबकी जयन्ती हम नहीं मनाते । जिनके जीवन-रहस्यका अपने हृदयमें पुण्य-पावन अुदय हुआ हो अुन्हींकी जयन्ती हम मनाते हैं । करोड़ों लोगोंका जीवन तो आये दिनको किसी तरह काटनेमें ही बीत जाता है । मनुष्यको परेशान करनेवाले, अुसे पामर बनानेवाले, कभी शत्रु हैं । अुनके विरुद्ध लड़नेवालोंकी संख्या अत्यन्त अल्प होती है । शत्रुको किसी तरह टाल देना अथवा कायरताके साथ अससे समझौता करना और युद्धकी तकलीफसे जान बचाना — यही सामान्य लोगोंका जीवन-क्रम होता है । लेकिन जिस तरीकेसे शत्रु नहीं टलता । वह तो बार-बार सामने आकर खड़ा रहता ही है । और हर बार समझौतेकी अधिकाधिक कीमत मांगता जाता है । यह कीमत केवल पैसेसे नहीं चुकायी जा सकती । वह तो प्राण, तेजस्विता और स्वतंत्रतासे चुकानी पड़ती है । हरअेक मनुष्यके दिलमें अिन तीनों चीजोंकी चाह तो हुआ ही करती है, लेकिन सिर देकर तेजस्विता और स्वतंत्रताकी रक्षा करने या अुसे प्राप्त करनेकी सामर्थ्य जिसके अन्दर हो, अुसीको वीर पुरुष कहा जाता है, अुसीको विजयी कहते हैं । मनुष्य-जातिके शत्रु पर जिसने विजय पायी है, अुसीकी जयन्ती हम मनाते हैं । जयन्तीका अर्थ ही यह है ।

लेकिन हम जयन्ती मनाते ही किसलिये हैं ?

दो किस्मके लोग जयन्तियां मनाते हैं : अेक वे हैं, जो वीर पुरुषोंसे प्रेरणा पानेकी अिच्छा रखते हैं; और दूसरे वे, जो अुनसे रक्षा चाहते हैं ।

अेक वर्ग वीरोंका अुपासक होता है और दूसरा अुनका आग्रित। पहले वर्गको वीरोंके वीरकर्मसे प्रेरणा, अुत्साह और सामर्थ्य मिलती है। वीरोंकी अुपासना करके वे स्वयं वीर बन जाते हैं। दूसरा वर्ग पामर होता है। ये लोग हमेशा भयभीत दशामें रहते हैं; त्यागसे डरते हैं। कहते हैं, 'बिस भयभीत दशासे जो हमें मुक्त करेगा, हमें आश्वासन देगा, वही हमारा स्वामी है। अुसीका हम जय-जयकार करेंगे, अुसकी प्रसन्नता प्राप्त करेंगे, और अुसके वीरकर्मके आश्रयमें हम सुखी रहेंगे। वह अगर चला जाय, तो अीश्वरसे हम प्रार्थना करेंगे कि हे प्रभो! हमारे लिये दूसरा कोबी नाय भेज दे! हमें सनाय कर!'

अनाथ लोग जब वीरपूजा करते हैं, तो अुस पूजाके पीछे बिसी प्रकारकी अनार्योंकी याचना-वृत्ति रहती है।

वल्लिका वच्चा कहता है, 'अै मेरी मां, आ और मुझे अुठाकर किसी सुरक्षित स्थानमें रख।' पक्षियोंके वच्चे कहते हैं, 'हमारी मां अपने पंखोंको फड़फड़ा कर बताये तो हम भी वैसे ही करेंगे।' बिस प्रकार जयन्तियां दो तरहसे मनायी जाती हैं।

हिन्दुस्तानमें जब तक अनाथ-वृत्तिसे जयन्तियां चलेंगी, तब तक देशमें पुरुषार्थ नहीं आनेका। जैसी श्रद्धा वैसे फल! 'विश्वंभर प्रभुके मनमें जब दया स्फुरेगी, तब वह हमें अलौकिक पुरुष दे देगा, और हम अुसे निचोड़कर — बाजारमें बेचकर — सुखी हो जायेंगे।' बिस प्रकारकी वृत्तिमें जितनी सुरक्षितता है, अुतना ही अवःपतन भी है। पुण्यपुरुषोंके वलिदानसे बिस लोकका वैभव प्राप्त करनेमें पुण्यक्षय है; प्राणक्षय है। पुण्यपुरुषके वलिदानसे जब हममें भी वलिदानकी वृत्ति जाग्रत होगी, तभी यह समझा जायगा कि हमने अुसकी सच्ची अुपासना की है। और तभी हमारा सच्चा अुत्कर्ष होगा।

आज हमें अीश्वरसे अैसी प्रार्थना नहीं करनी चाहिये कि 'हम तो पामर ही रहेंगे। तुम अवतार धारण करके हमारा दुःख-निवारण करो।' हमें परमात्मासे तो यह कहना चाहिये कि 'हे जनार्दन! हमारे हृदयमें ही तुम्हारा अवतार हो जाय। वानरोंको भी वीर पुरुष बनानेवाले अवतार हमें चाहिये। जो हमें स्वावलंबनकी शिक्षा देंगे, वैसे अवतार हमें चाहिये। क्योंकि स्वावलंबनमें हमारा सदैवका अुद्धार है। परावलम्बनमें हमारी अवनति है, हमारा अपमान है।'

स्वावलम्बनकी वीरवृत्तिके साथ महात्माओंकी जयन्ती मनानेमें हम अुनके माहात्म्यके अधिकारी बन जाते हैं। परावलम्बी पामर-वृत्तिसे जयन्ती मनानेमें हम महात्माओंकी दयाके पात्र हो जाते हैं।

और दयाके मानी हैं तिरस्कारका सज्जन स्वरूप !

४

त्यौहारोंकी सूची

चैत	सुदी	१	ध्वजारोपण	अेक समय
	"	९	रामनवमी	१ दिन
	"	१३	महावीर-जयन्ती	" "
	"	१५	हनुमान-जयन्ती	" "
वैसाख	सुदी	३	अक्षय-तृतीया	आधा दिन
	"	१०	शंकर-जयन्ती	" "
	"	१५	बोधि-जयन्ती	" "
जेठ	सुदी	१५	बटसावित्री	१ दिन
	असाढ़			
असाढ़	सुदी	११	महाअेकादशी	आधा दिन
	"	१५	गुरु-पूर्णमा	अेक समय
सावन	सुदी	५	नागपंचमी	१ दिन
	सर्वसोमवार		श्रावण सोमवार	आधा "
	सुदी	१५	रक्षा-बंधन	१ दिन
	वदी	८	जन्माष्टमी	" "
भादों	सुदी	४	गणेश-चतुर्थी	१ दिन
	"	५	ऋषिपंचमी और पर्युषण	" "
	वदी	१२	चरखा-द्वादशी	" "

कुम्भार

सुदी	८-९	सरस्वती-पूजन	२	दिन
"	१०	दशहरा	१	"
"	१५	शरत् पूर्णिमा	१	"
वदी	१३	घनतेरस	१	"
"	१४	नरक-चतुर्दशी	१	"
"	१५	दीवाली	१	"

कार्तिक

सुदी	१	विक्रम-वर्षारंभ	१	"
"	२	भैयादूज	१	"
"	११	महाअैकादशी	आधा	"

अगहन

सुदी	११	गीता-जयन्ती	"	"
"	१५	दत्त-जयन्ती	१	"

पूस

मकर-संक्रान्ति	१	"
----------------	---	---

माघ

सुदी	५	वसंत-पंचमी	१	"
"	८	भीष्माष्टमी	अेक	समय
वदी	१४	महाशिवरात्रि	आधा	दिन

फागुन

सुदी	१५	होली	१	दिन
वदी	३	शिवाजी-जयन्ती	१	"

अन्यधर्मीय त्यौहार

दिसं०	२५	वड़ा दिन	१	"
		मुहूर्म	१	"
		वकरीद	१	"

राष्ट्रीय त्यौहार

अप्रैल	६-१३	राष्ट्रीय सप्ताह	८	दिन
फरवरी	१९	गोखले पुण्यतिथि	अेक	समय

जून	१६	देशबंधु	पुण्यतिथि	एक समय
जून	३०	दादाभाजी नौरोजी	"	"
अगस्त	१	तिलक	"	१ दिन

संत-जयन्ती

चोखामेला	एक समय
जनावाजी	"
नरसिंह महेता	"
मीरा	"
अखो	"

५

ध्वजारोपण

[एक पत्र]

[चैत चुदी १]

आज हमारा वर्षारंभ है। श्री रामचन्द्रके जमानेमें वानर-राज बालिके जुलमसे दक्षिणकी भूमिकी मुक्तिके आनन्दमें घर-घर अुत्सव मनाकर लोगोंने ध्वजार्ये खड़ी की थीं। यह रिवाज आज तक दक्षिणमें चला आ रहा है। जिस वर्षारम्भको महाराष्ट्रमें 'गुड़ी पाड़वा' (गुड़ी = ध्वज, पाड़वा = पड़वा) कहते हैं।

वर्षके प्रारंभका दिन नये संकल्पका दिन है। क्योंकि वर्षारंभका दिन एक तरहका वार्षिक सुप्रभात है। सवेरे जिस तरह थकान दूर होकर नयी स्फूर्ति आ जाती है, उसी तरह वर्षारंभके दिन जीवनका नया पन्ना खोलना होता है। 'अब तक जो हुआ सो हुआ, आजसे नया प्रारंभ'—जिस तरह अपनेको समझाकर मनुष्य नया संकल्प करता है। नया संकल्प करनेसे पहले सिंहावलोकन करना भी मनुष्यका स्वभाव है। सिंहावलोकन यानी सिंहकी तरह पीछे मुड़कर देखना। कहते हैं कि फलांग मारता हुआ सिंह बीच-बीचमें रुककर निरीक्षण करता है कि मैं कहां तक आया हूं, कितना रास्ता तय कर चुका हूं। प्रगतिशील मनुष्यके लिये भी यह आदत बड़े

कामकी है। अब तक हमने कौन-कौनसे संकल्प किये, उनमें से कितने पूरे किये, कितनोंमें सुधार करने पड़े, और कितनोंको छोड़ देना पड़ा — जिस सबका निष्कर्ष निकालनेके वाद ही नया संकल्प किया जा सकता है। पहले-पहले अत्साह या जोशमें आकर मनुष्य अपना संकल्प कह डालता है। मानो कयनी ही करनी हो! लेकिन यह भी सही है कि संकल्प बोल देनेसे बुद्धि दृढ़ होती है। मित्र-मंडलीकी सहानुभूतिके कारण संकल्प पूरा करनेमें अनुकूलता अत्युत्पन्न होती है। कहते-कहते विचार स्पष्ट हो जाते हैं। कार्यमें अकाग्रता आ जाती है। और अपने लिये अपनी ही वाणीका बंधन तैयार हो जाता है। यह सब होते हुये भी बोलनेमें संयम होना चाहिये, नहीं तो जैसा कि पुराने लोग कहते हैं, बोलनेसे भाप निकल जाती है, ध्यान ढीला पड़ जाता है, और संकल्पकी आयु वाणी तक ही सीमित रह जाती है। किसी विचारसे निम्नलिखित श्लोक बनाया गया है:

मनसा चिन्तितं कार्यं वचसा न प्रकाशयेत् ।

अन्य-लक्षित-कार्यस्य यतः सिद्धिर्न जायते ॥

(जिस कार्यका हम मनमें चिन्तन करते हैं, उसे वाणीसे दूसरों पर प्रकट नहीं करना चाहिये; क्योंकि दूसरोंका ध्यान खींचनेवाला कार्य सिद्ध नहीं होता।)

जिस श्लोकका रचयिता कोजी व्यवहारी मनुष्य होना चाहिये। उसकी दलील हमारे गले भले ही न अतरे, लेकिन उसकी दृष्टि जरूर सोचने लायक है।

वर्षारंभके दिन संकल्प-सिद्धिके लिये कोजी व्रत लिया जाता है। सबसे अुत्तम व्रत है चित्त-रक्षा-व्रत।

चित्त-रक्षा-व्रतं मुक्त्वा बहुभिः किं मम व्रतैः ?

(एक चित्त-रक्षा-व्रतको छोड़कर और बहुतेरे व्रतोंसे मुझे क्या मतलब ?)

फिर भी जिस महाव्रतकी मददके लिये अेकाध छोटा-सा व्रत हम सब ले सकते हैं। उसके लिये नये वर्षके दिनकी या किसी दूसरे मुहूर्तकी आवश्यकता नहीं है। जैसे ही एक व्रतकी मैं यहां कुछ चर्चा करना चाहता हूं।

अगर अपने अनुभवका हम निरीक्षण करें, तो हमें यह दिवाली देगा कि बहुत बार वस्तुस्थितिको अुलटा समझकर हमने औरोंके साथ अन्याय किया है। जितनी बार अपने किये हुये अन्यायका हमें ध्यान आ जाय, उतनी बार

अगर दूसरे आदमियोंसे क्षमा मांगने जायें, तो हमें मालूम हो जायगा कि गलतफहमी कर लेनेकी कितनी शक्ति हममें है। पद-पद पर माफी मांगनेके अितने मौके आ जायेंगे कि हम खुद शरमायेंगे। जिस बातको छोड़ दिया जाय, तो भी दूसरा आदमी हमारी चंचल वृत्तिको देखकर अब जायगा। बार-बार माफी मागनेसे अपनी कीमत कम हो जानेकी जो आशंका रहती है उसे दूर करें, तो भी माफीकी कीमत घट जानेका डर तो रह ही जाता है। अब सवाल यह है कि माफीकी कीमतका घट जाना ठीक होगा या आपसी गलतफहमीको चलने देना ठीक होगा? व्यवहार-कुशल समाज माफीकी विशुद्धताकी अपेक्षा प्रतिष्ठाकी स्थिरताको ही अधिक चाहता है। लेकिन ऐसा करके समाजने क्या हासिल किया है?

जितनी गलतफहमियां हमारे ध्यानमें आतीं उनकी यह बात हो गयी। लेकिन जहां हमें अपने मनमें लगता है कि फलानी बात निश्चित है, जिसमें गलतफहमीको अवसर ही नहीं, वहां भी कभी-कभी घोर गलतफहमी हो जाती है। जिसका क्या किया जाय?

जिसके लिये एक ही उपाय है कि किसीके वारेमें राय कायम करनेकी अुतावली नहीं करनी चाहिये। दो हेतुओंके विकल्पकी जहां संभावना हो, वहां अच्छे हेतुकी ही कल्पना करनी चाहिये। मनुष्यसे अच्छा परिचय होते हुये भी उसका सिर्फ वाह्य स्वरूप ही हमारे सामने खुला हुआ रहता है। अंतरका परिचय पाना बहुत मुश्किल है। कभी लोग अपना अभ्यंतर खोल ही नहीं सकते। विचार या कल्पना व्यक्त करनेकी भाषा तो मनुष्यने थोड़ी-बहुत विकसित की है, लेकिन हृदयको व्यक्त करनेकी भाषा तो अभी तक विकसित ही नहीं हुयी है। जिसलिये मनुष्य कहता है एक, और सुननेवाला समझता है कुछ और ही। सभी जगह यही चलता है। अितना ध्यान रहे तो भी बहुत है। जो लोग बहुत बोलते रहते हैं, बहुत वकवास करते हैं, जो बातूनी या विनोद-प्रियकी हैसियतसे पहचाने जाते हैं, वे अन्दरसे कितने दुःखी होते हैं यह कोसी जानता ही नहीं। बातूनी मनुष्य बहुत बार अन्तःकरणसे अेकाकी होता है, जिसे अगर हम समझ जायं तो भी बहुत है। न्याय करने-वाले हम होते कौन हैं?

अितना विचार करने पर भी दूसरे लोगोंके वारेमें कुछ तीखी राय हमारे मनमें रहेगी ही। उस वक्त अगर हम यह देख सकें कि वही दोष हममें

भी कितना है, तो क्या ही अच्छा हो ! अगर हम अपने अनेकानेक दोषोंके लिये अपनेको क्षमा कर सकते हैं, तो औरोंके अपने संबंधके अेकाव दोषको क्या हम दरगुजर न करें ?

जितना करने पर भी अगर किसी मनुष्यके प्रति हमारे मनमें सद्भाव पैदा न हो, तो मनमुटावके प्रसंग अुत्पन्न करनेकी अपेक्षा अुसके साथके संबंधोंको ही संकुचित करना अुचित है। जहां सद्भाव नहीं है, वहां सहयोग करनेका हमें कोअी अधिकार ही नहीं। दुनियामें श्रम-विभागके नाम पर जो जगद्-श्यापी सहयोग चल रहा है, अुससे श्रेय ही हुआ हो सो नहीं। यह अुचित है कि अपने हृदयका जितना विकास हुआ हो, अुतना ही विस्तार हम करें। ऋषिगण कहते हैं कि हृदयसे ही सत्यका ज्ञान होता है।

मिलकर काम करनेके लिये 'महामनाः स्यात्' वाला व्रत आवश्यक है।
फरवरी, १९२६

ध्वजारोपण

चैत सुदी १

१ समय

ज्योतिषशास्त्रका साल चैत्रसे शुरू होता है। शालिवाहन संबत्का प्रारंभ भी चैतकी प्रतिपदासे होता है। लोग समझते हैं कि अिसी दिन श्रीराम-चन्द्रजीने दक्षिण प्रदेशको बालिके जुलमसे मुक्त किया था। अिसलिये अिस दिनको स्वतंत्रताका दिन मान कर ध्वजा खड़ी की जाती है। अिस त्यौहारके बारेमें पौराणिक कहानियां सुनाने और ध्वजा अिसलिये खड़ी की जाती है सो सब विद्यार्थियोंको अच्छी तरह समझानेके अलावा अिस दिन और कुछ करने लायक नहीं है।

अिस ऋतुमें नीमकी पत्ती खानेका रिवाज वैद्यककी दृष्टिसे अच्छा है। सवेरे अुठकर हींग, नमक, जीरा आदिके साथ नीमकी कोंपलें खाना अिस दिनकी खास विधि है। हम तो सिर्फ कोंपल और नमक ही खायें।

अिस दिन अगर हम पुष्प-रचना कर सकें, तो वसन्तका सच्चा अुत्सव होगा। शालामें अैसी पुष्प-रचना करना संभव हो, तो यह आवे दिनका त्यौहार समझा जाय।

तिरंगे राष्ट्रीय झंडेका वन्दन तो अिस दिन रखा ही जाय। अुसके साथ झंडागीत और राष्ट्रगीत दोनों गाये जायं।

रामनवमी

[चैत सुदी ९]

रामजन्मका आनन्द अपूर्व है। आदिकवि वाल्मीकिने रामजन्मसे पहलेकी स्थितिका अच्छा वर्णन किया है। विश्वामित्र जब राजा दशरथसे धर्मरक्षाके लिये दो विद्यार्थियोंकी याचना करते हैं, तब पहले तो मोहवश पिता अिनकार करते हैं; लेकिन तुरन्त ही कर्तव्यका ज्ञान होने पर अपने प्राणप्रिय पुत्रोंको ऋषिके हाथ सौंप देते हैं।

अब राम-लक्ष्मणकी हर रोजकी मामूली शिक्षा बन्द हो जाती है। राजपुत्रोंकी शिक्षा बहुविध होती है। अन्हें बहुतसे विषय सीखने पड़ते हैं। अुनकी सभी अिन्द्रियोंके विकासके हेतु कुलपति वसिष्ठने अन्हें सर्वांगीण शिक्षा देनेका विचार किया था, लेकिन विश्वामित्रने अुस सबको अुलट-पुलट कर दिया। वे राजपुत्रोंको प्रवासके लिये ले गये। वहां अुन्होंने प्रकृतिके साथ अुनका परिचय करा दिया। देशकी स्थिति अपनी आंखोंसे देखकर रामचन्द्रजी पूछते हैं: "अिस प्रदेशमें अितनी नदियां बहती हैं, अितनी प्राकृतिक समृद्धि है, फिर भी यहां आवादी क्यों नहीं है? और जो थोड़ीसी है, वह भी अिस तरह भयभीत दशामें क्यों है?"

तब विश्वामित्र अन्हें अुस प्रदेशका अितिहास समझाने लगते हैं: "अेक समय था, जब यह प्रदेश सुखी था, समृद्ध था, लेकिन बादमें प्रजाभक्षक असुरोंका राज्य यहां हो गया; अिसीलिये लोगोंकी यह हालत हो गयी है।" अपनी तेजस्वी आंखोंसे राम-लक्ष्मणको निहारकर वह राजर्षि आगे कहते हैं: "नवयुवको, अिस सब आतंकको दूर करणेका भार तुम लोगों पर है।"

शाम होने पर विश्वामित्र अिन राजपुत्रोंको रघुकुलकी अुज्ज्वल कीर्ति सुनाते हैं। राजा दिलीपकी दिग्विजय, भगीरथका महातप सब कुछ कहते हैं। सवेरे नहा-घोकर जब राम-लक्ष्मण वन्दन करनेके लिये आते, तब देशमें फैले हुअे जुल्मको दूर करनेके अुपाय, मंत्र, अस्त्र और अुनकी खूबियां आदिकी शिक्षा वे अुन्हें देते।

अिसी यथार्थ स्थितिका काव्यमय भाषामें अेक दूसरी जगह वाल्मीकिने वर्णन किया है। यह प्रसंग रामजन्मके पूर्वका है। असुर अुन्मत्त हो गये हैं।

शूर्पणखा अपने मूपके जैसे बड़े और तीक्ष्ण नखोंसे सारे देशको खरोंच रही हैं। खर और द्वेषण देशभरमें अनीति फैला रहे हैं। प्रजाके बड़े-बड़े वर्गोंको कुंभकर्ण समूचा निगल रहा है। सात्त्विक बुद्धिवाला विभीषण रावणके दरवारमें धर्मके नामसे अरण्य-रुदन कर रहा है। साम्राज्य-मदसे अुन्मत्त हुअे राक्षस अुनकी नेक सलाहकी हंभी अुड़ा रहे हैं। बेचारा विभीषण जिस बातका निर्णय नहीं कर सकता कि अपने भाईके साथ सहकार किया जाय या असहकार; अिधर रावण अपने राज्यके दशविष विभागोंके द्वारा अेकमुर्खी सत्ता चला रहा है। बेचारी प्राकृतिक शक्तियोंकी तो बात ही क्या, नवग्रह भी अुसके घर कहारका काम करते हैं। लोगोंके दिलोंमें शक पैदा होता है कि दुनियाका मालिक अीश्वर है या रावण! अपने द्वीपमें बैठ-बैठा वह सारे देशके कौने-कौनेको देख सकता है। रावणसे छिपा तो कुछ भी नहीं रह सकना!

रावणके घमंडकी कोअी हद नहीं रही है। वह अपने मनमें अीर अपने दरवारमें जाहिरा तौर पर भी कहता है: "जिस अेक शत्रुको मैंने मार डाला! इसी तरह अीरोंका भी खातमा करूंगा। मैं सबसे श्रेष्ठ हूं। मैं ही सुखोपभोग करनेवाला हूं। नारी सिद्धियां मेरी दासियां हैं। मेरी शक्ति सबसे ज्यादा है। मेरी जाति भी सबसे बड़ी है। मेरी ही संस्कृति सबसे अूंची है। दुनियाकी भलाअी करनेका भार भी मेरे ही सिर पर है। मैं ही दानी हूं। सब प्रकारके सुख मेरे लिये ही हैं।" अपनी जिस गर्वोक्तिसे रावणको संतोष नहीं होता, वल्कि सभीके मुंहसे अपना यही गुणगान वह करवाता है। सभी अुसके वंदीजन हो गये हैं। अुसकी विच्छाके अनुसार पंडित शास्त्रार्थ चलाते हैं। पुरातत्त्वविद् अुसीका यश-अितिहास भूगर्भ आदिमें से खोज निकालते हैं। हरअेक गुणी मनुष्य अितना पामर हो गया है कि वह अपनी सारी शक्ति जिस मदान्वके चरणों पर अर्पण करनेमें ही अपनेको धन्य मानता है।

अैसी हालतमें दीन-हीन बनी हुअी पृथ्वी सिरजनहारके पास जाकर कहती है: "प्रभो! अब यह बोज असह्य हो गया है। मंगलता परसे मानवकी श्रद्धा अब अुठ गयी है। तपस्या छोड़कर लोग सुरापान कर रहे हैं। लंकाकी साम्राज्य-देवी हर रोज असंख्य प्राणियोंकी बलि ले रही है। शराबके कितने घड़े हर रोज खाली हो रहे हैं! देवोंके सब व्यवहार

बंद पड़ गये हैं। यह हालत कब तक चलनेवाली है? ” सिरजनहार कहते हैं: “हे पृथ्वी! तू श्रद्धा मत खो। उस अीश्वर-तत्त्वकी शरणमें जानेसे सब दुःखोंका निवारण होता है, जो चराचरको व्यापे हुअे है। राक्षस और मनुष्य जिन्हें जंगली बन्दर कहते हैं, अनाड़ी कहते हैं, राक्षसी संस्कृतिका जिन्हें स्पर्श तक नहीं हुआ है, जिनके मनुष्य होनेके संदेहसे जिन्हें ‘वा-नर’ कहा जाता है, जैसे भोले लोगोंमें यह अीश्वरी शक्ति प्रकट होगी। अुन्हींके हाथों रावणकी पराजय होगी। आर्यावर्तकी माताअें पहाड़ पर बैठ कर जो तपस्या कर रही हैं, वह जरूर सफल होगी और वज्रकौपीन, वज्रकाय बालक देशमें पैदा होंगे। धर्ममें फिरसे जाग्रति होगी और परमात्मा स्वयं अवतार लेंगे।” पृथ्वीके मनमें यह शंका अुठने पर कि यह कैसे मालूम होगा कि परमात्माका अवतार हो गया है, भगवान् कहते हैं: “जब देशमें ब्रह्मचारी अुत्पन्न होंगे, गृहस्थ अेकपत्नी-व्रतका पालन करेंगे, विद्यार्थी धर्म-रक्षक गुरुओंके वशमें रहेंगे, मां-बाप जब मोहका त्याग करके अपने लड़कोंको यज्ञकी रक्षाके लिये अर्पण करेंगे, भाअी-भाअी अपूर्व प्रेमसे अेक-दूसरेके साथ संबद्ध होंगे, अुच्च कुलके चारित्र्य-संपन्न लोग पतित स्त्रियोंका अुद्धार करेंगे, राजपुत्र भीलों और गृहकोंके साथ समभावसे मैत्री करेंगे, ब्राह्मण अपने अभिमानकी अँठ छोड़ देंगे, ब्रह्मचर्यका तेज सत्य और धर्मकी सेवाका स्वीकार करेगा, प्रजामें श्रद्धाका अुदय होगा, और जब अूंचे खानदानके नौजवान शहरी जीवनके विलासोंका त्याग करके गांव-गांव और वन-वन घूमने लगेंगे — तभी समझना चाहिये कि अब अीश्वरका अवतार हो गया है।” पृथ्वीको संतोष हो गया, दिलासा मिल गया, और वह शान्त होकर अपने स्थान पर चली आअी।

दशरथने तपस्याका प्रारंभ करके धर्मकी अग्निको चेताया। यज्ञपुरुषने पायसरूपी चैतन्य दे दिया। दुनिया राह देखने लगी। सारे संयोग भी अनुकूल होने लगे। ग्रह और अुपग्रह परस्पर अनुकूल बन गये। पापकी घटिका भर गअी और पुण्यका अुदय हुआ। रामजन्म हुआ।

अुसी दिन लोगोंने आनन्द मनाया।

हालांकि अभी तक रावण-राज्य नष्ट नहीं हुआ था, अभी ताड़काका वध नहीं हुआ था, अभी कांचन-मृग मारीचकी माया प्रकट नहीं हुआ थी, फिर भी प्रजाने अुत्सव मनाया, क्योंकि रामजन्म हो चुका था। जिस

तरह कोअी देहाती किसान आकाशके मेघोंमें ही सोलह आना फसल देख लेता है, अुसी तरह प्रजाने मेघश्याम रामचन्द्रमें स्वातंत्र्य देखा, धर्मराज्य देखा और मुक्ति देखी। अुन दिनसे आज तक लोगोंने चैत सुदी नवमीको अुत्सव मनाया है। क्योंकि अुस दिन मनुष्यके दिलमें सत्य, ब्रह्मचर्य और धर्म-संबंधी श्रद्धा जाग्रत हुई।

१७-४-'२१

रामनवमी

चैत सुदी ९

१ दिन

रामनवमी और कृष्णाष्टमी दोनों भक्तिके ही त्यौहार हैं। राम-कृष्णकी अुपासनासे हिन्दूधर्म जितना रंगा हुआ है, अुतना कित्ती भी दूसरी चीजने नहीं रंगा है। जिसलिअे रामनवमीका अधिकसे अधिक अुपयोग करनेमें हमें समर्थ होना चाहिये। रामनवमीके दिन अुपवास करनेका रिवाज अच्छा है। हो सके तो छोटे-छोटे लड़के भी वारह बजे तक कुछ न खायें।

हृदयमें और समाजमें किस-किस प्रकारके राजस अुन्मत्त हो गये हैं, यह खोजनेमें अगर हम सबेरेका समय लगा सकें तो अच्छा। दस बजे मुक्तिकोपनिषद्में से अच्छे-अच्छे अुद्धरण लेकर विद्यार्थियोंको सुनाये जाय। सब लोग जिकड़्ठे होकर रामजन्मकी कथा जिस तरह सुनें कि वह ठीक वारह बजे खत्म हो जाय। अुसके बाद भजन और कीर्तन। दोपहरको गानेका कार्यक्रम रखकर अुसके बाद रामचरित्रके अलग-अलग प्रसंगोंका विवेचन किया जाय। रामराज्यके बारेमें अपनी-अपनी कल्पनाका विविध प्रकारसे विस्तार करके अुसका विवेचन किया जाय। मनुष्य-जातिके लिअे आदर्श राजा कैसा होना चाहिये, जिसका जो अुदाहरण श्रीरामचंद्रजीने प्रस्थापित किया अुसका रहस्य समझाया जाय। रामनवमीके त्यौहारके साथ जिसकी भी कोशिश की जाय कि हमारे राष्ट्रीय ग्रंथ रामायणका अुध्ययन नये-नये ढंगसे हो। प्रजा-तंत्रकी कल्पनाको जिस दिन गांव-गांवमें स्पष्ट किया जाय।

रामनवमीके दिन सब मिलकर सबेरे स्नानके लिअे चले जायं, भांति-भांतिके पुष्प चुनें, रामचन्द्रजीकी पूजा करें, पूजाके कमरेमें चौक (रांगोली) की कलाकारी की जाय, अगरवती, धूप, चन्दन आदिकी मुगन्धसे पूजाका

कमरा पवित्र करें। और छोटे-बड़े सबको खुश रखकर यह दिन प्रसन्नताके साथ बिता दें। जिस दिन सीतासतीके चरित्र पर काव्य रचे जायं। और स्वराज्यके लिये जीवन अर्पण करनेकी प्रतिज्ञा भी की जाय।

७

महावीर-जयन्ती

[चैत सुदी १३]

१. महावीर स्वामी

जब हिन्दूधर्म और अजुसकी मान्यतायें अितनी पुरानी हो गयीं कि अजुनमें संस्कार किये बिना लोगोंको अजुनमें से आश्वासन मिलने योग्य कोअी बात नहीं रही, तब अजिस प्रकारका संस्कार करनेवाले अेक महापुरुष गौतम-बुद्ध हो गये। लेकिन संस्कार करनेवाले वे अकेले नहीं थे। अजुनके समयके अजिस तरहके संस्कारकोंके पांच-छः नाम मिल जाते हैं। अजुनमें वर्धमान महावीर ही अेक अैसे सत्पुरुष थे, जिन्हें गौतमबुद्धके जितनी ही प्रसिद्धि प्राप्त हुअी। वर्धमान महावीर जैन धर्मके संस्थापक कहे जाते हैं।

यों तो जैन धर्म बहुत ही प्राचीन है। भगवान् ऋषभदेवसे लेकर अजुस धर्मके चौबीस तीर्थंकर हो गये। वर्धमान महावीर अखिरी तीर्थंकर हैं। गौतमबुद्धकी तरह महावीरने भी विहार प्रान्तमें जन्म लिया था। वैशाली नगरके पास अेक छोटेसे गांवमें ज्ञातृ नामके कुलमें वर्धमानका जन्म हुआ था। अजुनकी मां लिच्छवी राजा कटककी वहन थीं। वचपनसे ही अजुनके मनमें वैराग्य पैदा हो गया। लेकिन वह अेकनिष्ठ मातृ-पितृ-भक्त थे, अतः वृद्धोंको राजी रखनेके लिये यशोदा नामकी अेक राजकन्याके साथ व्याह करके घर-गृहस्थी चलाने लगे। अजुनके प्रियदर्शना नामकी अेक कन्या भी हो गयी थी। जब वे तीस वरसके हो गये, तब अजुनके माता-पिताकी मृत्यु हो गयी, और वे घर-गृहस्थीसे मुक्त हो गये। अजुन्होंने घोर तप शुरु किया और भगवान् पार्श्वनाथके पंथमें शामिल होकर शांति प्राप्त की।

अहिंसा-धर्मका असाधारण अुत्कर्ष हमें महावीरमें दिखाअी देता है। लगभग चालीस सालकी अुम्रसे अजुन्होंने अपदेश देना शुरु किया और वत्तीस

साल तक यह काम करते रहे। वृद्ध भगवान् मध्यम मार्गका उपदेश देते थे, जब कि महावीर त्रिपय-सुखके आत्यन्तिक त्यागको पसन्द करनेवाले थे। तप-श्चर्याका सेवन करके अिन्द्रिय-निग्रहकी पुरानी परम्पराको महावीरने चलाया और देह-दंडनका महत्त्व बढ़ा दिया। हिन्दुस्तानमें एक समय अँसा था, जब बौद्ध धर्म खूब फैला हुआ था। लेकिन आज वह नष्टप्राय हो गया है। अँसा मालूम होता है कि जैन धर्म भी बौद्ध धर्मकी तरह फैला हुआ था, लेकिन बौद्ध धर्मकी तरह उसका लोप नहीं हुआ। आज बंगालकी तरफ, गुजरातमें तथा और-और स्थानोंमें जैन लोग काफी तादादमें हैं।

बौद्ध धर्मकी तरह जैन धर्मका प्रचार करनेके लिये किसी समर्थ राजाकी तरफसे (गुजरातके राजा कुमारपालको छोड़कर) या किसी दूसरे ढंगसे प्रचार नहीं हुआ है।

अहिंसा-धर्मका विचार करते करते जैन लोगोंने नूक्षम जीव कहां कहां होते हैं, जिसकी भलीभांति खोज की है। वनस्पतिमें कितने प्राण होते हैं, हवा और पानीमें जीव किम तरह रहता है, आदि बातोंका अुन्होंने एक बड़ा शास्त्र तैयार किया है। जैन पंडितोंने साहित्यकी बहुत सेवा की है। जैन लेखकों द्वारा अनेक शास्त्रों पर लिखे हुए ग्रंथ संस्कृतमें हैं। जैन लोग भी मूर्तिपूजक हैं। अिनलिअे अुन्होंने स्थापत्य और शिल्प-कलाओंमें सविशेष अुन्नति की है। जैन लोगोंके बनाये हुए गुजरातके कअी मंदिर सारे हिन्दुस्तानमें असाधारण समझे जाते हैं। आवू-देलवाड़ाके जैन मंदिरोंकी कारीगरी देखकर सारी दुनियाके मुनाफिर आश्चर्यान्वित हो जाते हैं। अिन जैन मंदिरोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कठिन पत्थरमें मोमकी या फूलोंकी कोमलता लानेकी कितनी जबरदस्त शक्ति हिन्दुस्तानके कारीगरोंमें है।

जैनोंमें श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद पड़े गये हैं। महावीरने कैवल्य-प्राप्तिके वाद वस्त्रका भी त्याग किया था, अिसलिअे अुनकी पूजा वस्त्रके साथ की जाय या बिना वस्त्रके, यह मतभेदकी वात थी। अिनीको लेकर दो पंथ पैदा हो गये। और अब तो अुनमें पूजाविधि और कलाके आदर्शके त्रिपयमें भी फर्क आ गया है।

जैन धर्मके पहले तीर्थंकर ऋषभदेवका अुल्लेख श्रीमद् भागवतमें आया है। वहां अुनके त्याग और वैराग्यका आदरपूर्वक वर्णन किया गया है। अँसा दिखायी देता है कि हिन्दू समाजकी संस्कारी और सम्य बनानेमें ऋषभदेवका बड़ा भागी

हिस्सा था। कहा जाता है कि विवाह-व्यवस्था, पाकशास्त्र, गणित, लेखन आदि संस्कृतिके मूल बीज ऋषभदेवने ही समाजमें बोये। अगर यों कहें तो भी चलेगा कि यह सब करके और अन्तमें उसका त्याग करके ऋषभदेवने प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों मार्गोंका आचरण करके दिखाया।

ऋषभदेवके बाद और महावीरसे पहले दूसरे बासीस तीर्थंकर हो गये। उनमें से आखिरी पार्श्वनाथ थे। उनके पंथका महावीर पर बहुत असर हुआ। अपने अनुभवसे महावीरने पार्श्वनाथके अपदेशमें वृद्धि की। और संयम धर्मको अधिक स्पष्ट और संपूर्ण किया। सत्य, ब्रह्मचर्य, अहिंसा और अस्तेय रूपी 'यम' को सम्पूर्ण बनानेके लिये उनमें अपरिग्रह व्रतको जोड़ दिया। पार्श्वनाथके मंत्रके अनुसार पापका स्वीकार करनेकी विधि (प्रतिक्रमण) व्यक्तिकी अिच्छा पर छोड़ दी गयी थी। महावीरने उसे आवश्यक कर दिया।

महावीर स्वामीको आखिरी तीर्थंकर समझा जाता है। तीर्थंकरका अर्थ है, स्वयं तरकर असंख्य जीवोंको भव-सागरसे तारनेवाला। तीर्थ यानी मार्ग बतानेवाला। जो सच्छास्त्ररूपी मार्ग तैयार करनेवाला है, वह तीर्थंकर है।

बौद्ध धर्ममें जैसे बोधिसत्वकी कल्पना है, वैसे जैन धर्ममें तीर्थंकरकी कल्पना है। कुछ लोगोंकी राय है कि वैदिक धर्मने जैन और बौद्ध धर्मकी नकल करके उसी तरहकी अवतारकी कल्पना खड़ी की है। यह माना जाता है कि विष्णुके दस अवतार हैं। दूसरे हिसाबसे चौबीस अवतार माने जाते हैं। दस अवतारोंमें बुद्धावतारको लिया जाता है और चौबीस अवतारोंमें ऋषभदेव हैं, यह बात खास ध्यानमें रखने लायक है।

गौतमबुद्धकी तपस्याकी तरह महावीरकी तपस्या भी बहुत अग्र थी। अन्होंने तितिक्षाकी सीमा करके दिखायी। लाट देशमें वीरप्रभुको काफी तकलीफ बर्दाश्त करनी पड़ी। यात्रा करते समय कुत्ते आकर जब वीरप्रभु पर टूट पड़ते और अन्हें काटते, तो वहांके लोग कुत्तोंसे अउनकी रक्षा नहीं करते थे। अितना ही नहीं, बल्कि वे भगवान्को पीटते थे और कुत्तोंको भड़काकर अउनके अपर छोड़ते थे। लेकिन महावीरने यह सब सहन किया और विजय प्राप्त की। आज उसी देशमें अउनकी आदरपूर्वक पूजा होती है।

पापकी जिम्मेदारी सिर्फ पाप न करनेसे पूरी नहीं होती। महावीर स्वामीने अपदेश किया है कि पाप न करें, न करायें और उसे अनुमोदन भी न दें, तभी

पापसे मुक्ति मिल सकती है। अन्होंने पापके साथ सम्पूर्ण असहकार करनेकी नसीहत दी है।

जैन तत्त्वज्ञान और जैन विधियोंमें एक ही वस्तु सर्वत्र देखनेमें आती है। वह है, मनुष्यको संयमी बनाकर आत्म-प्राप्तिकी ओर ले जाना। जैन परिभाषामें वाह्य प्रवृत्तिको 'आस्रव' कहते हैं। जिस आस्रवमें से परावृत्त होकर आत्माभिमुख होना 'संवर' कहलाता है।

जैन धर्म और योगदर्शनमें बहुत साम्य है। अहिंसा, मूत, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पांच महाव्रत; मैत्री, कृष्णा, मुदिता और अपेक्षा ये चार भावनायें; धर्मके दशविध लक्षण आदि चीजें वैदिक, बौद्ध और जैन धर्मोंमें समान ही हैं। यात्रा और व्रतोंका माहात्म्य भी तीनोंमें एकसा है। भेद सिर्फ परिभाषाका है।

जैनोंमें दिगम्बर और श्वेताम्बरके अलावा 'स्थानकवासी' नामका एक नया पंथ पैदा हो गया है। जिसमें मूर्तिपूजा नहीं है।

जैन धर्ममें पुराण भी बहुत हैं। उनकी कमी कथाओं वैदिक पुराणोंकी कथाओंसे कुछ-कुछ मिलती-जुलती हैं। जैन पुराण, शाक्त पुराण और वैदिक पुराण अिन तीनोंमें तुलना करनेसे जिस बातका अन्दाजा लगाया जा सकता है कि पुराणोंमें ऐतिहासिक भाग कितना होगा और उसका असली स्वरूप क्या होना चाहिये। जिस ढंगसे पुराने साहित्यका अभी तक उपयोग नहीं किया गया है।

बौद्ध और जैन धर्ममें चाहे जिस व्यक्तिका प्रवेश हो सकता है। और चाहे जिस जातिका मनुष्य भिक्षु या यति बन सकता है। जैन और बौद्ध धर्मोंमें जातिभेदके बारेमें पूर्ण अुदासीनता है। शायद विरोध भी होगा। फिर जातिभेदकी गन्दगी अर्थात् अस्पृश्यताको तो जैन धर्ममें कहाँसे स्थान होगा ?

२. विश्वधर्म

[फुटकर विचार]

'महावीर' नाम श्रीविष्णुको भी दिया गया है। उनके वाहन गरुड़को भी महावीर कहते हैं। श्रीरामचन्द्रजीको भी महावीर कहते हैं। और उनके अेक-निष्ठ नेत्रक हनुमान भी महावीर ही हैं। आज हम श्री पार्श्वनाथके अनुगामी श्रीवर्धमानको महावीरके नामसे पहचानते हैं।

‘महावीर’ शब्दसे कौनसा अर्थबोध होता है? सर्वत्र फैलकर, आसुरी शक्तिको हराकर विश्वका पालन करनेवाले विष्णु महावीर हैं। अमृत प्राप्त करनेकी शक्ति रखनेवाला मातृभक्त गरुड़ महावीर है। पिताके वचनका पालन करनेके लिये, प्रजाका कल्याण करनेके लिये और धर्मनिष्ठाका आदर्श प्रस्थापित करनेके लिये राज्य, सुख और पत्नीका त्याग करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी महावीर हैं। किसी प्रकारके प्रतिफलकी विच्छा रखे बिना सेवा करनेवाले और शक्तिका अपुयोग शिवकी ही सेवामें करनेवाले ब्रह्मचारी सेवानन्द हनुमान भी महावीर हैं। मातृभक्ति, सुखत्याग, भूतमात्रके प्रति अपार दया और अिन्द्रिय-जयका अुत्कर्ष दिखानेवाले जातृपुत्र वर्धमान भी महावीर हैं। आर्यजातिने सर्वोच्च सद्-गुणोंकी जिस मनोमय मूर्तिकी कल्पना की है, जिस आदर्शको निश्चित किया है; उस तक पहुंचनेवाले व्यक्ति महावीर हैं। विजय प्राप्त करनेवाला वीर है। जो अन्तर्बाह्य दुनिया पर विजय पाता है, वह है महावीर! वीर यानी आर्य और महावीर यानी अर्हत्।

*

*

*

हिन्दूधर्म राष्ट्रीय धर्म है। अेक महान् राष्ट्रका धर्म होनेसे उसे महाराष्ट्रीय धर्म भी कह सकते हैं। लेकिन हिन्दूधर्मके तत्त्व सार्वभौम हैं, विश्वधर्मके हैं। उनका प्रचार सर्वत्र होने लायक है। हिन्दूधर्मने मनुष्य-जातिका जीवनधर्म खोज निकाला है। हिन्दूधर्मने बहुत पहलेसे निश्चित कर रखा है कि क्या करनेसे मनुष्य-जाति शान्तिसे रह सकेगी, उसका अुत्कर्ष होगा तथा वह परम-तत्त्वको पहचानकर उसे प्राप्त कर सकेगी। ‘स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्’ (अिस धर्मका अल्प-स्वल्प पालन भी बड़े बड़े भयोंसे रक्षा करता है)। ‘नहि कल्याणकृत्कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति’ (हे तात, शुभ कर्म करनेवाले किसीकी दुर्गति नहीं होती)। ‘धर्मो रक्षति रक्षितः’ (जो धर्मका रक्षण करता है, उसकी रक्षा धर्म करता है)। अिस तरहकी श्रद्धा या अनुभवको अिस धर्मने अंकित कर रखा है। फिर भी हिन्दूधर्म प्रचार-परायण (मिशनरी) धर्म नहीं है। सारी दुनियामें अपना प्रचार करनेका हिन्दूधर्मका आग्रह नहीं है। हिन्दू अपने धर्मको अपने आचरणमें लानेका प्रयत्न करता रहता है। उसमें अगर उसे सफलता मिल गयी, तो उसकी छाप पड़ौसियों पर पड़ेगी ही। यह समझकर कि प्रभाव डालनेके लिये जान-बूझकर कोशिश करनेमें अुतावली और अधीरता है, यानी जीवनका कच्चापन है, हिन्दू व्यक्ति अधिक प्रयत्नपूर्वक आत्मशुद्धि ही करता रहेगा।

सामाजिक हिन्दूधर्मके मानी हैं अिन सनातन तत्त्वोंको अपने विशिष्ट समाजके अनुकूल बनानेका प्रयत्न करना। दूसरा समाज अिन्हीं तत्त्वोंको अलग तरीकेसे अपने जीवनमें ला सकता है। हिन्दूधर्मके अिन सनातन तत्त्वोंको समाजमें दाखिल करनेके अनेक प्रयत्न अिस देशमें हुअे हैं। रूढ़ सनातन धर्म अिस देशके बाहर बिलकुल नहीं फैला है। अुसे फैलानेके प्रयत्न किन्नी समय हुअे हैं या नहीं अिसका हमें पता नहीं है। अिस देशमें ही अुसे नष्ट करनेके प्रयत्न हुअे हैं और वे प्रयत्न निष्फल सिद्ध हुअे हैं अितना हम जानते हैं। लेकिन रूढ़ सनातन पद्धतिको छोड़ दूसरे ढंग पर किये गये प्रयोग दुनियामें अच्छी तरह फैल गये हैं। बौद्ध धर्म अिस बातका सवृत है। यही सबसे पहला मिशनरी धर्म दिखायी देता है। अिससे पहले अगर मिशनरी कार्य हुआ हो, तो अुसका हमें ठीक-ठीक पता नहीं है। अैसा भी लगता है कि वर्ण-व्यवस्था-युक्त जीवनधर्म प्रचारक धर्म हो ही नहीं सकता। (जीवनधर्म यानी केवल माननेके लिये रचा हुआ धर्म नहीं, बल्कि जीनेके लिये रचा हुआ धर्म।)

बौद्ध और जैन धर्ममें काफी भेद हैं, फिर भी दोनोंमें साम्य भी कुछ कम नहीं है। दोनों मिशनरी धर्म होने लायक हैं। दोनों विश्वधर्म हैं। स्याद्वाद-रूपी बौद्धिक अहिंसा, जीवदया-रूपी नैतिक अहिंसा और तपस्या-रूपी आत्मिक अहिंसा (भोग यानी आत्महत्या—आत्माकी हिंसा। तप यानी आत्माकी रक्षा—आत्माकी अहिंसा) अैसी त्रिविध अहिंसाको जो धारण कर सकता है वही विश्वधर्म हो सकता है। वही अकृतोभय विचर सकता है। 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः' (जो लोगोंसे नहीं अूबता, अिससे लोग नहीं अूबते) यह वर्णन भी अुसी पर चरितार्थ हो सकता है। अूपर बतायी हुअी प्रस्थान-त्रयीके साथ ही व्यक्तिगत अेवं सामाजिक जीवन-यात्रा हो सकती है। आत्माकी खोजमें यही पाथेय काम आने योग्य है।

*

*

*

मिशनरी धर्म अपने तत्त्वोंके प्रति अवश्य वफादार रहे, लेकिन अपने स्वरूपके संबन्धमें आग्रह न रखे। 'जैसा देश, वैसा देश'का नियम धर्म पर भी—खासकर विश्वधर्म पर—चरितार्थ हो सकता है। विश्वधर्म यदि सच्चा विश्वधर्म है, तो वह अपने नामका भी आग्रह नहीं रखेगा।

*

*

*

असा समझनेके लिये कोयी कारण नहीं कि किसी समय दुनियामें विश्वधर्म तो एक ही हो सकता है। जिस तरह किसी कमरेमें रखे हुअे चार-पांच दीपक अपना-अपना प्रकाश सारे कमरेमें सर्वत्र फैलाते हैं, सारे कमरेके राज्यका अपुभोग करते हैं, और फिर भी अपने-अपने व्यक्तित्वकी रक्षा करते हैं, अुसी तरह अनेक विश्वधर्म अेकसाथ सारे जगके राज्यका अपुभोग कर सकते हैं। धर्ममें द्वेष या मत्सर कहांसे आयेगा? अेक म्यानमें दो तलवारें नहीं रहेंगी, अेक दरवारमें दो कूटनीतिज्ञ कार्य नहीं करेंगे। लेकिन दुनियामें अेकसाथ चाहे जितने धर्म साम्राज्यका अपुभोग कर सकते हैं, क्योंकि धर्म तो स्वभावसे ही अहिंसक होता है। धर्मके मानी ही हैं अद्रोह। जहां धर्म-धर्मके बीच झगड़े चलते हैं, और संख्यावलकी आकांक्षा दिखायी देती है, वहां यह मान ही लेना चाहिये कि धर्ममें धार्मिकता नहीं रही है, धर्मके नामसे अधर्मकी हुकूमत चल रही है। धर्मका वीर्य क्षीण हो गया है। अैसी हालतमें वही दुनियाको अुवार सकेगा जो धर्मवीर होगा, महावीर होगा।

अहिंसाके संपूर्ण स्वरूपको हमें समझ लेना चाहिये। अहिंसा महावीरका धर्म है, सारी दुनियाको जीतनेकी आकांक्षा रखनेवाले जिनेश्वरका धर्म है। जब तक दुनियाके अेक कोनेमें भी हिंसा होती रहेगी, तब तक यह अहिंसा-धर्म पराजित ही है। सिर्फ सूक्ष्म जंतुओंको कृत्रिम तरीकोंसे भरण-पोषण देकर जिलानेसे ही अहिंसा-धर्मको सन्तोष नहीं होना चाहिये। जो महावीर है, अुसको चाहिये कि वह महावीरकी तरह तमाम दुनियाका दर्द — पांचों खंडोंका दर्द — खोज कर देख ले; और अपने पासकी सनातन दवा वहां पहुंचा दे। महावीरके अनुयायियोंको हृदयकी विशालता और अुत्साहकी शूरता प्राप्त करके सभी जगह संचार करना चाहिये। संग्रामका वीर शस्त्रास्त्र लेकर दौड़ेगा। अहिंसाका वीर आत्मशुद्धि और करुणासे सुसज्जित होकर दौड़ेगा। सारी दुनियाको अेक 'अपासरे' (जैन साधुओंका मठ) में बदल देना चाहिये। छोटेसे अपासरेमें कितनोंको आश्रय मिल सकेगा?

महावीर-जयन्ती

चैत सुदी १३

१ दिन

अस दिन ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, महावीर, नेमीनाथ आदि तीर्थंकरोंकी जानकारी करायी जाय; और मनुष्येतर प्राणी भी मानव-जातिके छोटे-छोटे भाभी ही हैं, अन्हें दुःख नहीं देना चाहिये, अउनका भी भला चाहना और करना चाहिये, क्योंकि हम अउनके अभिभावक और रक्षक हैं, आदि बातें विद्यार्थियोंको समझानी चाहिये। यह बात भी अउनके दिलमें विठानी चाहिये कि वही जीवन अुत्तम है, जिसमें औरोंको कम-से-कम पीड़ा दी जाती हो। अस दिनका विशिष्ट बोध यह है कि अहिंसा ही अमृतत्व है और अपरिग्रह ही अमीरी है।

८

लोगोंके हनुमान

[चैत सुदी १५]

१

हिन्दूधर्मकी यह अेक खूबी है कि असके चित्र अस प्रकार खींचे हुअे होते हैं कि वे छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित, अुच्च अभिष्टि रखनेवाले और भोलेभाले, सभी लोगोंको प्रिय हो जायें।

मनुष्य-मनुष्यके बीच जितना रागद्वेष होता है, अतना मनुष्य और मनुष्येतरोंके बीच नहीं होता। पशु-पक्षियोंके प्रति हमारा समभाव स्वाभाविक होता है। अउनके प्रति या तो कुतूहल होता है, या दयाभाव या अपेक्षा। लेकिन अीर्ष्या, मत्सर, द्वेष आदि मिश्र और हीनभाव नहीं होते। जिसलिअे पुराणकारोंने कअी आदर्शोंको पशु-पक्षियोंके रूपमें चित्रित किया है। आदर्श ब्रह्मचारी, आदर्श सचिव, आदर्श भक्त-सेवक और निष्काम समाज-हितकर्ता हनुमानका चित्र अितना भव्य है कि मनुष्य कोटिमें वह वास्तविक-सा नहीं मालूम होगा; अिसीलिअे शायद वाल्मीकिने अन्हें वानरका रूप दिया। 'वानर'के मानी हैं 'निकृष्ट' नर। लेकिन हनुमानके बारेमें तो असके मानी अलटे हैं, क्योंकि वे नरश्रेष्ठोंमें भी श्रेष्ठ हैं। 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हैं।

अिन्हीं गुणोंका अुत्कर्ष मनुष्यमें दिखानेके लिये वाल्मीकिजीने लक्ष्मणजीका भी चित्र खींचा। चौदह वर्ष तक कंद-मूल-फलाहार करके अुन्होंने अपने ब्रह्मचर्यको निभाया। राम-सीताकी सेवा अुन्होंने अनन्य निष्ठाके साथ की। लेकिन वह थे मनुष्य। अुन्हें सीताका ताना सहना ही पड़ा।

भरत भी जैसे ही आदर्श राजसेवक और राजभक्त थे। भरतसे अधिक श्रेष्ठ वाजिसराय (राज-प्रतिनिधि) दुनियामें किसीने नहीं देखा होगा। लेकिन वे भी मनुष्य ही थे। अिसीलिअे अुनके वारेमें तुच्छ कल्पना करके कैकेयीने दशरथसे राज्य मांग लिया। वे मनुष्य थे, अिसीलिअे कैकेयी अुनका अिस तरह अपमान कर सकी। खैर यह बात जाने दीजिये। आदर्शबन्धु लक्ष्मण भी अेक वार — अेक वार ही सही — भरतके वारेमें सशंक हो गये। मनुष्य-मनुष्यके बीच अिनकी अपेक्षा श्रेष्ठ सम्बन्ध कहाँसे लायें?

अिस तरह हार जानेके बाद, वाल्मीकिने मनुष्यकी मिट्टीको छोड़ बन्दरकी मिट्टी हाथमें ले ली और अुसमें से हनुमानको बनाया। और वहाँ वे सफल हो गये।

२

वाल्मीकिने हनुमानको वानर बनाया और बहुजन समाजके स्वभावमें रही हुआ वानर-वृत्तिको जगा दिया। हनुमान वानर हैं, अिस बातको लेकर लोगोंने अैसी-अैसी कहानियाँ रच डालीं, जो वाल्मीकि रामायणमें नहीं हैं। वाल्मीकि-रामायण, अध्यात्म-रामायण, आनन्द-रामायण, अद्भुत-रामायण, सीता-रामायण, तुलसी-रामायण, कृत्तिवास-रामायण, कंचन-रामायण, गंत्र-रामायण, 'परन्तु'-रामायण, दाम-रामायण, आदि-आदि अनगिनत रामायणें हैं। अिस प्रकार रचयिताओंकी भूमिकाअें अलग अलग हैं, अुसी प्रकार हरअेकके हनुमान भी अलग अलग हैं। लोगोंको अुछल-कूद अच्छी लगती है। वालकोंको कृतिमें और वड़ोंको स्मृतिमें ही क्यों न हो — खेलकूद तो चाहिये ही। और अिसीलिअे लोगोंने हनुमानके नये-नये संस्करण निकाले हैं। अिस तरह हनुमान लोकमान्य हो गये, लेकिन अिसके लिये अुन्हें तकलीफें भी कुछ कम नहीं अुठानी पड़ीं। अपने राजा सुग्रीवको वचन-दुर्बल हुआ देखकर अुसे आड़े हाथों लेनेवाले सचिव हनुमान कहाँ और रावणकी नाकमें अपनी पूंछका वारीक छोर घुसेड़कर अुसे छिका-छिकाकर अुसके मुकुटको नीचे गिरानेवाले मर्कट हनुमान कहाँ? अिस तरह प्रजारंजक राजाको प्रजाकी बहुतसी बातें

सहनी पड़ती है; प्रजासेवक लोक-नायकोंको प्रजाकी भक्तिके कारण परेशान होना पड़ता है; लोक-मानसमें जिम तरह महात्माओंके चित्र-विचित्र संस्करण तैयार हो जाते हैं; अुसी तरह राष्ट्रीय या धार्मिक ग्रंथोंको — प्रजाके आदर्शोंको — भी लोक-मुलभ विवृत्तियोंके कारण हैरान होना पड़ता है।

लेकिन इसीमें अुनकी अुपयोगिता है। इसीमें अुनकी सार्वभौम लोक-मान्यता निहित है। इसीमें आदर्शोंका चिरंजीवित्व है।

३

हनुमान अपनेको रामसेवक मानते थे। रामचन्द्रजीने कभी अपनेको हनुमान-स्वामी माना है? अुनके हृदयमें हनुमानजीके बारेमें कौनसा भाव रहा होगा? वुजुर्गीका? पितृ-वात्सल्यका? वन्वु-प्रेमका? या कृतज्ञता-बुद्धिका?

नारदजीके मनमें अेक वार यही शंका अुत्पन्न हुआ। वे अुठे और चले रामसे पूछनेके लिये। नारदजी तो स्वयं दुनियाके सम्वाददाता ठहरे। औरोंसे प्राप्त हुआ खबरें अुनके काम नहीं आनेकी। इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि वे स्वयं जाकर अुनसे मुलाकात करें? लेकिन वेचारोंको अुसी दिन कड़वा अनुभव हुआ। द्वारपाल अन्दर ही न जाने दे। कहने लगा: 'महाराज रामचन्द्र पूजामें लगे हैं। इस समय आप अन्दर नहीं जा सकते। पूजा पूरी होने दीजिये, फिर शौकसे अन्दर चले जाजिये।' आश्चर्यान्वित नारद ऋषि मनमें विचार करने लगे, 'राम तो प्रत्यक्ष परमेश्वर, त्रैलोक्यके स्वामी हैं। चारों वेद गाकर ब्रह्मा थक गये, लेकिन राम-रहस्य न समझ सके। योगीराज शंकर हलाहल पी गये; अुस समय रामनामसे ही अुन्हें शांति मिली। अैसे ये भूतनाथ और शरण्य श्रीरामचन्द्रजी किसकी पूजा करते होंगे? नारदको अपमानकी अपेक्षा कुतूहल अधिक असह्य हो गया। अेक-अेक पल अुन्हें युगके समान दीर्घ मालूम होने लगा। आखिर अिजाजत मिल गयी। अन्दर जाकर देखते क्या हैं कि कितनी ही सुवर्णकी मूर्तियां सामने रखकर रामचन्द्रजी आरती कर रहे हैं। तैतौस करोड़में से यह कौनसे धन्य देवता हैं, जिनकी श्री रामजी अुपासना कर रहे हैं? नारदजी धूर-धूरकर देखने लगे।

अरे यह क्या? यह तो लक्ष्मणकी मूर्ति है। यह रहे भरत। और अिनसे भी अूंची जगह विठाये हुअे यह कौन हैं? यह तो भक्तराज हनुमान हैं। अहो आश्चर्य! अहो आश्चर्य! नारदने कितनी ही वार भगवान्के सहस्र नाम

गाये थे, लेकिन 'भक्तके भक्त' यह श्रीशिवका नाम अन्होंने कभी सुना न था। और जब अन्होंने हनुमानजीके पास ही खड़ी चोटीवाली अपनी छोटीसी मूर्ति देखी, तब तो बेचारे शरमके मारे पानी-पानी हो गये। और मुलाकातके सवाल पूछे बिना ही संछिन्न-संशय हो कर वहांसे चलते बने।

मार्च, १९२९

हनुमान-जयन्ती

चैत सुदी १५

१ दिन

बच्चे और नवयुवक जिस त्यौहारको अपना निजी त्यौहार समझते हैं। रामभक्त, रामसेवक, बाल-ब्रह्मचारी, 'बुद्धिमतां वरिष्ठ' हनुमान ही विद्यार्थियोंके आदर्श बन सकते हैं। श्रीरामचन्द्रजी अपना अवतार-कार्य समाप्त करके निज घामको चले गये, लेकिन निरपेक्ष निरलसतासे रामकार्य चलानेके लिये हनुमानजी चिरंजीवी होकर पीछे ही रहे हैं। आर्य हनुमानके आदर्शसे विद्यार्थीगण आवश्यक प्रेरणा ले सकते हैं। जिस दिन स्कूलके कार्यक्रममें खेल, कसरत और खासकर मल्लयम और कुश्ती रखनी चाहिये। समाजमें जाकर काम करनेका मौका अगर मिल सके, तो जिस दिन किसी-न-किसी क्षेत्रमें सेवाका उपक्रम करना चाहिये। जहां अखाड़े नहीं हैं, वहां अनुकी स्थापना करना, गरीब विद्यार्थियोंको गायका दूध मिल सके जिसलिये चंदा अिकट्टा करना आदि बहुत-कुछ किया जा सकता है।

अगर स्वास्थ्यके लिये अनुकूल हो तो हनुमान-जयन्तीके दिन कोअी भी पका हुआ अन्न न खानेका कार्यक्रम रखा जा सकता है। भीष्माष्टमीकी तरह जिस दिन भी ब्रह्मचर्यकी महत्ताको विद्यार्थियोंके दिल पर अंकित करना चाहिये। यह बात अगर विद्यार्थियोंकी समझमें आ जाय कि कार्तिक स्वामी और हनुमान वज्रकाय सेनापति हो गये, अुसका कारण उनका 'काया वाचा मनसा' ब्रह्मचर्य ही था, तो समझना चाहिये कि जिस त्यौहारका अुद्देश्य सफल हो गया। कहते हैं कि हनुमानको आकके फूल प्यारे लगते हैं। ब्रह्मचारियोंके लिये तो जैसे ही फूल अच्छे हैं न?

वानर-सेना अपना सम्मेलन जिस दिन रख सकती है।

परशुराम और बुद्ध

[वैशाख सुदी ३]

जिस तरह द्रौपदी और सीता दो अलग-अलग आदर्श हैं, उसी तरह राम और कृष्ण भी अलग-अलग आदर्श हैं। प्राचीन कालसे जिन दो आदर्शोंके बीचका साधर्म्य और वैधर्म्य, साम्य और वैपम्य हम देखते आये हैं। अन्तमें हमने दोनों आदर्शोंका सार अपने जीवनमें जुतारकर उन दोनोंमें समन्वय कर दिया है। जिस दिन हमने जिस प्रकारका समन्वय किया, उसी दिन हमें 'राम-कृष्ण' यह सामासिक नाम सूझा। राम ही कृष्ण हैं, शान्ता ही दुर्गा हैं, शिव ही रुद्र हैं, जनार्दन ही विश्वंभर हैं, यह जिस दिन हमें सूझा उस दिन हिन्दू तत्त्वज्ञानमें समाधान पैदा हुआ; तात्त्विक खोजमें अंक पूर्ण-विराम आया। पूर्णविरामसे नया वाक्य शुरू होता है। दो आदर्शोंके विवाहसे नयी सृष्टि पैदा होती है।

परशुराम और बुद्ध दोनों विष्णुके ही अवतार माने जाते हैं। लेकिन क्या हम उन्हें कभी कल्पनाके क्षेत्रमें भी पास-पास लाये हैं? परशुराम और बुद्ध! दोनोंमें साधर्म्य या वैधर्म्यका क्या कुछ सम्बन्ध भी है?

परशुराम ब्राह्मण क्षत्रिय हैं; भगवान् बुद्ध क्षत्रिय ब्राह्मण हैं। परशुरामने ब्राह्मण होते हुअे भी मनु (क्रोध) को खुला छोड़कर शरीर-बल पर ही आश्रय रखा। शाक्यमुनिने राजवंशी होने पर भी क्षमाको प्रधान पद देकर आत्मिक बलका गौरव बढ़ाया। परशुरामको क्षत्रिय सत्ता प्रजाभीड़क मालूम हुआ। श्रीश्वरने मनुष्यको दो ही बाहु दिये हैं, और वह भी अज्ञानके लिये। क्षत्रिय अगर सहस्रबाहु बन जाय और प्रत्येक बाहु शस्त्र धारण करे, तो बेचारा दीन समाज जाये कहां? क्षत्रिय रक्षा करनेके लिये हैं। वे-ही अगर प्रजा-भक्षक बन जाय तो प्रजाकी रक्षा कौन करेगा? परशुरामको लगा कि क्षत्रियका शास्ता ब्राह्मण है। बात तो सही है। लेकिन क्षत्रियका शासन करनेमें ब्राह्मणको अपना ब्राह्मण्य तो खोना ही नहीं चाहिये। परशुरामने हाथमें भारी परशु लेकर सहस्रबाहुके हाथ काटने शुरू किये। क्षत्रियोंका जुलम दूर करनेके लिये उन्होंने थिक्कीस बार उन पर जुलम किया!!

परशुरामने क्षत्रियके सभी गुण प्राप्त कर लिये थे। क्षत्रिय यानी सिपाहीको अपने सरदारके हुक्मकी, एक क्षण भी विचार किये बिना, तामील करनी चाहिये। मातृभक्त परशुरामने पिताका हुक्म होते ही अपनी माताका शिरच्छेद किया। ब्राह्मण तो अश्वर्यसे दूर ही रहता है। जो क्षत्रिय होगा, वही पृथ्वीको जीत लेगा और उसका दान करेगा। परशुरामने भी त्यागका नहीं किन्तु 'जीत और दान' का ही रास्ता पसन्द किया।

अब बुद्धको देखिये। उन्होंने राज्यका त्याग ही किया। अपनी शान्तिके द्वारा मार पर विजय प्राप्त की। कर्णाका प्रचार किया। परशुरामके कारण क्षत्रिय भयभीत हो गये और उन्होंने आत्मरक्षाके लिये संघवलका साम्राज्य स्थापित किया। भगवान् बुद्धके कारण उनके शिष्य निर्वर हो गये और उन्होंने अभयका साम्राज्य स्थापित किया।

परशुरामके सद्भावका प्रभाव उनके समयमें चाहे जितना हुआ हो, मगर आज वह नहीं के समान ही है। परशुरामके कारण साम्राज्यकी कल्पना अल्पन्न हुआ। साम्राज्यकी कल्पनाने दिग्विजयका मोह पैदा किया और दिग्विजयकी कल्पना यानी निरन्तर विग्रह। जैसा कि भगवान् बुद्धने धम्मपदमें कहा है, 'जीत कलहका मूल है।' क्योंकि पराजित व्यक्तिके हृदयमें अपमानका शल्य चुभता रहता है, उसे नींद भी मुश्किलसे आती है; और वह दुनियाको चैन नहीं लेने देता।

जयं वेरं पसवति दुक्खं सेते पराजितो।

अपसंतो सुखं सेति हित्वा जय पराजयं॥

भगवान् बुद्धका प्रभाव परशुरामकी अपेक्षा अधिक गहरा भी हुआ और अधिक व्यापक भी। परशुरामका मार्ग हिंसाका था; और बुद्ध भगवान्का अहिंसाका। हिंसामें वीर्य नहीं है। हिंसाने आज तक न तो किन्हीं अच्छे तत्त्वोंका नाश किया है और न किन्हीं बुरे तत्त्वोंका ही। हिंसाने जिस तरह दुष्ट लोगोंके शरीरका नाश किया है, उसी तरह सज्जन लोगोंके शरीरका भी अतना ही नाश किया है। लेकिन दुनियामें रही हुआ सज्जनता और दुर्जनता हिंसासे अस्पृष्ट ही रही है।

अहिंसाकी विजय स्थायी होती है; वशतः कि वह राजसत्ताकी मददके बिना हुआ हो। सत्य और सत्ता परस्पर विरोधी हैं। जब-जब सत्यने सत्ताकी मदद ली है, तब-तब सत्य अपमानित हुआ है और पंगु बना है। सत्यका

शत्रु असत्य नहीं है, असत्य तो अभावरूप है, अंधकाररूप है। सत्यको असत्यके साथ लड़ना नहीं पड़ता। जहाँ सत्यका प्रकाश नहीं पहुँचा है, वहीं असत्यका अंधकार रहता है। असत्यका स्वतंत्र अस्तित्व ही नहीं है। सत्यकी शत्रु है सत्ता। परशुरामने सत्ताके द्वारा—बलके प्रभावके द्वारा—सत्यका यानी न्यायका प्रचार करना चाहा। बुद्ध भगवान्के अनुयायियोंने भी जब साम्राज्यकी प्रतिष्ठाके जरिये सत्यका प्रचार करना चाहा, तब सत्य लज्जाके कारण संकुचित हो गया।

अब समय आ गया है कि जब परशुरामकी न्यायनिष्ठा और बुद्ध भगवान्की अवैर-निष्ठाका मिलन होना चाहिये। मनमें जरा-भर भी द्वेष या विष रखे बिना अन्यायका प्रतिकार करना और सत्ताके साथ लड़ना, यही आजका युगवर्म है। क्या यही सत्याग्रह नहीं है?

१९२२

अक्षय-तृतीया

वैसाख सुदी ३

आधा दिन

अक्षय-तृतीया कृतयुगके आरंभका दिन है। जिस दिन सत्य और अहिंसाकी भीमांसा की जाय। किसानोंका वर्ष जिस दिनसे शुरू होता है। जिसलिये श्रम-जीवनके महत्त्वका आज निरूपण किया जाय। अक्षय-तृतीयासे पेड़ोंको नियमित रूपसे पानी देनेकी ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। खेतीसे संबंध रखनेवाला कोमी कार्यक्रम अगर जिस दिन रखा जा सके तो अच्छा है।

श्रमजीवी, बुद्धिजीवी, पूंजीजीवी और भिक्षाजीवी लोगोंके जीवनके तारतम्यके बारेमें जिस दिन अच्छा विवेचन किया जाय।

हर अमावसके दिन समुद्रमें ज्वार आता है, लेकिन कहते हैं कि चैतकी अमावसके बाद आनेवाली अक्षय-तृतीयाका ज्वार और सब ज्वारोसे कहीं बड़ा-चढ़ा होता है।

यही दिन परशुराम-जयन्तीका भी है। परशुरामका चरित्र जाननेके बाद ही श्रीरामचन्द्रजीके अवतारका रहस्य ध्यानमें आ सकेगा।

ब्राह्मण और क्षत्रियोंके बीचके झगड़े मिटाकर दोनोंको विश्व-कल्याणकी ओर मोड़नेका कार्य श्रीरामचन्द्रजीने किया। लेकिन ये झगड़े किस प्रकारके

थे, कहां तक चलते रहे, आदि सब बातें हमें परशुरामकी जीवनीसे ही मिल सकेंगी। क्षत्रिय-रक्तसे अनेक कुण्ड भरनेवाले परशुराम ब्राह्मण-धर्मका अधःपात सूचित करते हैं।

१०

धर्ममणि श्री शंकराचार्य

[वंसाख सुदी १०]

अस कलिकालके याज्ञवल्क्य और व्यास अगर कोओ हैं, तो वे हैं हमारे श्री शंकराचार्य। लेकिन उनका जीवन-मंत्र था : 'मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयः न च धूमयितं चिरम्।' (एक घड़ीके लिये जलते रहना अच्छा है, न कि चिरकालके लिये धुआं अगलते रहना।) वतीस वरसकी अुम्रमें हिमालयकी पवित्र भूमिमें अपना तपःपूत कलेवर छोड़कर परमात्मामें विलीन होनेवाले असि संन्यासीकी विभूति हिमालयसे तनिक भी कम न थी। हिमालयकी शोभाके साथ—जहां काले पत्थर और सफेद बरफको छोड़कर कुछ मिलता ही नहीं—शंकराचार्यके अद्वैत वेदान्तके तत्त्वज्ञानकी ही तुलना की जा सकती है। वनस्पतिके लिये जहां अवकाश ही नहीं, अुस हिमालयसे ही जिस तरह वनस्पति-सृष्टिकी और फलतः प्राणीमात्रकी माताअें सिन्धु, सतलज, गंगा, यमुना, सरयू और ब्रह्मपुत्रा जैसी छोटी-मोटी असंख्य नदियां निकलती हैं और देशको समृद्ध करती हैं, अुसी तरह शंकराचार्यके अद्वैत सिद्धान्तसे ज्ञान, भक्ति, कर्म और अुपासनाकी नदियां बहती आयी हैं, जिन्होंने हिन्दूधर्मको आजका यह बहुरूपी समृद्ध और संगठित रूप दिया है।

शंकराचार्यके जीवनमें करुण और अद्भुत, वीर और शान्त अनेक रस भरे हुअे हैं। अुनकी मातृभक्ति अुनकी प्रखर ज्ञाननिष्ठासे जरा भी कम नहीं थी। वासनाओं पर विजय पानेवाला यह वैराग्यवीर हृदय-धर्मसे वेवफा नहीं हुआ था।

दूरदर्शी लोगोंने कायर वनकर जिस संन्यास-धर्मको हिन्दूधर्मसे रखसत दी थी, अुसी संन्यास-धर्मका शंकराचार्यने पुनरुद्धार और प्रचार किया। अितना ही नहीं, किन्तु संन्यासियोंके अलग-अलग दस पंथ भी स्थापित किये। आगे जाकर संन्यासियोंके रूढ़ धर्मको ताक पर रखकर अुन्होंने स्वयं अपनी माताके

अंतकालके अवसर पर अुसकी सेवा की और अुसका श्राद्ध भी किया। भेद-मात्रका नाश करने पर भी भक्तिमार्गकी आर्द्रतासे अुन्होंने हिन्दूधर्मको सजीव रखा। और इस दुनियाको मायारूप करार देने पर भी इसी दुनियाकी धर्मसंस्थाको संशुद्ध किया—अुसका संगठन किया।

पुरी, बदरीनारायण, द्वारका और शृंगेरी अिन चार कोनोंमें चार मठोंकी स्थापना करके शंकराचार्यने धर्मका अुध्ययन, अुसका प्रचार और धर्म-व्यवस्थाकी रचना प्रचलित की। यह दुःखकी बात है कि हम लोग शंकराचार्यके वेदान्तके दार्शनिक और तार्किक पहलुओंका ही अुध्ययन करते हैं। अद्वैत यानी अमीर व गरीबके बीचका अभेद, पापी और पुण्यवानके बीचका अभेद, स्त्री और पुरुषके बीचका अभेद, जीवात्मा और परमात्माके बीचका अभेद, तमाम प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठितोंके बीचका अभेद; अद्वैतके इस पहलूके महत्त्व पर हम लोग ध्यान नहीं देते। अद्वैतके सिद्धान्त पर रचे हुअे समाजशास्त्रका अब तक हमने कहां निर्माण किया है?

मायावादके परिणामस्वरूप अपनी जिम्मेदारीको भूल जानेके बदले लोग अगर अपने दुःखको भूल जायं, अपनी कायरताको भूल जायं, औरोंके किये हुअे अपकार और अपमानको भूल जायं और अैसा समझें कि यह सब मायारूप है, तो कितना अच्छा हो! सबकी आत्मा अेक ही है, इसके वारेमें जिन्हें शक नहीं है, अुन्हें अब यह भी जान लेना चाहिये कि सबका मन और हृदय भी अेक ही है। मनुष्य-जाति अगर बितना जान ले कि सुख-दुःख, हित-अहित, अुन्नति-अवनति आदि सभी हालतोंमें हम दुनियाके साथ बंधे हुअे हैं, अेकस्वरूप हैं, तो अैहिक और पारलौकिक दोनों मोक्ष संपन्न होंगे। इस दृष्टिसे देखा जाय, तो शंकराचार्यका मिशन या जीवन-कार्य इसके बाद शुरू होनेवाला है।

गंगाके किनारे अुत्तराखंडमें जो श्रीनगर है, अुसे सिद्धपीठ कहा जाता है। इस जगह की हुअी सावना व्यर्थ नहीं जाती और शीघ्र फलदायी होती है। देवी-भागवतमें इस स्थानका बहुत महत्त्व बताया है। पहले यहां अेक अैसे पत्थरकी पूजा होती थी, जिस पर श्रीचक्र खुदा हुआ है। कहते हैं कि इस स्थान पर प्राचीन कालमें प्रतिदिन अेक नरमेघ होता था। आद्य शंकराचार्य जब श्रीनगर गये, तब मनुष्य-वचका यह अनाचार देखकर अुनकी वर्म-भावना अुबल पड़ी। अुन्होंने अेक सब्बल लेकर श्रीचक्रके पत्थरको अौधा कर दिया, और आज्ञा दी कि आजसे नरमेघ बन्द!

प्रस्थान-त्रयी पर भाष्य लिखकर और नितान्त रमणीय स्तोत्र लिखकर शंकराचार्यने हिन्दूधर्मकी जो सेवा की है, उससे नरमेघ वन्द करनेकी यह सेवा कहीं बढ़कर है, जिसके वारेमें क्या किसीको शक हो सकता है? भाष्य लिखनेके लिये बुद्धि-वैभवकी आवश्यकता होती है। स्तोत्रोंके लिये भक्ति न होकर केवल कल्पना-अुल्लास ही हो तो भी काफी है। लेकिन धर्मांध समाजके खिलाफ जाकर प्राचीन कालसे चलती आयी घातक रूढ़िको अेकदम वन्द कर देनेके लिये तो तपस्तेज, धर्मनिष्ठा और हृदय-सिद्धि ही चाहिये।

नरमेघ वन्द करानेकी यह कहानी जवसे मैंने सुनी है, तवसे शंकरा-चार्यकी वह नाटी और मोटी मूर्ति — गेरुअे वस्त्र, रुद्राक्षमाला और भस्म-विलेपनसे मंडित और आगलात् मुण्डित मूर्ति — आंखोंसे ओझल ही नहीं होती। निर्दय शाक्त कर्मकाण्डी ब्राह्मण चारों तरफ हाहाकार मचा रहे हैं, और उनके बीच हाथमें सब्बल लेकर जिस तेजस्वी संन्यासीकी मूर्ति खड़ी है। अेक भी कर्मवीर पास आनेकी हिम्मत नहीं करता। और ये ज्ञानवीर तपस्वी धरथराते हुअे होठोंसे याज्ञवल्क्यकी तरह अेक-अेकको या सभीको मिलकर शास्त्रार्थके लिये आह्वान देते हैं। लेकिन किसीकी बुद्धिप्रभा जिस धर्ममूर्ति दिग्विजयी संन्यासीके सामने प्रकाश नहीं कर सकती। याज्ञवल्क्यकी तरह वे गरज रहे हैं कि 'ब्राह्मणा भगवन्तो यो वः कामयते स मा पृच्छन्तु, सर्वे वा मा पृच्छत, यो वः कामयते तं वः पृच्छामि, सर्वान् वा वः पृच्छामीति। ते ह ब्राह्मणा न दधृपुः।'।

भेदमें अभेद रखनेकी गीताकी शिक्षाको शंकराचार्यने हम हिन्दुओंकी अुपासनामें भी पूरी तरह वुन लिया। तैंतीस करोड़ देवी-देवताओंसे भी न अघानेवाले हमारे लोगोंने आर्य-अनार्य, स्वदेशी-विदेशी, नये-पुराने, भले-बुरे, देव-पीर, भूत-प्रेत आदि अनेक अुपास्योंकी लिचड़ी पका रखी है। जिन-सवमें से पांच देवोंका आयतन बनाकर अुन्होंने यह करार दिया कि वाकी सभी देवी-देवता जिन पांचोंके ही अवतार हैं। और जिस तरहकी व्यवस्था कर दी कि जिन पांचोंमें से चाहे जिस अिष्टकी पूजा करो, लेकिन अुसके आस-पास वाकीके चार देवताओंको बिठाने पर ही यह पूजा हो सकेगी।

पंचायतन-पूजाके द्वारा सब देवोंके समन्वयका और अभेदका अुन्होंने जवसे सूचन किया, अुसी दिनसे हिन्दू-अुपासना-पद्धतिमें समन्वय दाखिल

हुआ और विग्रह मिट गया। सर्वसमन्वय और अभेद यह श्री आद्य शंकराचार्यकी हिन्दूधर्मको बड़ी-से-बड़ी भेंट है।

२५-५-३८

शंकर-जयन्ती

बंसाख सुदी १०

आधा दिन

अद्वैत सिद्धान्तकी दार्शनिक दृष्टिसे यह त्यौहार नहीं मनाना है। यह जिस तरह मनाना चाहिये कि जिससे सभी संप्रदायके लोग जिसमें हिस्सा ले सकें। श्री शंकराचार्यकी मातृभक्ति, धर्मनिष्ठा, श्रीश्वर-भरायणता, शास्त्राध्ययन और हिन्दूधर्ममें नयी व्यवस्था लानेकी अुनकी शक्ति, आदि बातोंके कारण अुनका कार्य अखिल जनताके लिये शिक्षाप्रद हो गया है। जिस दिन शंकराचार्यके तथा औरोंके भी बनाये हुअे सुन्दर-सुन्दर स्तोत्र गानेका और अुन पर विवेचन करनेका कार्यक्रम रखा जाय। जिस दिनका यह प्रधान कार्यक्रम होना चाहिये कि सामाजिक और राष्ट्रीय अद्वैतकी दृष्टिसे ब्राह्मणसे लेकर अन्त्यज तक सबकी आत्मा अेक है, जिसके बारेमें विवेचन किया जाय। जिसके बारेमें तो मतभेद होगा ही नहीं कि श्रीश्वरकी अुपासना ही सत्य है और जगत्की अुपासना माया-मोह है।

जिस दिन मोहमुद्गर स्तोत्र गाया जाय और अुसके प्रसंगका वर्णन किया जाय।

११

बोधि-जयन्ती

[बंसाख सुदी १५]

१. बोधि-प्राप्ति

महाप्रयाससे कोलम्बसने अमेरिका जानेका रास्ता खोज निकाला। अब हमें वह प्रयास नहीं करना पड़ता। महाप्रयाससे भगीरथ गंगा ले आये। हमें अब वह मेहनत नहीं अुठानी पड़ती। अेक व्यक्तिने प्रयास किया; सारी दुनियाका लाभ हुआ। कृतज्ञतापूर्वक अुसका स्मरण करना, अुसका श्राद्ध करना, जिससे ज्यादा हमारे लिये कुछ करनेको बाकी नहीं रहता।

जिस भवचक्रमें से छूट जानेका रास्ता वैसाख सुदी पूर्णिमाके दिन शाक्यमुनि गौतमने खोज निकाला और वह बुद्ध हो गये। अब हमें चिन्ता करनेका कुछ कारण नहीं है। हमारा काम तो सिर्फ अितना ही है कि बुद्ध भगवान्का स्मरण करके अुनके बताये हुअे 'अष्टांगिक' नामक राजमार्ग पर सीधे चलें। अगर श्रद्धा हो और रास्ता बतानेवाले जिस ऋषिका तर्पण या श्राद्ध किया जाय तो अधिक अच्छा। लेकिन मोक्षका मार्ग, निर्वाणका मार्ग और स्वर्गका राज्य प्राप्त करनेका साधन अितना आसान नहीं है। वेदकालके ऋषियोंने यह रास्ता खोज निकाला था, फिर भी शाक्यमुनि और महावीरको अुसे फिरसे खोजना पड़ा। 'महता कालेन' यह रास्ता बार-बार नष्ट होता है और बार-बार अुसे खोजना पड़ता है। युगकी तो बात ही क्या, परमे-श्वरको व्यक्ति-व्यक्तिके हृदयमें स्वतंत्र रूपसे अवतार लेना पड़ता है, बोधिको प्रकट करना पड़ता है; और अुससे पहले हरअेक व्यक्तिको मारके साथ लड़ना पड़ता है, शैतानके साथ झगड़ना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्तिके मार्गमें काम-क्रोधादि परिपंथी (वटमार) हैं ही। अुनके साथ झगड़े विना योग नहीं प्राप्त होता, बोधि नहीं मिलती। हरअेकको स्वयं यह अमृत-कुंभ प्राप्त कर लेना चाहिये। वह जब तक न मिले तब तक अुसे सावधान रहना चाहिये। जिस तरह बुद्ध भगवान्ने मारके साथ युद्ध किया, अुसी तरह हरअेकको लड़ना चाहिये। भगवान् बुद्ध जिस तरह —

'अिहासने शुष्यतु मे शरीरं त्वगस्थिमांसं प्रलयं च यातु।'

(जिसी आसन पर बैठे-बैठे मेरा शरीर सूख जाय, और हड्डियों और मांसका लय हो जाय) — के निश्चयसे बोधि (ज्ञान) प्राप्त करनेके लिये बैठ गये थे, अुसी तरह हरअेकको बैठ जाना चाहिये। जिस तरह बुद्ध भगवान्को बोधि मिल गयी और वे तृष्णा-विरहित हो गये, अुसी तरह हरअेक व्यक्तिके लिये मोक्ष प्राप्त करनेका मार्ग खुला है। अुस मार्ग पर चलना प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्य है, और जब अुस मार्गसे हमें बोधि मिलेगी, तभी हमारे हृदयमें, हमारे जीवनमें बोधि-जयन्तीका सच्चा अुत्सव होगा। अुस समय तक विश्वासको दृढ़ करनेके लिये, श्रद्धा-वृक्षका सिंचन करनेके लिये, बुद्ध भगवान्की बोधि-जयन्तीका हम स्मरण करें।

मयी, १९१८

२. भगवान बुद्ध

१

हिमालयकी तराईमें, नेपालकी हृदमें, कपिलवस्तु नामका एक छोटासा राज्य था। वहां कोई राजा न था। वहांके शाक्य लोगोंमें जो थोड़े-से बड़े-बड़े घराने थे, उनके वजुर्ग मिलकर अपना वह छोटा-सा राज्य चलाते थे। उन वजुर्गोंको 'राजा' कहते थे। राजा शुद्धोदन अन्हीमें से एक था। शुद्धोदनको बड़ा सम्राट बननेकी जबरदस्त अभिलाषा थी।

जिस राजाकी रानी मायादेवीने एक पुत्रको जन्म दिया। राजाने आगम करवाया। ज्योतिषीने कहा, "राजन्, तुम्हारे भाग्यका पार नहीं है। तुम्हारा यह लड़का या तो सारी पृथ्वीका सम्राट होगा या फिर धर्म-सम्राट। जिसके दिलमें अगर वैराग्य पैदा हो जाय, तब तो यह धर्म-सम्राट ही होगा।"

राजाने पूछा, "वैराग्य किन कारणोंसे उत्पन्न होता है?" बुद्धिमान ज्योतिषीने कहा, "जन्म, जरा, व्याधि और मृत्युका दुःख देखनेसे।"

राजाने निश्चय किया कि तब तो हम भविष्यको परास्त कर देंगे। लड़केको जिस तरह रखेंगे कि वह उन चार चीजोंको देखने ही न पायेगा। गरमीके दिनोंका महल अलग, जाड़ेके दिनोंका अलग और चामासेका तो उनसे भी निराला होगा। घरमें कोई बीमार, बूढ़ा या अुदास नौकर नहीं मिलेगा। राजमहलके बगीचेके पेड़ों पर मुरझाया हुआ फूल या पीला पत्ता तक नहीं दिखायी देगा। सब तरफ सुगंध, संगीत, और काव्य-साहित्य ही होगा — जिस तरह जिसे पालूंगा।

पुत्र गौतम जिस स्थितिमें रहा। लेकिन जिस प्रकारके सुखसे क्या कोई सुखी हो सकता है? अुसका जी उन सारी चीजोंसे अुकता गया। बचपनसे ही वह विलक्षण बुद्धिमान् था और कभी वार वह गहरे विचारमें डूब जाता। पिताने सोचा कि लड़केका विवाह किया जाय, तो वह ठिकाने आ जायगा। लड़केने भी अुसे स्वीकार किया। एक स्वयंवरमें जाकर वहां अपना युद्ध-कौशल, बुद्धि-कौशल और कला-कौशल सिद्ध करके यह सिद्धार्थ-कुमार रूप-रमणी यशोधराको व्याह लाया। पिताने सोचा कि अब बेटा विलासमें डूब जायगा, लेकिन बेटा तो विचारमें डूब गया। अुसके दिलमें यह सवाल अुठने लगा कि "यह दुनिया क्या है? जो कुछ आसपास है,

वह तो सब खोखला मालूम होता है।” लड़केने पितासे यह मांग की कि मुझे सच्ची दुनिया देखनी है। वाप सहम गया। अगर ना कहे, तो बेटेको दुःख होगा और उस दुःखसे ही शायद उसके दिलमें वैराग्य पैदा हो जाय। और अगर हां कहे, तो भगवान् जाने क्या होगा।

वापने सारे शहरको सजवाया और ढिंढोरा पिटवाया कि कोभी भी वृद्ध या अशक्त मनुष्य बाहर न निकले। लेकिन बेटेको तो सच्ची दुनिया देखनी थी। वह सब जगह घूमा, सब कुछ देखा। दरवाजे पर आते ही उसने शहरके बाहर रथ हांकेको सारथिसे कहा। वहां उसने एक दुबले, अपंग और दुःखसे पीड़ित वृद्ध पुरुषको देखा। उसे देखकर उसने सारथिसे पूछा, “छन्न! यह क्या है?” सारथिने समझाया, “महाराज, यह बूढ़ा है, बीमार है और दुःखी है। थोड़े दिन बाद यह मर जायगा।”

कुमारने पूछा, “सो क्यों?”

छन्न बोला, “महाराज, यह संसारका नियम ही है। जितनोंने जन्म लिया है, उन सब पर रोग, दुःख, बुढ़ापा और मृत्यु तो आयेंगे ही। वे अटल हैं। सारे संसारकी यही हालत होगी।”

“और क्या इसकी कोभी दवा नहीं है?” कुमारने सवाल किया।

जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका यह दर्शन कुमारके हृदयमें तीरकी तरह चुभ गया। अगर बचपनसे ही वह ये सब बातें देखता रहता, तो हमारी तरह उस कुमारका हृदय भी कठिन हो जाता। लेकिन आज तक जो कभी नहीं देखा था, वह अकेलाअकेला देखनेमें आया; जिसलिये वह उस कुमार-हृदयको असह्य हो गया। उसी क्षण उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि “जिस दुःखमें रहनेमें कोभी पुरुषार्थ नहीं। जब सारा जन-समाज दुःखमें डूबा हुआ है, तब जिसकी कुछ-न-कुछ दवा तो होनी ही चाहिये। और उसे मैं खोजकर ही रहूंगा। अरे, जब कि सारा देश जिस प्रकारके दारुण दुःखमें जल रहा है तब फिर भोग-विलास कैसा? स्त्रीके साथ प्रणय कैसा? पुत्रका मोह कैसा? (कुमारको जिस बीच एक पुत्र भी हुआ था।) जिसका मैं अद्वार नहीं कर सकता, उसका अपभोग मैं क्यों करूं? मैंने अपने ये सत्ताबीस साल व्यर्थ गंवाये।”

कुमारके हृदयमें वैराग्यने प्रवेश किया और उसने अपने घर, राज्य, पत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल — सबका त्याग किया। पिता रोते थे, माता

मायादेवी तो अुसके जन्मके सातवें दिन ही मर गयी थी। सौतेली मां महाप्रजापतिने — जो अुसकी मौसी भी लगती थी — तो रो-रोकर आक्रन्दन किया। लेकिन कुमार जो घर छोड़कर गया सो चला ही गया।

अनोमा नदीके किनारे जाकर कुमारने अपने माथे परसे लंबे लंबे सुन्दर बाल अुतार दिये। रेशमके मुलायम बहुमूल्य वस्त्र फेंक दिये। अपने प्यारे कंयक घोड़ेसे विदा ली और महाभिनिष्क्रमण किया।

वह पहले-पहल भिक्षा मांगकर लाया, तो रातके वासी और विलकुल सूखे हुअे रोटीके टुकड़े गलेके नीचे अुतरते ही न थे। राजविलासी जीवन और तपस्वी जीवनके बीच दारुण युद्ध शुरू हो गया। लेकिन अेक ही क्षणमें वह खतम भी हो गया। अुसके बाद फिर कभी अिस प्रकारकी कठिनायीका अुसे भान नहीं हुआ।

गुरुकी खोजमें अनेक दिन वित्ताये। अुस समयके समाजसे और शास्त्रोंसे जितना कुछ मिल सका, अुतना ले लिया; जितना अपना सका, अुतना अपना लिया; फिर भी अुसे शान्ति न मिली। अैसी दवा भी हाथ नहीं आयी, जिससे दुनियाको शान्ति दिलायी जा सके। भांति-भांतिके योग शुरू किये, देह-दंडन किया; लेकिन कोअी थाह नहीं पायी।

अन्तमें विहारके धन्य प्रदेशमें, निरंजना नदीके किनारे, वह अनशन व्रत लेकर बैठ गया। दिमागमें विचार तो भट्ठीकी तरह धक्क रहे थे। अशुद्ध विचार जलने लगे, विश्वका रहस्य पिघलने लगा और तपस्वीको निश्चय हो गया कि अिसके बादकी यात्रा — अनुभवकी यात्रा — अिस तरहके काया-क्लेशसे, देहको दुःख देनेसे, होनेवाली नहीं है। वल्कि सुख और दुःखको छोड़ बीचकी जो समान स्थिति होती है, अुसीको धारण करनेसे आगे बढ़ा जा सकेगा।

तपस्वीने फिरसे आहार शुरू किया। आसपास जमा हुअे साधकोंने सोचा, तपस्वी हार गया, ढीला पड़ गया, अब अिसके साथ रहनेमें कोअी लाभ नहीं। अुसे छोड़कर सब चले गये। लेकिन तपस्वी तो आगे बढ़ता ही चला जाता था।

अंतमें कसौटीकी घड़ी आ गयी। महायुद्ध ठन गया, मनुष्य-जातिके शत्रु, हृदय-स्वाामीके प्रतिस्पर्धी और कुटिल तर्कोंके आद्यगुरु 'मार' ने अपना दस प्रकारका सारा दलबल अिस दयामय विश्वबंधु पर छोड़ा।

अहोभाग्य जिस मनुष्य-जातिका कि अन्तमें वैशाखी पूर्णिमाकी अुस रातमें 'मार' की हार हुअी और सिद्धार्थ यथार्थमें सिद्ध-अर्थ हो गये — तथागत बुद्ध बन गये।

२

जिसने अपना अुद्धार किया है, वही दुनियाका अुद्धार कर सकता है; जो स्वयं जगा हुआ है, वही दुनियाको जगा सकता है। 'बुद्ध' यानी 'जगा हुआ'। जिस क्षण सिद्धार्थ 'मारजित' हुअे, अुसी क्षण सारे विश्वका रहस्य अुनकी दृष्टिके सामने खुल गया और वे लोकजित होनेके योग्य हो गये।

अुन्होंने देख लिया कि हम देहधारी हैं, जिसलिये अुस हद तक प्रकृतिके नियमोंके अधीन हैं ही। प्रकृतिका दुःख अटल भले ही हो, लेकिन असह्य नहीं है। जन्म, जरा, व्याधि, मरण, प्रिय वस्तुओंका वियोग और अप्रिय वस्तुओंका संयोग — ये छः संकट तो हमेशा चलते ही रहेंगे। विवेकसे अुनके स्वरूपको समझ लें, तो अुनका दुःख कम होता है। दुनियाका सबसे बड़ा दुःख तो हम स्वयं ही पैदा करते हैं। कभी न बुझनेवाली तृष्णा ही हमें दुःखमें डुबो देती है और हमें अनन्तकाल तक दुःख-रसमें डालकर हमारे सारे जीवनका कड़वा अचार बना देती है।

जब तक यह तृष्णा नहीं मरेगी, तब तक हमारे दुःखका अन्त नहीं होगा। और अेक वार यह तृष्णा मर गयी, तो फिर दुःखका कुछ कारण ही नहीं रहता। जिसके वाद जो स्थिति रहेगी, वही हमारी विरासत है। वह स्थिति कैसी होगी, जिसकी चर्चा आज किसलिये करें? रोग मिट जानेके वाद क्या होगा?

क्या होना था? — कल्याण ही।

जिस स्थितिका नाम है निर्वाण। मुक्ति पाये हुअे सभी जीवोंका यही धाम है।

लेकिन यह ज्ञान सुनेगा कौन? यह दवा लेगा कौन? जिस रास्ते जायगा कौन? सारी दुनिया तृष्णाके पीछे पड़ी है। तृष्णाका नाच तो चलता ही रहेगा। अरेरे! तो फिर क्या किसीका अुद्धार होगा ही नहीं? अितने परिश्रमसे जिसे प्राप्त किया, वह दवा क्या अकारथ ही जायगी?

अुस करुणामूर्तिने फिरसे विचार किया। प्रसन्न हृदयमें से जवाब मिला कि "जो शुभ-संस्कारी हैं, अुनके प्रति मैत्रीभाव रखा जाय; जो वैभवशाली

हैं, अुनकी तरफ मुदिताका स्वीकार किया जाय, यानी अुनके मुखको देखकर हम खुश हों; जो दुःखी अथवा दुःस्थित हैं, अुनका तिरस्कार करनेके बदले अुनके प्रति करुणा-भाव रखा जाय; और जो दुष्ट प्रवृत्तिके हैं, हर जगह जो द्रोह ही फैलाते हैं और अकारण वैर रखते हैं, अुनके प्रति द्वेषके बदले कुछ नहीं तो अपेक्षा-भाव रखा जाय, तो सारी दुनियामें विजय ही है।”

ये चार वृत्तियां ही ब्रह्माके चार मुख हैं। जिन चारों मुखोंमें ही चारों वेद समाये हुअे हैं। यह देखकर बुद्ध भगवान् दुनियाकी सेवा करने निकले। और धर्मचक्र घूमने लगा।

३

जिनसे सेवाका कर्ज लेकर अितना ज्ञान प्राप्त किया, अुनके बोझसे प्रथम मुक्त हो जाना चाहिये। बुद्ध भगवान्को आहार करते देख जिन शिष्योंने अुनका त्याग किया था, अुनके पास सबसे पहले वे गये। और अुन्हें ज्ञान देकर कृतार्थ किया। फिर क्या था? हरअेक दुःखी मनुष्य अुनके पास आने लगा। जोगी आये और जती आये; अमीर आये और गरीब आये; अैसे अभिमानी गुरु आये, जिनके पीछे हजारों शिष्य थे, और अैसे दुर्बल भी आये, जिनके पीछे अुनका अपना मन या शरीर भी नहीं जाता था।

संघ बढ़ गया और संघकी सेवा करनेवाले लोग भी बढ़ गये। बड़े-बड़े विहार बनाये गये, बड़े-बड़े राजा लोग बुद्ध भगवान्की सलाह लेने आने लगे और प्रजाके नेता भी अुन्नतिके मंत्र सुननेके लिये अुनके पास आने लगे। यक्ष, गंधर्व, किन्नर सबको निर्वाणका रास्ता मिल गया और धर्मचक्र पूरे वेगके साथ घूमने लगा।

४

बेचारी यशोधराका क्या हुआ होगा? राहुलको कौन लाड़-प्यार करता होगा? राजा शुद्धोदनके दूसरा लड़का हुआ था, लेकिन वह सिद्धार्थको कैसे भूल सकता था? अपने बेटेकी कीर्ति सुनकर अुसे बुलानेके लिये राजाने अेक दूतको भेजा। लेकिन वह दूत वापस आवे तब न? वह तो शिष्य बनकर संघमें दाखिल हो गया। दूसरा दूत गया, अुसकी भी यही हालत हुअी। अब तीसरा कौन जायगा? आखिर बुद्ध अमात्य स्वयं गये। भगवान्के सत्संगका अेक साल तक लाभ अुठानेके बाद अुन्हें राजाका सन्देशा याद आया

और वे बुद्ध भगवान्को अपने पिताके पास ले गये। बुद्धने चिरत्रिघुरा यशोधरा, वालक राहुल और वृद्ध शुद्धोदन आदि सबको उपदेश किया और स्वयं भिक्षाके लिये निकल पड़े। कितनी शरम और नामूसीकी बात है कि राजाका वेटा दर-दर भीख मांगने जाता है! राजाने कहा, “वेटा, अपनी कुल-परंपरामें भिक्षा नहीं है।” वेटा बोला, “राजन्, आपकी कुल-परंपरा अलग है। मेरी कुल-परंपरा बोधिसत्त्वोंकी है। वे हमेशा गरीबोंके साथ रहते आये हैं और लोगोंका स्वेच्छसे दिया हुआ भिक्षान्न ही खाते आये हैं।”

५

महाप्रजापतिने विचार किया कि वहन तो बेटेको जन्म देकर मर गयी। उस दिनसे मैंने सिद्धार्थको पाला-पोसा और बड़ा किया। आज वही लड़का दुनियाका बुद्धारक बन गया है। उसके पास जाकर मैं क्यों न दीक्षा ले लूँ? शक्यकुलकी बहुतसी राजकन्यायें महाप्रजापतिके साथ बुद्ध भगवान्से मिलनेके लिये निकल पड़ीं। यात्राके कष्ट झेलते झेलते उनके पांव सूज गये। उन्होंने बुद्ध भगवान्से प्रार्थना की कि हमें भी संघमें स्थान दे दीजिये। भगवान्ने कहा, “यह न हो सकेगा। मेरा संघ विगड़ जायगा।” स्त्रियोंमें घोर निराशा फैल गयी, जिसलिये बुद्ध भगवान्के प्रिय शिष्य और सेवक आनन्दने पूछा, “तो क्या भगवन्, स्त्रियोंके लिये धर्मका साक्षात्कार अशक्य है?” बुद्ध भगवान्ने कहा, “वैसी बात तो नहीं है। वे भी निर्वाणकी अतनी ही अधिकारिणी हैं। उनमें भी धर्मको जाननेकी बुद्धि है।” आखिर बुद्ध भगवान्ने स्त्रियोंके लिये एक अलग संघ खोला। जिस संघमें अत्यन्त धर्मनिष्ठ और अधिकारी व्यक्ति हो गये हैं।

जीवनके अस्सी साल तक धर्मका उपदेश करके, कुशीनारा नामके स्थान पर उन्होंने अपना पवित्र चोला छोड़ा। धीरे-धीरे बुद्ध भगवान्का उपदेश पृथ्वी पर फैलने लगा। पाटलिपुत्रके महान् राजा अशोकवर्द्धनने बौद्ध धर्मोपदेशकोंको देश-देशान्तरमें भेजकर तथागत (बुद्ध भगवान्) का उपदेश सारी दुनियाको सुनाया। आज चीन, जापान, ब्रह्मदेश, लंका आदि देशोंमें बौद्धधर्म प्रचलित है। और बुद्ध भगवान्का उपदेश तो सारी दुनियाके विचारवान लोगोंके गले अतुरने लगा है।

३. अशियाका धर्मसम्राट

महाभारतीय युद्धके बाद कितना ही समय बीत गया। हिन्दुस्तानमें सर्वत्र छोटे-छोटे राज्य कायम हुअे। बहुतसे राजा तो पांच दस गांवके ही मालिक रह गये थे। बहुतसे राज्योंमें राजा न था, बल्कि प्रतिष्ठित कुलके अगुआ निगम-सभामें बैठकर राजकाज चलाते थे। अिस पद्धतिको महाजन-सत्ताक राज्य-पद्धति कहते हैं। हिमालयकी तराबीमें नेपालके पास शाक्य लोगोंका अिस प्रकारका अेक राज्य था। वहां कपिलवस्तु नगरीमें शुद्धोदन नामका राजा राज्य करता था। अुस राजाके सिद्धार्थ नामका अेक सुलक्षण पुत्र हुआ। ज्योतिषियोंने भविष्य वताया कि यह राजपुत्र या तो चक्रवर्ती राजा होगा या जगत्का अुद्धार करनेवाला अेक धर्मसंस्थापक। अगर अिसके मनमें वैराग्य अुत्पन्न हो जाय, तो यह दूसरे मार्ग पर चलेगा। राजाने सोचा कि बुढ़ापा, रोग और मरण देखकर मनुष्यके दिलमें वैराग्य पैदा होता है। अिसलिअे अिस लड़केको अिस तरह रखें कि यह अिन तीनोंमें से अेक भी चीज न देख सके।

सुख-चैन और अैश-आरामके वायुमंडलमें सिद्धार्थकी परवरिश की गयी। यशोवरा नामकी अेक अत्यन्त रूपवती और सद्गुणवती राजकन्याके साथ अुसका ब्याह कर दिया गया। लेकिन संयोगवश ब्याधि, जरा और मृत्युके अुसे दर्शन हुअे। अुसके मन पर बहुत वड़ा आघात पहुंचा। लेकिन यह सोचकर कि दुनियाका यह सारा दुःख दूर करनेका कुछ-न-कुछ अुपाय होना ही चाहिये और मुझे अुसकी खोज करनी ही चाहिये, सिद्धार्थने अपने राज्य और सुखोपभोगका त्याग किया और वह संन्यासी बन गया।

बहुतसे अच्छे-अच्छे गुरुओंसे अुसने ज्ञान प्राप्त किया। कठिन तप किया। ४९ दिन तक कुछ भी नहीं खाया और धर्म-बोधकी प्राप्तिके लिअे प्रयास किया। अुसे भुलावेमें डालनेके लिअे 'मार'ने, जो कि मनुष्यका शत्रु और सभी बुरी वासनाओंका राजा है, मोहक वस्तु, अूद, भूख, प्यास, विषय-वासना, आलस्य, भीति, कुशंका, गर्व, लाभ-सत्कार, पूजा और दुरे मार्गसे मिलनेवाली कीर्ति आदि अपने पूरे दलबलके साथ सिद्धार्थ पर धावा बोल दिया। लेकिन सिद्धार्थ अपनी शान्ति और विवेक पर डटा रहा और अुसने मार पर विजय पायी। मार पर विजय मिलनेके बाद तुरन्त ही अुसे दुनियाका

दुःख मिटानेका ज्ञान मिल गया, जिसे बौद्ध लोग बोधि कहते हैं। सिद्धार्थ बुद्ध हो गया और उसे परम आनन्द हुआ।

दुनियामें सब जगह जो दुःख है, उसका कारण वासनारूपी प्यास है। उसके ज्ञानका यह सार था कि जिस वासनारूपी प्यासको मिटानेसे दुःख दूर होगा और उसके लिये मनुष्यको योग्य ज्ञान, योग्य अिच्छा, योग्य भाषण, योग्य कर्म, योग्य धंवा, योग्य साधना, योग्य चिन्तन, और योग्य ध्यानका सेवन करना चाहिये। दयाकी जिस वृत्तिसे कि अपनेको मिला हुआ मार्ग अगर मैं दुनियाको दे दूँ तो दुनियाका भी भला होगा, बुद्धने धर्मोपदेश करनेके लिये घूमना शुरू किया। काशीके पास सारनाथ नामके तीर्थस्थानमें उसने अपने उपदेशका प्रारंभ किया। हजारों लोग तथागतका उपदेश सुननेके लिये अिकट्ठा होते। बुद्धका उपदेश जिनके गले पूरी तरह अुतरता, वे घरवार छोड़कर बौद्ध भिक्षु अथवा श्रवण बन जाते। भोग-विलासके पीछे सारा जीवन नष्ट करना या शरीरको कष्ट देनेमें ही संतोष मानना, ये दोनों सिरे बुद्ध भगवान्को पसन्द न थे। अुन्होंने बीचके मार्गको पसन्द किया। बौद्ध भिक्षु उपदेश सुनकर बुद्ध, उनके धर्म, और उनके प्रस्थापित भिक्षुसंघकी शरणमें जाकर कापाय वस्त्र धारण करते। भक्त लोगोंने जैसे लोगोंके रहनेके लिये बड़े-बड़े विहार बनवा दिये थे, जिस परसे मिथिला और मगधदेशका नाम ही विहार पड़ गया।

अजातशत्रु नामके उस समयके राजाने बुद्धके उपदेशका स्वीकार किया था। उस समयके कर्मकाण्ड और यज्ञयागके विरुद्ध बुद्ध भगवान्ने अेक भारी विप्लव खड़ा किया। उनका यह सिद्धान्त था कि धर्मके नाम पर पशुओंकी हत्या करनेसे स्वर्ग या मोक्ष नहीं मिलेगा। और चाहे जितने यज्ञ करने पर भी किये हुअे पापोंसे मुक्ति नहीं मिलेगी; किये हुअे कर्मोंको भुगतनेके अलावा कोअी दूसरा मार्ग ही नहीं। फिर जो करे, वही भुगते। औरोंके वलिदानसे हमें पुण्य नहीं मिल सकेगा। बुद्धने यह शिक्षा दी कि हम स्वयं पुण्यकर्म करें, पापकर्म छोड़ दें और अहंकारका त्याग करें, तभी पूर्ण कल्याण प्राप्त होगा। अेक दूसरेके साथ लड़कर बदला लेनेवाली हिंसक दुनियाको बुद्ध भगवान्ने धोपणा करके बतला दिया कि प्रतिशोवसे वैर बढ़ता है; प्रेमसे, क्षमा करनेसे ही वैर शान्त होता है। विजय शांतिका मार्ग नहीं है, क्योंकि

हारे हुअे मनुष्यके हृदयमें खार (ट्रेप) रह ही जाता है। शान्तिका यह अपुदेश दुनियाको देते हुअे अपनी अुम्रके अस्सी साल तक वे घूमे और अन्तमें कुशीनारा नामके गांवमें अेक गरीब भक्तका आतिथ्य स्वीकार करके अुन्होंने निर्वाण पाया। अुनके शिष्यवर्गने अुनके शरीरके अवशेष, यानी अस्थि और राखको आपसमें बांट लिया और अुन पर बड़े-बड़े स्तूप बनाये। जिन बुद्धने यह शिक्षा दी थी कि सारा संसार शून्य है, क्षणिक है, दुःखमय है, अिसमें से छूटना ही निर्वाण है, अुन्होंने बुद्धके शरीरके अवशेषोंके लिअे अुनके शिष्य-राजा आपसमें लड़े और बुद्धके अपुदेशको अेक तरफ रखकर अुनकी मूर्ति बनाकर अुसीकी पूजा करने लगे। मनुष्य अपने सत्कर्मोंसे ही निर्वाण प्राप्त कर सकता है, बुद्धके अिस अपुदेशके बदले अैसी मान्यता फैल गयी कि बुद्ध जैसे पुण्यप्रतापी सत्त्वोंकी कृपासे ही निर्वाण प्राप्त हो सकेगा; और लोग समझने लगे कि अपनी अिन्द्रियोंको वशमें रखनेके बदले केवल प्राणीमात्रकी सेवा करनेसे ही निर्वाण मिल सकेगा।

बौद्ध लोगोंने बुद्ध भगवान्के चरित्रका कअी तरहसे वर्णन किया है। अुनके जन्मके बारेमें बहुतसी दन्तकथायें लिखी हुअी हैं। हिन्दूधर्ममें जिस तरह अवतारकी कल्पना है, अुसी तरह बौद्ध लोगोंमें बोधिसत्त्वोंकी कल्पना है। बौद्ध लोगोंमें यह धारणा दृढ़ हो गयी कि अेक ही जीव अहंतपद प्राप्त करनेकी महत् अिच्छासे अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारकी पारमितायें यानी प्रावीण्य प्राप्त करके अन्तमें बुद्ध हो जाता है। बुद्ध भगवान्ने अपने पूर्व-जन्मकी कअी कथायें कही थीं। अुन परसे तरह-तरहकी जातक-कथायें रची गयीं और बुद्धका लीला-विस्तार बढ़ गया। अिन नये-नये गढ़े हुअे अनेक प्रकारके चमत्कारोंमें बुद्धका अैतिहासिक सादा जीवन ढंक गया और बुद्धके अुद्देश्यके रहस्यको अुनके जीवनमें देखना मुश्किल हो गया। फिर भी अिस प्रकारको जातक-कथाओं और बुद्धचरित्रों परसे अुस समयकी लौकिक धारणाओं और धार्मिक कल्पनाओंका अितिहास हमें मिलता है।

बुद्ध भगवान्ने अपने संवके लिअे दूरदेशीसे अनेक चतुराजीपूर्ण नियम बनाये। संघमें मतभेद हो जाय तो किस तरहका वर्ताव किया जाय, संघमें गन्दगी न आने पाये अिसलिअे कौन-कौनसी बातोंमें सचेत रहना चाहिये आदि अनेक सूचनायें अुन्होंने कीं। नियमोंकी अधिकता होकर मूल अुद्देश्य टूट न जाय, अिसलिअे अुन्होंने अपने मतको अनेक प्रकारसे स्पष्ट किया।

और, ऐसी शिक्षा-प्रणालीके अनुसार तैयार हुअे अपने शिष्योंको धर्मोपदेश देनेकी अनुज्ञा दी। बुद्ध भगवान्को अपने समयके पुराने विचारके लोगोंके साथ लड़ना पड़ता था। अतना ही नहीं बल्कि पुराने विचारके लोग जिन्हें नास्तिक या पाखंडी कहते थे, उन अपने जैसे दूसरे सुधारकोंके साथ भी उन्हें जूझना पड़ता था। जिन सब कारणोंसे बुद्धका उपदेश निश्चित शब्दोंमें और व्यवस्थित रूपमें रखा गया। सामान्य लोगोंके लिये बुद्ध भगवान्ने निम्न-लिखित नियम बतलाये थे :

किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये।

अन्यायसे कुछ भी नहीं लेना चाहिये।

शारीरिक पवित्रता नहीं छोड़नी चाहिये।

असत्य भाषण नहीं करना चाहिये।

चुगलखोरी नहीं करनी चाहिये।

कटुवचन नहीं कहने चाहिये।

वेकार बकझक या निंदा नहीं करनी चाहिये।

औरोंके द्रव्यका लोभ नहीं रखना चाहिये।

मनसे क्रोधको निकाल देना चाहिये।

मिथ्यादृष्टि यानी नास्तिकता नहीं रखनी चाहिये।

भिक्षुओंके लिये :

ब्रह्मचर्यका पालन करना;

मादक पदार्थोंका सेवन न करना;

दोपहरके बाद न खाना;

नृत्य, गीत आदि अुद्दीपक बातें न सुनना या न देखना;

माला, चन्दन आदिका अुपयोग न करना;

अूँचे या मुलायम बिछौने पर न सोना;

सोने-चांदीका स्वीकार न करना;

— जैसे अतिरिक्त नियम बुद्ध भगवान्ने बना दिये थे।

ये भिक्षु आठ महीनों तक देशमें सर्वत्र घूमकर धर्मोपदेश करते और चौमासेमें विहारमें अेक जगह बैठकर धर्मका अध्ययन और चिन्तन करते थे। धर्मोपदेशके लिये घूमते वक्त लोगोंकी तरफसे आसानीसे जो भिक्षा मिलती वही खाकर भिक्षु रहते थे।

बुद्धके संघमें सभी जातिके शिष्य आ सकते थे। स्त्रियोंके लिये भी बुद्ध भगवान्ने अेक अलग संघकी स्थापना की थी। बुद्धकी स्त्री-शिष्योंमें क्षेमा, अुत्पलवर्णा, आदि महान् भिक्षुणियां हो गयी हैं। अुन्होंने स्त्रीवर्गको ही नहीं, बल्कि पुरुषवर्गको भी अपदेश देकर अुन्हें सन्मार्ग दिखाया था। अुन जैसी भिक्षुणियोंको स्थविरा अथवा थेरी कहते थे।

बुद्ध भगवान्का संघ दुनियाकी सबसे पहली 'धर्मप्रचारकों (मिशनरियों) की संस्था' कही जा सकती है।

१९२३

४. बुद्ध-अवतार

भगवान् बुद्धको हम श्री विष्णुका अवतार मानते हैं। मुझे अैसा लगता है कि अगर तथागतको अवतार मानना ही हो, तो फिर महादेवका अवतार क्यों न मानें? वह भवपालक नहीं, भवरोगघ्न—भवनाशक हैं। लेकिन शाक्यमुनिको अवतार मानना ही मुझे पसन्द नहीं है। अवतारके मानी क्या हैं? दुनियाका दुःख देखकर, ज्ञानका लोप देखकर शुद्ध, बुद्ध, नित्य, मुक्त परमेश्वर दुनियावी रूप धारण करके 'नीचे अुतरता है'। मनुष्योंमें रहकर मनुष्योंकी तरह वह भले ही वर्ताव करे, लेकिन वह मनुष्य नहीं है। अुसकी जाति ही अलग है। अुसके अनुग्रहसे हमारा अुद्धार भले ही हो, लेकिन अुसका अनुकरण करनेकी विच्छा हमें नहीं होती। हम कृष्णके अुपासक बन सकते हैं, परंतु कृष्णका अनुकरण तो करते ही नहीं। गौतम-बुद्ध अवतार नहीं थे, मनुष्य थे। दुनियाका दुःख देखकर, सम्यक् ज्ञानका अभाव देखकर 'वह चढ़े', अीश्वरकी तरह 'अुतरे' नहीं। अेक सामान्य परंतु श्रद्धावान् जीव अनेक जन्म तक चढ़ते-चढ़ते बोधिसत्त्वसे बुद्ध हो गया; मनुष्यका देव बन गया; शुद्ध, बुद्ध, मुक्त बन गया। आर्ये था, अर्हंत बन गया। अुसका जीवन अनुकरणीय है। सीता-सावित्रीकी तरह बुद्ध भगवान्ने दुनियाको यह वता दिया है कि मनुष्य कहां तक चढ़ सकता है। वह श्रद्धा और कर्षणाकी मूर्ति थे। यमराजके यहां जानेवाले नचिकेताको धृद्धा बुद्ध भगवान्में थी। गुरुसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके निर्भय हो जानेके बाद जनक राजा राजपाट छोड़नेके लिये तैयार हो गये। गुरुकृपासे जीवनके सार्थक होनेके विश्वाससे गोपीचन्दने राज्य-त्याग किया। लेकिन शाक्यमुनिका त्याग अिससे कटिन था।

‘सांसारिक लोगोंका दुःख देखकर मेरा मन रोता है; उस दुःखको दूर करनेकी दवा होनी ही चाहिये; और वह है, अतः मुझे उसे प्राप्त करना ही होगा;’ इस श्रद्धा — अंतःश्रद्धा — से उन्होंने राज्यका त्याग किया। यह वीरकर्म तब तक गाया जायगा, जब तक मनुष्य-जाति दुनियामें रहेगी। हर जमानेके कविगण इस महाभिनिष्क्रमणका प्रसंग गाकर अपनी वाणीको पुनीत करेंगे। सिद्धार्थका गृहत्याग सफल हुआ और आर्यावर्तमें धर्मचक्र-प्रवर्तन शुरू हो गया। बुद्ध भगवान्का धर्म गूढ़वादी नहीं है, ‘अतिवादी’ नहीं है, फिर भी वह सामान्य नीतिधर्म भी नहीं है। सदाचारके उपरान्त उसमें अहंभावका नाश अद्दिष्ट है, और निर्वाण उसका प्राप्तव्य है।

यह विषय अत्यन्त महत्त्वका है कि बौद्ध धर्मका सामाजिक स्वरूप क्या था और उस धर्मका आर्यावर्त पर क्या असर पड़ा। लेकिन विद्यार्थीगण बड़ी अुन्नमें इसका विचार कर सकेंगे।

बुद्ध भगवान्की जीवनी पढ़कर किसी नवयुवकके मनमें गृहत्याग करनेका विचार आ जानेकी संभावना है। उसे इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि जो महावीर होगा, वही त्यागको चरितार्थ बना सकेगा। सरस्वतीचन्द्र* बननेमें कोअी श्रैय नहीं। ‘अगर त्याग करो, तो उस त्यागके लायक बनो।’

अप्रैल, १९२२

बोधि-जयन्ती

बैसाख सुदी १५

आधा दिन

गौतमबुद्धको इसी दिन ज्ञान प्राप्त हुआ। इस रहस्यको हृदयंगम करनेका यह दिन है कि दुनियाके दुःखोंकी दवा द्रव्यमें नहीं, राजसत्तामें नहीं, जुल्म-जवरदस्तीमें नहीं, बल्कि ज्ञानमें, शिक्षामें और शुद्ध जीवनमें ही है।

यह त्यौहार प्रायः गरमीकी छुट्टियोंमें लुप्त हो जाता है। इसलिये ऐसा प्रबंध हो जाना चाहिये कि जिससे पाठशालाओंमें नहीं किन्तु सारे समाजमें यह मनाया जाय।

बुद्धके गृहत्याग और ज्ञानकी खोजके वारेमें इस दिन विवेचन हो। अेकाध नाटक, जो इस दिनके अपयुक्त हो, खेला जा सकता है।

* श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी लिखित ‘सरस्वतीचन्द्र’ नामक गुजरातीके अेक प्रसिद्ध अपन्यासका नायक।

यह भी आज समझाना चाहिये कि जातिभेद, और खास करके अनुमें आनेवाली अुच्चनीचता, हिन्दूधर्मका सच्चा लक्षण नहीं है। अन्तमें यह भी समझा दिया जाय कि बुद्ध भगवान्के अपदेशमें से अुत्तमोत्तम हिस्तोंको हिन्दूधर्मने किस तरह अपनाके प्रयत्न किया है।

'धम्मपद' में मे अच्छे अच्छे वचन कण्ठ करनेके लिये विद्यार्थियोंको दिये जायें।

१२

मृत्यु विरुद्ध प्रेम

[जेठ सुदी १५]

वनवासके कष्ट सहन करती हुआ द्रौपदीको आश्वासन देनेके लिये ऋषियोंने जो अनेक कथायें सुनायीं, अनुमें सीताकी और अुसके बाद सावित्रीकी कथा कहनेमें अुन्होंने कितना औचित्य दिखाया है! सीता, सावित्री और सती (अुमा) आर्य रमणियोंका त्रिविध आदर्श है।

मद्रदेशके अधिपति अश्वपतिके संतान नहीं थीं। नगरवासी तथा ग्रामवासी लोगोंको राजा अत्यंत प्रिय था। अन्तःकरणके अुदार, सत्य-प्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और क्षमाशील राजाकी परंपरा अवाधित रहनेकी चिन्ता प्रजाको भी होती है। राजाने अनेक प्रकारकी कठिन तपस्या की और अिन्द्रियोंका दमन करके परमात्म-शक्तिकी आराधना की।

कोअी महान् जीवन-कार्य अेक जन्ममें पूरा नहीं होता। समाज-सेवा या राष्ट्रसेवा जब पुस्त-दर-पुस्त चलती है, कुलधर्म वंशपरंपरागत चलता है, तभी अपेक्षित फलप्राप्ति होती है। राजाने संततिकी अिच्छा अिसलिये की कि कुलव्रत सतत चलता रहे; 'सन्तानं परमो धर्मः'। असा समझकर कि पुत्र ही कुलधर्मका पालन कर सकते हैं, पुत्रके बिना गति नहीं है, राजाने पुत्रकी अिच्छा की। परन्तु परमात्माको यह दिखलाना था कि धर्मका अुत्कर्ष साधनेमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियां भी समर्थ हो सकती हैं। पुत्र मांगनेवाले राजाको भगवान्की ओरसे कन्यारत्न मिला। पुत्रके लिये लालाचित माता-पिताको जब कन्याप्राप्ति होती है, तब अुसका लाड़ और परवरिअ

7 7 6964

पुत्रकी ही तरह हो तो अुसमें क्या आश्चर्य? सावित्री इसी प्रकार संस्कारी स्वतन्त्रताके वायुमंडलमें पली। देवकन्याको सोहनेवाली अुत्तम शिक्षा अुसे मिली। परिणामस्वरूप लड़की तेजस्विनी हुअी। पवित्रता, निर्भयता और अुच्च संस्कारिताके कारण सब जगह लड़कीका अितना तेज फैलने लगा कि अुसके सामने अच्छे-अच्छे राजपुत्र भी फीके मालूम होने लगे। अेक भी राजपुत्रमें अैसा आत्म-विश्वास न रहा कि मैं सावित्रीके योग्य हूं। जो प्रेम करने आता, वह पूजा ही करने लगता। वेटी सयानी हो गअी। सभी तरह संस्कार-संपन्न दिखाअी देने लगी। शरीरसे भी अंग-प्रत्यंग पूर्ण विकसित और प्रौढ़। राजा सोचने लगा कि अगर वंश-विस्तार न होगा, तो अिन सब संस्कारोंकी परंपरा कैसे चलेगी? पिताने जान-बूझकर लड़कीको स्वतंत्रताकी शिक्षा दी थी। अिसलिये अुसने सावित्रीसे विश्वासपूर्वक कहा, “क्षत्रियोंके रिवाजके अनुसार राजपुत्रोंको तेरी मांग करनी चाहिये थी, लेकिन कोअी हिम्मत नहीं करता। तू अपना कुलव्रत जानती है। सब शुभ संस्कारोंसे तू युक्त हुअी है। तू स्वयं अपना पति चुनकर मुझे वता दे। मैं अुस बात पर योग्य विचार करके तेरे पसन्द किये हुअे युवकको ही तुझे सौंप दूंगा। मैं चाहता हूं कि तू अपनी अिच्छाके अनुसार अपना पति खोज ले। ब्राह्मणोंने मुझसे कहा है कि यह मार्ग रूढ़ भले ही न हो, किन्तु है तो धर्म-सम्मत ही। अिस वारेमें यदि मैं अुदासीनता दिखाअूं, तो देवता लोग मुझे दोष देंगे।”

वेटीने पिताके वृद्ध मंत्रीको साथ लेकर प्रयाण किया। सावित्रीको अपने योग्य वर आसानीसे मिल ही नहीं सकता था। वह कितने ही नगरों, देशों और वनोंमें घूमी। अिस तरह यात्रा करते समय अत्यन्त मूल्यवान शिक्षा भी अुसे मिलती गयी। आखिर अुसे अपने योग्य पति मिल गया। पिताकी सम्मतिके विना बात तो हों नहीं सकती थी; अिसलिये सावित्री सीधी घर वापिस आयी और पितासे मिलने गयी। वहां भगवद्-भक्त, जन-हितैषी नारदमुनि आये हुअे दिखाअी दिये। अुनका तो त्रैलोक्यमें अप्रतिहत संचार था। नारदका आगमन यानी धार्मिक और लौकिक ज्ञानका भोज। सुर तथा असुर, मनुष्य तथा गंधर्व-किन्नर सभी ‘सर्वभूतहिते रत’ नारदको चाहते थे। सावित्रीने पिताको और ब्रह्मदेव-पुत्र नारदको प्रणाम किया। नारदने कुशल-क्षेमके वाद प्रश्न पूछा, “कन्या सयानी हो गयी है, अिसका

विवाह कब करोगे, राजन्?" राजाने अपना आदर्श बताया और कहा, "सावित्री अपना वर खोजने ही गयी थी, सो अभी आजी है। उसकी बातें हम सुनें।" सावित्रीने कहा, "शाल्वदेशके द्युमत्सेन राजाका नाम तो प्रख्यात ही है। आज वे राज्यभ्रष्ट होकर वनमें वनवासीकी तरह दिन काटते हैं। अनुकी आंखें जाती रही हैं। राज्यभ्रष्ट होनेसे जो कष्ट भुगतने पड़ते हैं, अनुमें अन्होंने दारुण तपस्याको और जोड़ दिया है। फिर भी अनुकी तितिक्षाका भंग नहीं हुआ है। मैंने निश्चय किया है कि अनुका मुशील पुत्र सत्यवान् ही मेरे योग्य है और उसके साथ मैं मनसे विवाह भी कर चुकी हूँ।" नारदऋषिके मुंहसे दुःखका अुद्गार निकल गया, "अरेरे! बुरा हुआ!" राजाने सोचा कि स्वयंवरमें वेटीकी प्रवंचना हो गयी है। किन्तु राजाके चेहरे पर चिन्ता देखकर नारद बोले, "लड़कीने घर तो अच्छा पसंद किया। माता और पिताके अत्यन्त मत्स्यनिष्ठ होनेसे ही ब्राह्मणोंने अुस वेटेका नाम मत्स्यवान् रखा है। जंगलमें रहते हुअे अुसने शिक्षा भी अच्छी पायी है। वचनमें वह मिट्टीके घोड़े और तरह तरहकी गुड़ियां अितनी अच्छी बनाता था और चित्र भी अितने मुन्दर खींचता था कि अुसका दूसरा नाम 'चित्राश्व' पड़ गया है।"

"अिसका क्या भरोसा है कि वचनके गुण बड़ी अुन्नमें रहते ही हैं?" राजाने पूछा। "लेकिन यह राजपुत्र आज कैसा है? वह आज सत्यनिष्ठ, तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमा-संपन्न, शूर और पितृभक्त न हो, तो समझना होगा कि मेरी कन्याने चुनाव करनेमें भूल की है।" नारदकी वाग्धारा बहने लगी। सत्यवान्का स्तुति-स्तोत्र गाते-गाते राजर्षिकी अेक भी अुपमा बाकी न रही। सत्यवान् रूपवान्, अुदार और प्रियदर्शन तो था ही। लेकिन राजाके लिये आवश्यक सभी गुण नारदने अुसमें देखे थे। अुन्होंने अुनमें यह और जोड़ दिया कि "तेजस्विताके साथ साथ मर्यादाशीलता और सरलता आदि विशेष गुणोंके लिये शीलवृद्ध और आचार-वृद्ध लोग अुसकी तारीफ करते हैं।"

"तो फिर बुरा क्या हुआ?"

अुदास होकर नारदने कहा, "अिसा सर्वगुण-सम्पन्न राजपुत्रके आयुष्काल अब अेक ही साल बाकी रहा है। मैं देखता हूँ कि अुसकी मृत्यु टालनेकी शक्ति किसीमें नहीं है।" "तो फिर अैसा जमाअी कौन पसंद करे?"

राजा और नारदने लड़कीसे सिफारिश की कि "दूसरा वर खोजना ही अचित्त है।" शील-परायण राजकन्याने उस सूचनाका तनिक भी आदर नहीं किया। उसने कहा, "सज्जनोंका यह मार्ग नहीं है। जिसके साथ मैंने अकवार मनसे विवाह किया, वह दीर्घायु हो या अल्पायु, सगुण हो या निर्गुण, उसके साथ विवाह हो चुका है। अब मैं दूसरेको पसंद नहीं कर सकती। किसी भी वस्तुका प्रथम मनमें संकल्प होता है, उसके अनुसार उसका शब्दमें अच्चारण किया जाता है और उसके बाद उसके अनुसार कृति होती है। मनके निश्चय पर वाणी और कृति आधार रखती है और अिन दोनोंकी प्रेरणा भी अुसीमें से होती है। असलिये मन ही मेरे मतसे प्रमाण है।" 'प्रमाणं मे मनस्ततः।' अैसे धार्मिक निर्णयके आगे राजा भी क्या कह सकता था और नारद भी क्या समझाते? सावित्रीको उसके निश्चय पर बधावियां देकर, मुंहसे जो निकले सो आशीर्वाद देकर, नारद संचार करनेके लिये निकल पड़े और राजाने द्युमत्सेनके आश्रममें जानेकी तैयारी की।

प्रथम तो द्युमत्सेन राजाको यह सब असंभव-सा ही लगा। राज्यभ्रष्ट, अंधे और वनवासी राजाके पुत्रको सावित्री जैसी अुत्कृष्ट और तेजस्विनी कन्या देनेके लिये उसका पिता स्वयं जाता है! अससे अधिक अद्भुत क्या हो सकता है? अश्वपतिने अुत्तर दिया, "मेरी बेटी भी जानती है और मुझे भी ज्ञात है कि सुख और दुःख दोनों अस्थायी हैं; दोनोंका नाश है। अच्छे आदमियोंको अुनका विश्वास नहीं करना चाहिये। गौरवकी दृष्टिसे तो हम दोनोंके कुल समान हैं और मेरी बेटीने विचारपूर्वक स्वयं ही यह सम्बन्ध मनोनीत किया है।"

आश्रममें जो पद्धति संभव थी, उस पद्धतिसे दोनोंका विवाह हो गया। अपने पिताको वुरा न मालूम हो, असलिये सावित्रीने जब तक पिता अुपस्थित थे तब तक अलंकार पहन रखे। पिताके पीठ फेरते ही सावित्रीने सब गहने अुतार दिये और तपस्विनीका गेरुआ वेप धारण कर लिया। शूश्रूपा, सदाचार, नम्रता और अिन्द्रिय-दमनको अपना आचार-धर्म बनाकर प्रसन्नतासे रहकर सभीको प्रसन्न किया। सास, समुर आदि सब सम्बन्धियों तथा पतिको अपने सद्गुणोंसे सन्तुष्ट करके आश्रम-लक्ष्मीके समान वहां वह सोहने लगी। संस्कारी, धर्म-परायण और जितेन्द्रिय स्त्रीके सहवासमें सत्य-वान्का आनन्द बढ़ता गया। सावित्रीको सेवाका आनन्द तो मिलता था;

किन्तु नारदकी की हुयी भविष्यवाणी अुस आनन्दको जलाकर भस्म कर देती थी। महीने बीत गये और दिन वाकी रहे। अब तो चार ही दिन वाकी थे। नावित्रीने आहार और निद्राका त्याग किया। द्युमत्सेन राजा डर गया। तीन दिन त्रिलकुल खड़े रहनेका सावित्रीका व्रत था। वह कैसे पूरा होगा? सावित्रीने अुत्तर दिया, “तात, आप चिन्ता न करें। मैंने निश्चयपूर्वक व्रत शुरू किया है और निश्चय ही कार्यसिद्धिका कारण है। ‘व्यवसायश्च कारणम्।’”

सुशीला सावित्रीका विरोध कौन करे? तीन दिन किसी तरह निकल गये। आखिरी रातका अेक-अेक क्षण सावित्रीके लिये कैसा बीता होगा? सवेरा होते ही नित्यकर्म पूरा करके सावित्रीने प्रदीप्त अग्निमें हवन किया। वृद्धोंको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर सबोंने अुसे भोजन करनेका आग्रह किया। सावित्रीको आहार-निद्रादि देहधर्म कहाँसे सूझते? अुसने नम्रताके साथ सास-ससुरसे कहा कि सूर्यास्तके बाद अमुक अिष्ट वस्तु पूरी करके ही भोजन करनेका मेरा संकल्प है।

अितनेमें कन्वे पर कुल्हाड़ी रखकर फल और अाँधन लानेके लिये सत्यवान् जाने लगा। नावित्रीने दीनतासे कहा: “आप अकेले न जायं। मैं भी आपके साथ चलती हूँ। आज आपसे दूर रहनेको मेरा जी नहीं चाहता।” सावित्रीको घने जंगलमें घूमनेकी आदत कहाँसे होगी? और फिर आज तो अुसके अुपवामका चौथा दिन है। वह कैसे चल सकेगी? अुसे अनुज्ञा कौन देगा? लेकिन सावित्रीने सत्यवान्की अेक नहीं मुनी। अन्तमें सत्यवान्ने यह वान अपने माता-पिताके अूपर छोड़ दी। नावित्रीने अत्यंत नम्रतासे किन्तु दृढ़तापूर्वक अपनी मनीषा सास-ससुरके सामने रखी। सास-ससुरने विचार किया कि वेटीने सारे वर्षमें अेक बार भी किसी चीजकी याचना नहीं की। आज अिसे ‘ना’ कैसे कहा जाय? अंतमें अुन्होंने अनुज्ञा दे दी।

दोनों वनमें चले। वनवासके काव्यमय जीवनमें अरुण्यकी गोभा ध्यान खींच ही लेती है। रास्तेमें मोर नाचते और केका करते थे। अनेक प्रवाह अपने निर्मल जलसे कलध्वनि करते थे और जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे वृक्ष अंतस्थ फूलोंसे प्रफुल्ल हुअे थे। सत्यवान् प्रत्येक रमणीय वस्तुकी ओर सावित्रीका ध्यान खींचता जाता था और अपना आनन्द द्विगुणित करता जाता था। सावित्री भी पतिके आनन्दमें सहभागी होनेका पूरा प्रयत्न करती थी। अुसे

अितना ही संतोष था कि भाग्यका पासा पड़नेके समय मैं पतिके साथ हूँ। लेकिन प्रत्येक क्षण उसे अेक युगके समान भारी लंगता था। मानो उसके हृदयके टुकड़े-टुकड़े हुअे जाते थे।

दोनों वनमें पहुँच गये और सत्यवान् फल चुनने लगा। अितनेमें सावित्रीने मुगन्धित फूल तोड़कर अुनकी अेक माला बनायी। आवश्यक फल अिकट्ठे हो जाने पर सत्यवान्ने कुल्हाड़ी लेकर सूखी लकड़ियां काटना शुरू किया। यह काम अुसके लिये कोअी नया नहीं था। अुसका शरीर भी कसा हुआ था। लेकिन न जाने क्यों आज अुसके सारे शरीरसे पसीना निकलने लगा। वह थक गया। अुसके सिरमें तीव्र वेदना होने लगी। अेकाग्रतासे पतिकी ओर निहारनेवाली सावित्रीके ध्यानमें यह बात आयी। अुसने पास जाकर प्रेमसे पूछा, “आज कोअी खास थकान मालूम होती है?” सत्यवान् अपनी थकानको दबाना चाहता था। वेदनाको छिपानेकी अुसकी अिच्छा थी। लेकिन सावित्रीने जब अत्यंत प्रेमके साथ प्रश्न पूछा, तब अुससे न रहा गया। अुसने कहा, “हां, आज कुछ हो रहा है सही। सिरमें शूल अुठ रहा है और दिलमें कुछ वेचैनी-सी मालूम हो रही है।” थोड़ी देर बाद अुसने फिर कहा, “अब तो खड़ा भी नहीं रहा जाता। जरा सो जाऊँ तो अच्छा।” सावित्रीने वहीं जमीन पर बैठकर सत्यवान्का मस्तक अपनी गोदमें ले लिया। सत्यवान्को कुछ आराम मालूम हुआ; लेकिन सावित्रीके लिये वह क्षण प्रलय-कालका था। अुसे विश्वास हो गया कि नारदका बताया हुआ प्रसंग समीप आ गया है। अुसका हृदय, मन और आत्मा अुसकी आंखोंमें अेकत्र होकर सत्यवान्की ओर देखने लगे। चार दिनके अुपवासके कारण दृष्टि क्षीण हो जानी चाहिये; लेकिन सावित्रीकी तपस्या ही अितनी अुज्ज्वल थी कि अुसी क्षण अुसे दिव्य दृष्टि प्राप्त हुअी।

अुसने देखा कि सामनेसे कोअी भव्य पुरुष आ रहा है। अुसने लाल कपड़े पहने थे। माथे पर जगमगाता हुआ किरीट था। वह पुरुष तगड़ा और खूबसूरत था। तेजमें मानो प्रतिसूर्य ही था। अुसे श्याम कहनेकी अपेक्षा गौर कहना ही अधिक अुचित होता। अुसके हाथमें भयंकर पाश था। आदर अुत्पन्न करनेवाली अुसकी आकृति देखकर सावित्री समझ गयी। अुसने धीरेसे पतिका मस्तक भूमि पर रख दिया और अुस दिव्य पुरुषके प्रति आदर दिखानेके लिये वह खड़ी हो गयी। सावित्रीने पूछा, “भगवन्, अितना तो

मैं समझ सकती हूँ कि आपकी काया मानुषी नहीं है। आप कोअी दैवी पुरुष हैं। लेकिन क्या आप बितना कहनेकी कृपा करेंगे कि आप कौन हैं और किस अद्देश्यसे आये हैं?" अुस दिव्य पुरुषने जवाब दिया, "हे सावित्री, तू पतिव्रता है और तपोनिष्ठ भी है। जिसलिये तू मुझे देख सकी और जिसलिये तेरे साथ मैं बातचीत कर रहा हूँ। तू यह जान ले कि मैं पितरोंका अधिपति यम हूँ। तेरे पतिका आयुष्य नष्ट हो गया है, जिसलिये मैं अुसे ले जानेको आया हूँ।"

"भगवन्, मानवोंको ले जानेके लिये तो आपके दूत आया करते हैं। आज आप स्वयं किसलिये पवारे हैं?"

"हम सत्त्वशील मनुष्यकी कद्र करते हैं। यह तेरा सत्यवान् धर्म-सम्पन्न है, सुस्वरूप है, गुणोंका तो मानो महासागर ही है। जिसे ले जानेके लिये स्वयं मुझे ही आना चाहिये न?"

यह कहते हुअे यमराजने सत्यवान्के शरीरमें से अुसके जीवात्माको अपने पाशके द्वारा खींच निकाला। तुरंत ही सत्यवान्का शरीर निम्नेज हो गया, श्वासोच्छ्वास बन्द हो गया, मुखकी कान्ति अुतर गयी और सभी अवयव ढीले पड़ गये। यमराजने सत्यवान्के जीवात्माको अपने कब्जेमें लेकर दक्षिण दिशाका रास्ता पकड़ा। यम-नियम द्वारा सब सिद्धियां प्राप्त हो जानेसे सावित्री भी यमराजके पीछे-पीछे चलने लगी। अुसके हृदयमें दुःखका महासागर अुमड़ रहा था। सावित्रीको पीछे-पीछे आते देखकर यमराजने प्यारसे कहा, "सावित्री, अब तू वापस चली जा और सत्यवान्का और्ध्वदैहिक कर। तूने अपने जिस धर्मका पूरी तरह पालन किया है कि पति जब तक जीवित है, तब तक पत्नी अुसके साथ रहे। पतिके ऋणमे तू मुक्त हुअी है। पतिके पीछे जहां तक जाना चाहिये, वहां तक तू जा चुकी है। अब वापस जा।"

"मैं कैसे वापस जाऊँ? जहां मेरे पति, वहां मैं। सनातन धर्मने ही यह व्यवस्था कर दी है। तप, गुरुभक्ति, पतिप्रेम, व्रत और आपका अनुग्रह अिन सब कारणोंसे मेरी गति अकुंठित है। अब मैं पतिको कैसे छोड़ सकती हूँ? आप मुझे वापस नहीं लौटा सकते।" सावित्रीको धर्मके अनुसार बातें करते देखकर यम — धर्म सन्तुष्ट हो गये। सावित्रीने बात आगे चलायी:

“विद्वान् लोग कहते हैं कि सात पद चलनेसे या सात शब्द बोलनेसे सज्जनोंके बीच मैत्री हो जाती है। जिस मित्रताके अधिकारसे अगर मैं आपसे कुछ प्रार्थना करूं, तो क्या कृपा करके आप उसे सुन लेंगे? ज्ञान-सम्पन्न लोग कहते हैं कि चारों आश्रम धर्माचरणके लिये योग्य हैं और धर्माचरण ही आत्मज्ञानका साधन है। शिष्ट लोग ऐसा भी कहते हैं कि चारोंमें से किसी भी एक आश्रमका अच्छी तरह पालन हो जाय, तो वाकीके तीन आश्रम स्वयं ही उसके पीछे-पीछे चले आते हैं; और जिसलिये धर्मज्ञ लोगोंने यह कह रखा है कि आश्रमान्तर करनेकी तनिक भी अच्छा रखनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसी स्थितिमें जहां हम गृहस्थ-धर्मका पालन कर रहे हैं, वहां आप उसका विध्वंस क्यों करते हैं? मेरे पतिको आप किसलिये ले जा रहे हैं?”

सावित्रीकी यह संस्कारी और युक्तियुक्त वाणी सुनकर धर्मज्ञ यम-राजको अत्यन्त संतोष हुआ। अन्होंने कहा, “हे अनिन्दिते, सत्यवान्के जीवनको छोड़ कर दूसरा जो भी कुछ तू मांगेगी, मैं तुझे दे दूंगा। लेकिन तू अब वापस चली जा। तुझे थकावट आ रही है। अब अधिक श्रम मत कर।”

“पतिके पास रहते हुअे मुझे थकावट? मेरे पतिको जहां आप ले जायेंगे, वहां मुझे आयी ही समझिये। सज्जनोंके साथ एक बार श्रेष्ठ समागम हो जाय, तो उसे संगति कहते हैं। ऐसा समागम बढ़ जाय, तो उसे मैत्री कहते हैं। आप जैसे धर्मराजके साथका यह समागम निष्फल तो होगा ही नहीं।”

“तू ऐसी हितकारी वाणी बोल रही है, जो मेरे अन्तःकरणको भाये और ज्ञानी लोगोंकी बुद्धिको भी वृद्धिगत करे। जिस सत्यवान्के जीवनको छोड़कर दूसरा चाहे जो वर तू मांग ले। लेकिन अब तू लौट जा। व्यर्थ श्रम मत अठा।”

“आपने सब प्रजाको नियमसे बांध रखा है। जिसलिये आप चाहे जिसको स्वेच्छासे ले जा सकते हैं। मैं भी उसी नियमके वज्र होकर पतिका अनुसरण कर रही हूं। आप मुझे किस तरह वापस लौटायेंगे? यह तो सज्जनोंका सनातन धर्म है कि किसी भी प्राणीका मन, वचन, क्रियासे द्वेष या द्रोह नहीं करना चाहिये; बल्कि उस पर अनुग्रह करना चाहिये। सामान्य मनुष्योंमें भी यही प्रथा हमें दिखायी देती है। जो सामर्थ्य-सम्पन्न हैं, वे

कितने मृदु और क्षमावान् होते हैं! सज्जन लोग तो अपने शत्रु पर भी दया ही करते हैं।”

“हे सावित्री, जिस प्रकार प्याससे पीड़ित मनुष्य शीतल जल पाकर तुष्ट होता है, उसी प्रकार धर्म-रहस्य प्रकट करनेवाली तेरी यह वाणी मुझे तृप्तिकारक लगती है। हे कल्याणि, सत्यवान्‌के जीवनके अलावा दूसरा चाहे जो वर तू मांग ले और वापस चली जा। कितनी दूर आ गयी है तू!”

“अपने प्रिय पतिके निकट होनेसे मेरे लिये यह स्थान जरा भी दूर नहीं है: ‘न दूरमेतन्मम भर्तृसन्निधौ’। और जहां मन पहुंच सकता है, उसे क्या दूर कह सकते हैं? रास्ता चलते-चलते आप मेरी कुछ बातें तो सुन लीजिये। भगवान् श्री सूर्यनारायणके आप प्रतापशाली पुत्र हैं। मृत्युलोकके सभी लोगोंके लिये आपने एकसा ही धर्म चलाया है। उसके अनुसार ही प्रजा चलती है; जिसलिये, हे श्रीश्वर! लोकोंमें धर्मराजके नामसे ही आपकी स्थािति है। सच्चमुच्च, धर्मनिष्ठ सज्जनों पर मनुष्यका जितना विश्वास होता है, उतना स्वयं अपने ऊपर भी नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य सज्जनोंके प्रति प्रेमभाव रखता है। सज्जन प्रेममूर्ति हुआ करते हैं, जिसलिये हरएक उन पर विश्वास करता है।”

“भद्रे, असा भाषण तो मैंने आज तक किसीके भी मुंहसे नहीं सुना। मैं संतुष्ट हो गया हूं। एक सत्यवान्‌का जीवन छोड़ बाकी जो चाहे सो तू मांग ले। अब तू और कितनी दूर आयेगी? तेरे समान राजकन्याके लिये अितना श्रम अचित्त नहीं है।”

सावित्रीने अपना कथन जारी रखा: “सज्जनोंका धर्माचरण हमेशा अटल होता है। धर्माचरणमें वे कभी पीछे कदम नहीं हटाते। धर्माचरणमें वे दुःखका भी अनुभव नहीं करते। सज्जन सदा निर्भय होते हैं। अपने सत्यके द्वारा वे सूर्यका रक्षण करते हैं। अपने तपोबलसे वे भूमिको आधार देते हैं। हे धर्मराज, जो गये हैं और जो आज विद्यमान हैं, उन सब लोगोंको आधार तो सज्जनोंका ही है। यह स्मरण करके कि श्रेष्ठ लोग किसी रास्तेसे गये हैं, सज्जन व्यवित परकार्यमें रत रहते हैं, और किसी प्रकारके प्रतिफलकी अपेक्षा नहीं रखते। सज्जनोंका समागम निष्फल नहीं जाता। उनसे

प्राप्त द्रव्य नष्ट नहीं होता। यह धर्म अवाधित होनेसे सज्जन ही विश्वके संरक्षण-कर्ता हैं।”

“पतिव्रते, तूने धर्मका हृदय ही मेरे सामने खोलकर रख दिया है। जैसे-जैसे तेरी पवित्र वाणी सुनता जाता हूँ, वैसे-वैसे तेरे प्रति मेरे हृदयमें अतृकृष्ट भक्ति अत्युन्न होती जाती है। अब जो तेरी अिच्छा हो सो वर मांग ले।”

सावित्रीका कार्य हो गया। धन्य-धन्य होकर वह अतृसाहसे बोली : “भगवन्, अब तक मानो अपने पापका ही फल मेरे सामने खड़ा था, जिससे ‘सत्यवान्के जीवनको छोड़’ ये वचन मुझे सुनने पड़ते थे। आपके अबके इस वचनमें वह बात नहीं रही। मैं धन्य हो गयी हूँ। मैं यह वर मांग लेती हूँ, कि सत्यवान् फिरसे जीवित हो जायं। क्योंकि पतिके विना जीना मेरे लिये मरणके समान है। पतिको छोड़कर मुझे सुख, लक्ष्मी या स्वर्गकी भी अिच्छा नहीं है। पतिके वियोगमें जीवित रहना भी मुझे अच्छा न लगेगा।”

त्रिलोकमें भी जो न टलनेवाला था, वह सावित्रीके धर्मनिष्ठ और अेक-निष्ठ प्रेमसे टल गया। यमराजने अपने पाश छोड़ दिये और बोले : “हे कुलनन्दिनी, कल्याणी सावित्री, तेरे इस पतिको मैंने छोड़ दिया। अब यह नीरोग होकर तेरे मनोरथ पूर्ण करता हुआ चार सौ साल तक जीवित रहेगा और तेरी सहायतासे इसे धर्मप्राप्ति होगी। सत्यवान् अपने धर्माचरणसे पृथ्वी पर सर्वत्र विख्यात होगा, और अनन्त काल तक तेरी कीर्ति इस लोकमें अमर रहेगी। तुझे जो वर प्रिय था, सो तो मैंने तुझे दे दिया। लेकिन इससे पहले चार वार मैंने तुझे वर देनेका वचन दिया है। अुसके बदलेमें जब तक तू कुछ न कुछ मांग न लेगी, तब तक मैं तेरे वंघनमें ही हूँ। कृपा करके मुझे वचन-मुक्त कर।”

अब तो सावित्रीको मांगने योग्य बहुत-कुछ सूझ सकता था। अपने ससुरको फिरसे दृष्टि प्राप्त हो जाय; अुनका राज्य अुन्हें वापस मिले; पिताके कोअी पुत्र नहीं है, वह पुत्रवान हो जायं; आदि बहुतसी बातें अुसने मांग लीं। मनुष्यसे मांगना हो, तो ही संकोच किया जाय न?

सत्यवान्को छोड़कर यमराज भी स्वयं मुक्त और संतुष्ट हुअे, और अुन्होंने अपने मंदिरकी ओर प्रयाण किया। सावित्री अुस जगह वापस

चली आयी, जहाँ अुसके पतिका शव पड़ा हुआ था; और अुसने फिरसे पतिका मस्तक गोदमें ले लिया। अुस पतिव्रताके हाथका स्पर्श होते ही सत्यवान् सजीव हो गया और आंखें खोलकर अत्यन्त प्रेमके साथ सावित्रीकी ओर देखने लगा।

वेहमें प्राण आते ही सत्यवान् बोला : “कितनी देर तक सोता रहा मैं ? तूने मुझे समय पर जगाया क्यों नहीं ? और जो मुझे खींचकर ले गया था, वह श्यामवर्ण पुरुष कहां है ? ”

अुस समय सावित्री कितने हर्षके साथ बोली होगी ! मरे हुअे पतिको फिरसे जीवित होते देख और प्रेमवाणी बोलते सुनकर अुसे कितना आनन्द हुआ होगा ! वह बोली, “आप बहुत देर तक सोये हैं। प्रजाका संयमन करनेवाले यमराज आपको छोड़कर चले गये हैं। अब थकावट कम हो गयी हो, तो अुठना ही अच्छा है। देखिये तो, चारों ओर कैसा अंधेरा फैलने लगा है।”

सत्यवान् अुठ खड़ा हुआ। अुठकर सारे वनप्रदेशकी ओर देखने लगा। मानो कोभी भूली हुअी बात याद आती हो, अिस तरह अिधर-अुधर देखकर अुसने कहा : “प्रिये, मुझे अितना तो याद आता है कि मैंने तेरे साथ फल चुने, लकड़ियां काटीं और वादमें सिरमें भयानक वेदना शुरू हो जानेसे मैं सो गया। अुसके बाद अीश्वर जाने क्या हो गया। मुझे अेक जबरदस्त चक्कर आया। अितनेमें अेक अत्यन्त तेजस्वी पुरुष दिखायी देने लगा। अुसके बाद क्या हुआ, कुछ याद नहीं पड़ता। क्या वह सब स्वप्न ही था ? तूने अंसा कुछ देला ? ”

सावित्री प्रसंगको समझनेवाली थी। अुसने कहा : “आर्यपुत्र, अब देर बहुत हो चुकी है; पिताजी हमारी राह देखते होंगे। देखिये, रातमें अुहमने-वाले पशुओंके शब्द सुनायी देने लगे हैं। सियार रो रहे हैं, पेड़के पत्ते भी कैसी भयंकर ध्वनि कर रहे हैं ! कल आपसे सब कुछ कहूंगी। अभी तो घर चलिये।”

सत्यवान् विलकुल थक गया था। अुसके लिअे चलना कठिन था। चारों ओर फैले हुअे अंधकारको देखकर और अिसका विचार करके कि आगे कितनी दूर जाना है, अुसने कहा : “अिस समय वापस जाना मुश्किल है, और अंधेरेमें तूझे रास्ता भी न मिलेगा।” सावित्री बहुत चकमा गयी।

वह स्वयं निर्णय न कर सकी कि जाना अच्छा होगा या न जाना अच्छा होगा। जिसलिये उसने पतिसे ही पूछा: "वह उस तरफ दावाग्निसे दग्ध वृक्षोंमें कहीं-कहीं अग्नि दिखायी देती है। उसमें से कुछ अंगारे लाकर मैं लकड़ियां जलाऊंगी, जिससे उनके प्रकाशमें हम जा सकें। और अगर बीमारीके असरके कारण आपके लिये चलना असम्भव हो, तो हम दोनों सारी रात यहीं बितायेंगे। सवेरे घर लौट जायेंगे।"

सत्यवान् भी इसी दुविधामें था। चलनेकी शक्ति न थी, और जिसकी कल्पना वह खूब कर सकता था कि अगर घर न गये, तो वृद्ध माता-पिता कैसा हाहाकार मचा देंगे। उसने कहा: "अगर माता-पिता मुझे न देखेंगे तो कितने दुःखी होंगे! मैं ही उनका एकमात्र सहारा हूँ न? कैसी गफलत हुआ कि अब तक सोता रहा। जिस वैरिन नींदसे मुझे बहुत चिढ़ हो आयी है। अब तक पिताजीने मेरी खोजमें आकाश-पाताल अंक कर दिया होगा। अगर अन्हें कुछ अनिष्ट हो गया, तो मुझसे जिया ही न जायगा। अब घर जानेके अलावा कोई मार्ग ही नहीं।"

पिताजीके दुःख और अपनी निर्वलताका विचार करके सत्यवान् रो पड़ा। धीरोदात्त पुरुष जब रोने लगता है, तो अंबला ही उसे सान्त्वना दे सकती है। निष्ठावान् सावित्रीने मुग्धभावसे प्रार्थना की और पतिकी आंखोंके आंसू पोंछकर वह बोली: "यदि आज तक मैंने कुछ भी तप किया हो, विनोदमें भी असत्य न बोली होऊं, तो आजकी रात मेरे सास-ससुर और पतिके लिये सुखकर हो जाय!" उसके बाद प्रेमशालिनी सावित्रीने अपने बाल संचारे और पतिका हाथ पकड़कर उसे किसी तरह खड़ा किया। पिताजीके लिये चुने हुअे फलोंकी ओर सत्यवान्की दृष्टिको जाते देखकर उसने कहा: "अिन टोंकरियोंको मैं यहीं टहनियोंमें लटका दूंगी। कल सवेरे आकर ल^{कड़ियां} जायेंगे। लकड़ियां भी यहीं रहने दें। सिर्फ यह कुल्हाड़ी मैं साथ ले लूंगी।"

फिर उसने अपने पतिका हाथ अपने बायें कंधे पर रखा और अपना दाहिना हाथ उसकी कमरमें डालकर वह गजगामिनी धीरे-धीरे चलने लगी। कौन जाने, जिस तरह सावित्रीका सहारा लेते हुअे सत्यवान्को संकोच हुआ होगा या आनन्द! उसने कहा: "हे भीरु, जिस रास्ते मैं बहुत बार गया हूँ, जिसलिये यह मेरा परिचित रास्ता है। अब तो चांदनी भी पत्तोंमें से

प्रवेश करके कुछ-कुछ मार्ग दिखा रही है। आगे रास्तेमें ढाकका वन है; वहाँ जरा सचेत रहना चाहिये। वहीं दो रास्ते पड़ते हैं। उनमें से उत्तरकी ओर जानेवाला रास्ता हमारा है। अब जल्दी चल! मुझे कुछ ठीक मालूम होता है। जल्दी जाकर माता-पितासे मिल लें।”

*

*

*

अधर द्युमत्सेनको अचानक दृष्टि प्राप्त हुई, जिसलिसे वह तो आश्चर्यान्वित हो गया। लेकिन उसका आनन्द ज्यादा देर तक न रहा। सूर्यास्त हुआ और बेटा-ब्रह्म नहीं आये, यह देखकर बूढ़का आनन्दार्चय चिन्तामें डूब गया। बूढ़े पाँवोंसे उसने चारों तरफ खोज शुरू की। कभी वार भुत्तके पैरोंमें कांटे चुभ गये। नुकीले पत्थरोंने भी जिस बातकी तलाश की कि भुत्त बड़े शरीरमें कुछ खून बचा है या नहीं। दर्भोंके ठूँडों पर कभी वार लाल अभिषेक हुआ। पास-पड़ोसके ब्राह्मणोंने भुत्त बृद्ध पर दया करके स्वयं भी काफी खोज की। कहीं भी पता न चलने पर सब वापस आ गये। अकने धूनी जगायी, दूसरेने पुराने जमानेकी कितनी ही अद्भुत कहानियाँ छेड़ीं। लेकिन मां-बापका धीरज तो टूट ही गया। अन्होंने फूट-फूटकर रोना शुरू किया: “हे पुत्र, हे साध्वी बहू, तुम कहाँ हो?”

सत्यवादी ब्राह्मण आश्वासन देने लगे। सुवर्चा बोला: “सावित्री तप, जिन्द्रिय-दमन और सदाचारसे युक्त है, जिसलिसे मुझे पूरा-पूरा विश्वास है कि सत्यवान् जीवित है।” तपस्वी गौतम बोला: “मैंने चारों वेदोंका सांग अव्ययन किया है। ब्रह्मर्चयका पालन करके गुरु और अग्निको संतुष्ट किया है। केवल वायुका भक्षण करके कितने ही उपवास किये हैं। सब-के-सब व्रतोंका अेकाग्र अन्तःकरण साक्षी देता है कि आपका सत्यवान् जीवित है। वह सकुशल है। मेरी बात पर विश्वास कीजिये।” गौतमके शिष्यको भी लगा कि मैं भी जिसमें कुछ जोड़ दूँ। वह बोला: “हमारे गुरु महाराजके मुंहसे निकला हुआ अेक भी वचन आज तक झूठा नहीं हुआ है, जिसलिसे मैं विश्वासके साथ कहता हूँ कि सत्यवान् जीवित है।” दूसरे बहुतसे ऋषियोंने अपनी-अपनी धारणाके अनुसार आश्वासन दिया। अन्तमें दाल्म्य ऋषि बोले: “सावित्री व्रत करके बिना कुछ खाये ही गयी है, जिसलिसे जिसमें शक नहीं कि तेरा बेटा जीवित है; तथा हे राजा, यही जिसका प्रमाण है कि तुने अपनी दृष्टि वापिस मिल गयी है।” घड़ी दो घड़ी जिस प्रकारकी बातें

चलती रहीं। अितनेमें सावित्री और सत्यवान् दोनों घर आ पहुंचे। ब्राह्मणोंने आनन्दके साथ कहा: “देख राजा, तेरा बेटा और बहू तुझे वापस मिल गये। तेरी दृष्टि भी तुझे फिरसे प्राप्त हुई। अब तेरा अम्युदय नजदीक आया ही समझ।”

फिर क्या था? सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया। कभी सवाल पूछे गये और कभी जवाब दिये गये। ऋषियोंने सावित्रीसे आग्रह किया कि अुसे वह सब सत्य वृत्त सविस्तार कहना ही होगा, जो सवेरेसे घटित हुआ था। गौतमने कहा: “हे सावित्री, तुझे प्रत्यक्ष और अतीन्द्रिय दोनों वस्तुओंका ज्ञान है। अपने तेजसे तो हे सावित्री, तू केवल देवी-जैसी ही है। गुप्त रखने जैसा अगर कुछ न हो, तो सकल वृत्तांत तू हमसे कह दे।” सावित्रीने सुखसे मीठे बने हुअे अपने दारुण दुःखका पूरा वर्णन किया। तब सभी ऋषि अेक स्वरसे बोल अुठे: “हमारे राजाका सारा कुल संकरूपी अंधेरे गढ़में डूबा जा रहा था; हे सावित्री! तूने अुसे अपने शील, व्रत और पुण्यके बलसे तारा है।” बातें पूरी हुआं, अितनेमें रात्रि भी समाप्त हुई और अरुणोदयके साथ द्युमत्सेन राजाके राज्यके लोक-प्रतिनिधि राजाको ले जानेके लिये वहां आ पहुंचे। सचिवोंने कहा: “शत्रुके राज्यमें बहुत बड़ी राज्यक्रांति हुई, शत्रु मारे गये और प्रजाने अेकमत होकर अपना यह आग्रह जताया है कि हम महाराज द्युमत्सेनको ही अपना राजा बनायेंगे। अिसलिये हम आपको बुलाने आये हैं।” अिधरकी सब बातें सुनकर सचिवोंने भी तपस्विनी सावित्रीके चरण छुअे।

नारद द्वारा सूचित सावित्रीके दुर्दैवोंके कारण दुःखित अुसका पिता आज अपने घरमें वैठा कैसी मनःस्थितिमें होगा? ये आनन्दके समाचार अुसके पास तुरन्त पहुंचा देनेकी बात किसी-न-किसीको सूझी ही होगी।

वैशंपायन कहते हैं: “सावित्रीकी अिस पुण्यकथाने आज तक असंख्य लोगोंको आश्वासन दिया है, और आगे भी जो कोअी सावित्रीके अिस अुत्कृष्ट आख्यानका श्रवण करके अिसका ध्यान करेंगे, अुनके सब मनोरथ पूर्ण होकर वे दुःखमुक्त होंगे।”

वट-सावित्री

वेठ सुदी १५

१ दिन

यह त्यौहार प्रायः गर्मीकी छुट्टियोंमें ही पड़ता है। 'सतीके पातिव्रत्यके सामने मृत्यु भी हार जाती है'—जिस आशयकी शिक्षा देनेवाली बिस कहानीमें असाधारण काव्य भरा हुआ है। आजके दिन वटवृक्षकी पूजा करनेकी अपेक्षा सावित्रीकी ही पूजा करना अधिक भुञ्चित है। सावित्रीकी कहानीमें स्त्रियोंका स्वातंत्र्य और स्त्रीधर्मका सर्वोच्च आदर्श देखनेको मिलता है। बिस दिन सावित्रीका चरित्र अनेक प्रकारसे गाना चाहिये। आजकलकी लड़कियोंको भी यह त्यौहार मनाना चाहिये।

१३

आषाढी महाअेकादशी

असाढ़ सुदी ११

आषा दिन

बिस दिनसे चातुर्मास्य (चौमासे) का प्रारंभ होता है। चातुर्मास्यके निमित्त बहुतसे व्रत लेनेका यह दिन है। चौमासेमें आयोहवा अच्छी नहीं रहती। अमुक प्रकारके नयमको स्वीकार करने पर ही चौमासा निर्विघ्न और सुखसे बीतता है। वरसातके दिनोंमें मुसाफिरी करना मुश्किल होनेसे अेक ही स्थान पर रहकर अध्ययन करनेका पुराना रिवाज था।

बिस दिनका कार्यक्रम कार्तिकी अेकादशी जैसा ही रखा जाय। लेकिन अुसमें पेड़ोंको पानी देना न रहे। बिस दिन या आषाढकी अमावसके दिन—जैसी सहूलियत हो—कताबी-प्रतियोगिता रखी जाय; और अगर वह रखी जाय तो यह दिन पूरी छुट्टीका गिना जाय। जब हवामें नमी होती है तो अधिक अच्छी तरह काता जा सकता है।

वारिशके दिनोंमें गोशालामें मच्छरोंका अुपद्रव बहुत होता है। बिन-लिअे रातको धुआं करके जानवरोंकी रक्षा करना बिष्ट है।

आचार्यदेवो भव

[असाढ़ सुदी १५]

मनु भगवान्ने कहा है और हमारी भी यही श्रद्धा है कि सावित्री यानी विद्या हमारी माता है, और आप—आचार्य—हमारे पिता हैं। अज्ञान दशामें जन्मे हुअे हमको ज्ञानके संस्कार देकर आपने ही हमें नया जन्म दिया। द्विज बनाया।

आपकी आंखोंमें प्रेमका जादू है। आपके चित्तमें ज्ञानका कल्याण है। प्रभुका मंगल हृदय आपको प्राप्त हुआ है। इसीसे तो आप जिस प्रकारकी निःस्वार्थ सेवा कर रहे हैं।

मूर्तिकार जिस तरह प्रथम पत्थरमें मूर्तिको देखता है, और वादको अुसमें से कुरेदकर मूर्तिको प्रगट करता है, अुसी तरह हे गुह्यदेव ! शिष्यके प्राणोंकी सम्पूर्णताको आप देखते हैं और अपने अद्भुत कौशलसे अुसे विकसित करते हैं। जीवनकी सफलता हमें आप ही से प्राप्त होती है।

स्त्रयं निष्काम होते हुअे भी हे शिष्य-वत्सल, आपने परमेश्वरसे याचना की : “मेरा ज्ञान समृद्ध हो। मैं मोक्षविद्याका धारणकर्ता हो जाऊं। मेरा शरीर नीरोग और स्थिर रहे। मेरी जीभ अमृतस्रोती बने। मेरा अध्ययन बहुत बढ़े। मेरा ज्ञान हमेशा अक्षय रहे।”

आपकी अेक और प्रार्थना भी है : “पानी जिस तरह तालाबकी तरफ बहता है, महीने जिस प्रकार वर्षकी ओर मुडते हैं, अुसी तरह सब ब्रह्मचारी मेरे पास आ जायं। अुनकी शंकाओं दूर हो जायं, अुनका ज्ञान बढ़े। अुनकी वृत्ति संयमशील बने, और अैसे विद्यार्थियों द्वारा मेरी यह कीर्ति सर्वत्र फैले कि मेरे यहां ज्ञानका प्याअू है।”

अितनी वत्सलता हमें और कहां मिलेगी ? हम सिर्फ आपको ही पहचानते हैं। हम आपकी शरण हैं। आपकी आज्ञा ही हमारे लिये प्रमाण है।

“त्वं हि नः पिता यः अस्माकं अविद्यायाः परं पारं तारयसि ।

नमः परमऋषिभ्यः नमः परमऋषिभ्यः ।”

तू ही हमारा पिता है, तू ही हमें अविद्याके अुस पार ले जाता है। परम ऋषियोंको प्रणाम !

अक्तूबर, १९२४

गुरु-पूर्णिमा

असाढ़ सुदी १५

एक समय

गुरु-पूर्णिमाका त्यौहार जल्द मनाने योग्य है। लेकिन चाहे जिस व्यक्ति विशेषको भीश्वर मानकर उसकी अंघपूजा करनेमें गुरु या शिष्य किसीको भी श्रुति नहीं है। हिन्दूधर्ममें श्री वेदव्यासका स्थान असाधारण है। गुरु-पूर्णिमाके दिन वेदव्यासका स्मरण करके उसके कार्यको समझ लेना उचित है।

सीसा-मसीहके जीवन, कथन तथा मरणके विषयमें भी इस दिन बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

सिक्ख धर्ममें बताये गये गुरुके रहस्य और सिक्ख गुरुओंके तेजस्वी जीवन आदिके बारेमें दत्त-जयन्तीकी तरह आज भी कहा जा सकता है। (देखिये 'दत्त-जयन्ती' लेख)

इस दिन विद्यार्थी-गण अपनी पाठशाला या आश्रमके लिये विशेष काम करें, सेवाएँ दें। हो सके तो अपनी संस्थाके लिये चन्दा विकट्टा करें।

१५

नागपंचमी

[सावन सुदी ५]

नागपंचमीका अत्यन्त बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। महाराष्ट्रमें लोग जंगलसे चिकनी मिट्टी लाते हैं। फिर जिस तरह रोटीके लिये आटा गूंधा जाता है, उस तरह उस मिट्टीको धुनी हुआ रूईके साथ गूंध कर उसे बड़े फनवाले नागका आकार देते हैं। उस नागकी पूँछका मरोड़ अतना खूबसूरत बनाते हैं कि देखते ही बनता है। और नागके दो डरावनी आँखें तो चाहिये ही। इसलिये उचित स्थान पर दो घुंघचियाँ (गुंजा) बिठा देते हैं। नागको भीश्वरने दो-दो जीभें दी हैं। यह पुरस्कार अगर कुदरतने कृत्नीतिज्ञों, वकीलों और अदालतमें गवाहका घंघा करनेवालोंको दिया होता, तो काफी सहूलियत हो जाती। जब बेचारे नागको किसीसे बोलना ही नहीं होता है, तो फिर सच और झूठके लिये अलग-अलग जिह्वाएँ लेकर

वह क्या करेगा? लेकिन प्रकृतिने उसे दोहरी जीभ दी है, जिसलिसे लोग भी दूबकि दो दल मिट्टीके नागके मुंहमें खोंस देते हैं, और उसके सामने दूधका कटोरा रखकर उसकी पूजा करते हैं। तब तो वह दरअसल अेक कल्याणकर्ताके समान प्रतीत होने लगता है।

लेकिन जिस नागपंचमीके पीछे इतिहास क्या है? प्रत्येक त्यौहार या व्रतके पीछे उससे संबंध रखनेवाला इतिहास तो होता ही है। नागपंचमीके वारेमें अेक छोटीसी कर्षण लोककथा तो है ही। लेकिन नागपूजा जो इतनी सार्वत्रिक हो गयी थी उसके पीछे अेक विशाल इतिहास है। महाभारतके आदिपर्वमें ही वह अप्रत्यक्ष रूपसे ग्रथित किया गया है।

जिस तरह हमारे यहां ब्राह्मणों और आर्योंमें गोत्र-प्रवर होते हैं, उसी तरह द्राविडादि दूसरी जातियोंमें 'देवक' होते थे। अंग्रेजीमें देवकको 'टोटेम' कहते हैं। आज कितनी ही पहाड़ी जातियां और जंगली लोग अपने-अपने देवकोंके नामसे पहचाने जाते हैं। नागका 'टोटेम' या देवक रखनेवाली जाति नागलोकके नामसे पहचानी जाती थी। महाभारतकालमें आर्य और नागजातिके बीच युद्ध हुआ करते थे। जिस नागजातिका रक्षक तक्षक नामका राजा था। उसने परीक्षित राजासे वैर भंजानेके लिये उसकी नगरीमें घुसकर उसका वध किया। फिर तो अिन दो जातियोंके बीच घातक युद्ध छिड़ गया, जिसे अन्तमें आस्तिक ऋषिने वन्द करवाया। जिस आस्तिकका पिता आर्य था और माता थी नागकन्या। जिस प्रकारके अन्तर्जातीय विवाहके बिना यह कौमी झगड़ा खत्म होनेवाला नहीं था। ये नाग लोग बड़े शूर, कला-रसिक, नगर-रचना-कुशल और इतने विद्वान् थे कि पुोहितका काम कर सकते थे। आर्य और नाग लोग अेक-दूसरेके अितने निकट सहवासमें रह चुके थे कि अुनमें अन्तर्जातीय विवाह हो सके। अन्तमें नागजाति आर्योंमें मिल गयी और अुनके सन्तोषके लिये अुनका यह अेक त्यौहार आर्योंके त्यौहारोंमें नागपूजाके तौर पर शामिल किया गया।

आर्योंने अपनी दूरदर्शितासे अन्तर्जातीय विग्रह दूर किया, जिसके चिह्नके तौर पर जिस नागपंचमीकी तरफ हम देख सकते हैं।

किसीके प्रति भीति हो, घाक हो या आदर हो, तो भोला प्राकृतिक मनुष्य उसकी पूजाके अुपायको ही आजमाता है। यदि कोअी यह कहे कि आजकी यह नागपूजा सर्पोंके डरसे पैदा हुयी है, तो उससे अिनकार नहीं

किया जा सकता। लेकिन मालूम होता है कि अन्तमें हिन्दू लोगोंने भुस्से भी अहिंसाका रूप दे दिया है। चाहे जो हो, लेकिन हिन्दुस्तानकी संस्कृति परम्परासे आचारमें आये हुअे व्रतादिके कारण अखंडित रह सकी है। हिन्दू-धर्मने बहुतसे अैसे जंगली रिवाजोंको अुन्नत (सव्लिमेट) बना लिया है।

नागपंचमी

सावन सुदी ५

१ दिन

मनुष्येतर सृष्टिके साथ समभाव, हिंस्र प्राणियोंके प्रति भी दयाभाव, और अहिंसाका अभयदान, ये तीन बातें हम अिस त्वाँहारसे ले सकते हैं। नागपंचमीके दिन झूला झूलनेकी प्रथा सार्वत्रिक है। वैर शान्त हो जाने पर जो आनन्द मनाया जाता है, अुसका यह प्रतीक है। यह प्रथा जारी रखने योग्य है। नागपंचमीके दिन अलग-अलग किस्मके खुले मैदानी खेलोंका कार्यक्रम भी रखा जा सकता है।

सभी साँप विपैले नहीं होते। बहुतसे साँप खेतोंमें रहकर खेतीको नुकसान पहुंचानेवाले चूहोंको खा जाते हैं। अिसलिअे अुन्हें क्षेत्रपाल कहा जाता है। यह बात भी समझा दी जाय कि अुन्हें मारनेसे खेतीका नुकसान ही होता है।

१६

श्रावण-सोमवार

दोपहरकी आधी छुट्टी

बहुतसे लोग श्रावण-सोमवारके दिन आवे दिनका अुपवास रखते हैं। अिसलिअे यह छुट्टी देनेकी जरूरत पड़ती है। अिस दिन नहिम्न आदि अनेक स्तोत्र कंठ करनेका कार्यक्रम रखा जा सकता है। प्रत्येक सोमवारकी अलग-अलग कहानियां हैं। अुनका संग्रह किया जाय तो अच्छा।

श्रावण-पूर्णिमा

१ दिन

यह दिन रक्षा-बंधनका है। जिस तरह भाभीदूज शुद्ध निष्काम प्रेमका दिन है, वैसा यह दिन नहीं है; यह तो निष्काम ढंगसे रक्ष्य-रक्षकका नाता जोड़नेका दिन है। जो लोग स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकते (या करना नहीं चाहते), वे अतः लोगोंसे रक्षाकी अपेक्षा रखते हैं जिन पर अतः पूरा-पूरा भरोसा होता है। इसका प्रतीक है राखी। स्त्रियां, ब्राह्मण (?) और गाय ये तीन वर्ग रक्षाके अधिकारी माने जाते हैं।

राखीके दिन अपने हाथमें कोअी राखी बांधे या न बांधे, लेकिन रक्ष्य-वर्गके हितका चिन्तन तो इस दिन करना ही चाहिये। विद्यार्थी अपने दिल-बहलावके लिये पशु-पक्षियों और अपनेसे छोटोंको कभी वार यों ही सताते हैं। यदि वे राखीके दिन इस बुरी आदतको सुधारनेका विचार करें तो अच्छा हो। लेकिन यह विचार केवल उस दिनके लिये ही नहीं होना चाहिये। समाजकी गलत धारणाओंके कारण या तिरस्कारके कारण हरिजनवर्ग कुछ कम नहीं सताया जाता है। रक्षा-बंधनके दिन अगर हरिजन लोग अच्छे कही जानेवाली जातियोंके हाथमें राखी बांधने लग जायं, तो सहृदय हिन्दुओं पर अतः बहुत भारी असर होगा। समाजमें इस रिवाजको दायित्व करनेमें स्कूलोंसे मदद मिल सकती है।

और यह प्रेम-तन्तु हाथके कते हुअे सूतका ही हो सकता है। बाजारू सूत प्रेमका वहन कैसे कर सकता है?

श्रावणी पूर्णिमा द्विज लोगोंके उत्सर्जन और अुपाकर्मका दिन बन गया है। यह तो वही मसल है कि 'कुंडल गये और सूरख रहे।' वास्तवमें यह दिन विद्याध्ययनकी दीक्षाका दिन है। लेकिन आज केवल जनेअू बदलनेमें और सत्तू तथा पंचगव्यका भक्षण करनेमें ही इसकी परिसमाप्ति होती है। जनेअू पहननेवाले लोग वेदका अध्ययन नहीं करते, और जनेअू पहननेकी नअी प्रथा शुरू करनेवाले भी अध्ययनके वारेमें कोअी विशेष आस्था नहीं

रखते। जनेअके लिअे या गरीवोंकी रक्षाके लिअे अगर बिस दिन काफी सूत काता जाय, तो श्रावणी पूर्णिमामें कुछ जान आ जाये। श्रावणी पूर्णिमाके दिन दिनभर सूत कातकर अगर वह सूत गोरक्षाके लिअे अर्पण किया जाय, तो यज्ञोपवीत और रक्षा-बंधन दोनों चरितार्थ होंगे।

१८

जन्माष्टमी

[सावन वदी ८]

१. लोकनायक श्रीकृष्ण

कहते हैं कि जिसे किसीका आश्रय नहीं है, उसे महादेवके पास आश्रय मिलता है। अंधे, लूले, अपंग और पागल ही नहीं, बल्कि भूत-प्रेत, विषय-सर्प आदि भी महादेवके पास आश्रय पा सकते हैं। विष्णुकी कीर्ति यद्यपि बिस तरह नहीं गायी गयी है, फिर भी वे दीनानाय हैं। कृष्णावतार तो दीन-दुर्वलों और दुःखियोंके लिअे ही था। श्रीकृष्ण प्रजाकीय अवतार हैं। दाशरथि रामको हम राजा रामचन्द्र कहते हैं। श्रीकृष्णको राजा श्रीकृष्ण कहें, तो कानको कैसा अटपटा-सा लगता है! श्रीकृष्ण यद्यपि बड़े-बड़े सम्राटोंके भी अधिपति थे, तथापि वे जनताके पुरुष थे।

बचपनमें अुन्होंने ग्वालेका धंवा किया। बड़े हुअे तो सबीस बने। राजसूय यज्ञ जैसे राजनीतिके अुत्सवमें अुन्होंने अपने लिअे जूठन अुठानेका काम पसन्द किया। कितने लोकनायक अितना निःस्पृह जीवन दिग्गा सकेंगे? श्रीकृष्णने अिन्द्रके गर्वज्वरका नाश किया, ब्रह्माके जान-गर्वका शमन किया, धर्मशास्त्रोंकी दंभी हामी हवामें पले हुअे ऋषियोंको अपना रहस्य फिरसे समझाया, नारदके मोहको नाष्ट किया, फिर भी वे स्वयं अन्त तक गोप-बन्धु ही रहे। गोपीजन-वल्लभ नाम ही अुन्हें पसन्द आया। आनूपणके स्वरूपमें अुन्हें वनमाला ही भायी। नुदामाके तन्दुल, विदुरके घरके नागको पत्ती और द्रौपदीकी सादी पहनाबीसे ही अुनके हृदयको संतोष मिला। कुब्जाकी सेवा स्वीकार करनेमें ही अुन्होंने कृतार्थता मानी। वे तो दीनोंके सहायक, 'दीनन दुखहरन देव सन्तन हितकारी' थे।

श्रीकृष्णने गीताका उपदेश दिया। किसलिअे ? क्या युधिष्ठिरको साम्राज्य-पद दिलानेके लिअे ? नहीं, नहीं; यह आश्वासन देनेके लिअे कि 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्राः' भी परम गति पा सकते हैं; यह विश्वास दिलानेके लिअे कि 'अनन्य भक्तोंका योगक्षेम मैं स्वयं चलाता हूँ'; यह वचन देनेके लिअे कि 'दुराचारी भी यदि पश्चात्ताप करके अीश्वर-भजन करे, तो वह मुक्त हो जायगा'; भक्त अगर अपना हृदय शुद्ध करे, तो अुसे सभी प्रकारके पांडित्यसे — बुद्धियोगसे — परिपूर्ण करनेकी जिम्मेदारी जाहिर करनेके लिअे।

और, अिस गीतामें भगवान्ने कौनसे तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया है ? भगवान् कहते हैं: "तुम ज्ञानी भले ही वनो; लेकिन तुम लोक-संग्रहको नहीं छोड़ सकते। जो सच्चे ज्ञानी हैं, वे तो 'सर्वभूतहिते रताः' होते ही हैं।"

श्रीकृष्णने अवतार लेकर क्या किया ? कृत्रिम प्रतिष्ठाको तोड़ दिया। अभिमानी प्रतिष्ठित लोगोंको अपमानित किया और निष्पाप हृदयवाले दीन-जनोंको श्रेष्ठ करके दिखाया। धर्मको पांडित्यके जालसे वचाकर भक्तिके शुभ आसन पर बैठा दिया। राजा अिन्द्रके गर्वका हरण करके और अुसका करभार वन्द करके प्रजामें गोवर्धनरूपी देशपूजा शुरू की। राजाओंको विनम्र बनाया और लोगोंको अुन्नत किया। और अितना सब करने पर भी स्वयं लोगोंके नेता तक नहीं वने।

अेक वार—केवल अेक ही वार—लोगोंकी श्रीकृष्णके अूपरकी श्रद्धा डगमगायी थी। लोगोंने समझा कि देशमें श्रीकृष्ण हैं, अिसीलिअे जरासंध वार-वार हमारे अूपर धावा बोलता रहता है। श्रीकृष्णने लोक-मतका मान रखकर मध्यदेशका त्याग किया और समुद्रवलयंकित द्वारिकामें जाकर निवास किया। अिसमें लोगों पर रोप नहीं था। अुस समय आयो-नियन (यवन-ग्रीक) लोग हिन्दुस्तान पर हमला करनेकी तैयारीमें थे। अुनका विरोध करनेके लिअे, अुनके हमलेको रोकनेके लिअे, पश्चिमी किनारे पर अेक जवरदस्त फौजी अड्डा कायम करनेसे ही देशकी और लोगोंकी रक्षा हो सकती थी। श्रीकृष्णने द्वारावती (गेट ऑफ अिंडिया) में जाकर हिन्दु-स्तानके अिस द्वारकी रक्षा की और आर्यावर्तको सुरक्षितता प्रदान की। अैसे दीनानाथके सदियोंसे मनाये जानेवाले जन्म-दिवसका अिन लोकसत्ताके दिनोंमें दुगुना महत्त्व है।

२. जन्माष्टमीका भुत्सव

देशकी राजनीतिक स्थितिके वारेमें अेक वृद्ध साधुके साय अेक वार मेरी वातचीत हुयी थी। वातचीतके सिलसिलेमें मैंने राजनिष्ठाके वारेमें कुछ कहा। साधु महाराज अेकदम बोल अुठे : “अजी, हिन्दुस्तानमें तो दो ही राजा हुअे हैं। मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र और जगद्-गुरु श्रीकृष्ण। आज भी अिन दोनोंका ही हम लोगों पर राज्य चल रहा है। राजनिष्ठा तो अुन्हींके प्रति हो सकती है। जमीन पर या पैसे पर राज्य करनेवाले चाहे जो हों, लेकिन हिन्दुओंके हृदयों पर राज्य चलानेवाले तो ये दो ही हैं।” मुझे यह बात बिलकुल सही मालूम हुयी। भजन पूरा करके ‘राजा रामचन्द्रकी जय’ या ‘कृष्णचन्द्रकी जय’ पुकारकर लंग जब जय-जयकार करते हैं, अुस समय जिस तरहकी भक्तिका अुद्रेक दीख पड़ता है, अुस तरहकी भक्ति दूसरे किसी भी मानवीय व्यक्तिके प्रति पैदा नहीं होती।

श्री रामचन्द्रजीका जीवन जितना अुदात्त है, अुतना ही सुगम भी है। रामचन्द्रजी आर्य पुरुषोंके आदर्श पुरुष—पुरुषोत्तम हैं। समाजके नीति-नियमोंका, रस्म-रिवाजोंका, वे परिपूर्ण पालन करते हैं। अितना ही नहीं, बल्कि रामचन्द्रजी लोकमतको अितना मान देते हैं कि जो किसी भी प्रजासत्ताक राज्यके राष्ट्राध्यक्षके लिये आदर्शरूप हो सकता है। रामचन्द्रजीमें यह निश्चय दृढ़ है कि ‘मेरा अशेष जीवन समाजके लिये है।’

श्रीकृष्ण भी पुरुषोत्तम हैं; लेकिन अलग युगके। श्रीकृष्णमें यह वृत्ति दिखायी देती है कि जब समाज-संगठन स्वयं ही आत्मिक अुन्नतिमें बाधक होता है, तब अुसके बंधन तोड़ दिये जायें और नवीन नियम बनाये जायें। फिर भी श्रीकृष्ण अराजक-वृत्तिके नहीं थे। लोक-संग्रहका महत्त्व वे अच्छी तरह जानते थे। श्रीकृष्णने धर्मको अेक नया ही रूप दिया। और अिसीलिये श्रीकृष्णके जीवनका प्रत्येक प्रसंग रहस्यमय बना हुआ है। कोअी व्याकरणकार जिस तरह अेक बड़ा सर्वव्यापी नियम बनानेके बाद अुसके अ्पवादोंको अेक सूत्रमें ग्रथित करता है, अुसी तरह श्रीकृष्णने मानो अपने जीवनमें मानव धर्मके सभी अ्पवाद सूत्रबद्ध किये हैं। गोपियोंसे अत्यन्त दृढ़, पवित्र किन्तु मर्यादा-रहित प्रेम, रिश्तेमें मामा होते हुअे भी दुराचारी राजाका वध, भक्तकी प्रतिज्ञाको सच्चा साबित करनेके लिये अपनी प्रतिज्ञाका भंग करके भी युद्धमें शस्त्र-ग्रहण, आदि सब प्रसंगोंमें ‘तत्त्वकी रक्षाके लिये

नियम-भंग' के दृष्टान्त हैं। श्रीकृष्णने आर्य-जनताको अधिक अन्तर्मुख और अधिक आत्म-परायण बनाया और अपने जीवन और अपुपदेशसे यह सिद्ध करके दिखाया कि भोग और त्याग, गृहस्थाश्रम और संन्यास, प्रवृत्ति और निवृत्ति, ज्ञान और कर्म, अिहलोक और परलोक आदि सब द्वन्द्वोंका विरोध केवल आभासरूप है। सबमें अेक ही तत्त्व अनुस्यूत है। आर्य-जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव तो श्रीकृष्णका ही है। फिर भी यह निश्चित करना कठिन है कि जिस प्रभावका स्वरूप क्या है। जिस प्रकार सरल भाषामें लिखी हुआ भगवद्गीताके अनेक अर्थ किये गये हैं, उसी प्रकार कृष्ण-जीवनके रहस्यका भी विविध प्रकारसे वर्णन किया गया है। जिस तरह वाल्मीकि-रामायणके श्रीरामचन्द्रजी और तुलसी-रामायणके श्रीरामचन्द्रजीके बीच बड़ा अन्तर है, उसी तरह महाभारतके श्रीकृष्ण, भागवतके श्रीकृष्ण, गीत-गोविन्दके श्रीकृष्ण, चैतन्य महाप्रभुके श्रीकृष्ण और तुकाराम महाराजके श्रीकृष्ण अेक होते हुए भी भिन्न हैं। वर्तमानकालमें भी नवीनचन्द्र सेनके श्रीकृष्ण बाबू बंकिमचन्द्रके श्रीकृष्णसे अलग हैं; गांधीजीके श्रीकृष्ण तिलकजीके श्रीकृष्णसे भिन्न हैं; और बाबू अरविन्द घोषके श्रीकृष्ण तो सबसे न्यारे हैं। सुलभ और दुर्लभ, अेक और अनेक, रसिक और विरागी, विप्लवी और लोक-संग्राहक, प्रेमल और निष्ठुर, मायावी और सरल—अैसे अनेक प्रकारके श्रीकृष्णकी जयन्ती किस तरह मनायी जाय, यह निश्चित करना महाकठिन काम है।

श्रीकृष्णका चरित्र अुतना ही व्यापक है, जितना कि कोअी संपूर्ण जीवन हुआ करता है। दुनियाकी प्रत्येक स्थितिका श्रीकृष्णने अनुभव किया है। प्रत्येक स्थितिके लिये अुन्होंने आदर्श अपुस्थित किया है। श्रीकृष्णकी वाल्यावस्था अतिशय रम्य है। गायों और वछड़ों पर अुनका प्रेम, वनमालाके प्रति अुनकी रुचि, मुरलीका अुनका मोह, बालमित्रोंसे अुनका स्नेह, मल्लविद्याके प्रति अुनका अनुराग, सभी कुछ अद्भुत और अनुकरणीय है। छोटे लड़के जरूर अिन बातोंका अनुकरण करें। सुदामाके स्नेहको याद करके जन्माष्टमीके दिन हम अपने दूर रहनेवाले मित्रोंको चार दिन अेकसाथ रहनेके लिये, श्रीकृष्णका गुणगान करके खेलनेके लिये बुला लें तो बहुत ही अुचित होगा।

श्रीकृष्णके मनमें छोटा या बड़ा, अमीर या गरीब, ज्ञानी या अज्ञानी, मूर्ख या कुरूप, किसी भी प्रकारका भेद न था। गौओंको चराने जाते समय श्रीकृष्ण अपने सभी साथियोंसे कहते कि हरअेक बालक घरसे अपना-

अपना कलेवा ले आये। फिर वे सबका कलेवा अकेसाय मिलाकर प्रेमसे सबके साथ वन-भोजन करते थे। आज भी हम अके स्कूलके विद्यार्थी, अके दफ्तरके कर्मचारी, अके मिलके मजदूर, अके क्लबमें खेलनेवाले सदस्य बिकट्टा होकर, अपने-अपने घरसे खानेकी चीजें लाकर, शहर या गांवके बाहर किसी कुओं पर या नदीके किनारे पेड़के नीचे गपशप करते, गाते, खेलते या भजन करते हुये दिन बितायें, तो अुसमें कैसी नयी-नयी खूबियां प्रकट होंगी! लेकिन बिस वनभोजनमें लड्डू, पकौड़ी या चिवड़ा-चवैना नहीं चलेगा। कृष्णाष्टमीके दिन मुख्य आहार तो गोरसका ही होना चाहिये। दूध, दही, मक्खन और कन्द-मूल-फलका आहार ही बिस दिनके लिये अुचित है। धर्म-संशोधक जगद्-गुरुका जिस दिन जन्म हुआ था, अुस दिन तो लड्डूके बिस प्रकारका सात्त्विक आहार ही करें। बड़ी अुन्नके लोग अुपवास रखें।

अुपवासकी प्राचीन प्रथा नहीं छोड़नी चाहिये। अुसमें काफी गहरा रहस्य है। अुपवासमें मन अन्तर्मुख हो जाता है। दृष्टि निर्मल होती है। शरीर हलका रहता है। बहुतांका यह अनुभव है कि समय-समय पर अुपवास करनेकी आदत हो, तो अुपवासके दिन मन अधिक प्रसन्न रहता है। अुपवासमें वासना शुद्ध होती है, संकल्प-शक्ति बढ़ती है। शरीरमें दोष न हो, तो अुपवास करनेसे चित्त अेकाग्र होता है, और धर्मके गहरे-से-गहरे तत्त्व स्पष्ट होते जाते हैं। अगर बुद्धियोग हो तो अुपवास करके धर्म-तत्त्वका चिन्तन किया जाय; और जिसमें अितनी शक्ति न हो, वह श्रद्धावान् लोगोंके साथ धर्मचर्चा करे। यह भी न हो सके तो गीताका पारायण (पाठ) किया जाय; नाम-संकीर्तन, भजन आदि किया जाय; सात्त्विक संगीतके साथ भजन गाये जायं। अुपवासके दिन रोजमरके व्यावहारिक काम जहां तक हो सके, कम किये जायं; लेकिन खाली समय आलस, निद्रा या व्यननमें न बिताया जाय। बहुत बार हमें सुन्दर-सुन्दर धार्मिक वचन, भजन या पद गिल जाते हैं; लेकिन अुन्हें लिख रखनेके लिये समय नहीं मिलता! बिस दिन अुनको लिखनेमें समय बिताया जाय तो अच्छा होगा।

जिनमें सार्वजनिक कार्य करनेकी शक्ति हो, अुनके लिये बिससे अच्छा और क्या हो सकता है कि वे गोपालके जन्मोत्सवके दिनसे गोरक्षाका आन्दोलन शुरू करें? श्रीकृष्णके साथियोंको जितना दूध और घी मिलना था, अुतना दूध और घी जब तक हमारे बच्चोंको नहीं मिलता, तब तक

यह नहीं कहा जा सकता कि हमने श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव ठीक-ठीक मनाया है। श्रीकृष्ण अप्रतिम मल्ल थे, गृहस्थाश्रममें रहकर ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। वे दीर्घायु थे। जिसलिये हरजेक अखाड़ेमें जन्मोत्सव मनाया जाना चाहिये और श्रीकृष्णके जीवनके जिस भूले हुए अंगकी याद फिरसे ताजी करनी चाहिये।

जो पांडित्यमें ही जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, उनके लिये सबसे अच्छा काम यह हो सकता है कि जिस तरह गीतामें श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया है, उसी तरह उनके भिन्न-भिन्न अवसर पर कहे हुए वचन महाभारत तथा भागवत, विष्णु-पुराण और हरिवंशमें से जितने मिल सकें, उनसे सब अेकत्र करें। उसके बाद जिन वचनोंका संदर्भ देखकर श्रीकृष्ण-चरित्रके अनुसार गीताजीका अर्थ लगायें। और जिस महान् जगद्-गुरुका जीवन-दर्शन (फिलॉसोफी ऑफ लाइफ) क्या था, उसकी राजनीति कैसी थी, आदि बातें निश्चित करके लोगोंके सामने रखें।

यह बहुत नाजुक सवाल है कि जन्माष्टमीका दिन स्त्रियां किस तरह मनायें। भक्तिके अतिरेकके स्वरूपका नारदने अपने भक्तिसूत्रमें वर्णन किया है। उस परसे मनोवृत्तियोंको गोपी समझकर परब्रह्म पुरुष पर वे कितनी मुग्ध थीं, जिसका वर्णन कभी कवियोंने अितना ज्यादा किया है कि श्रीकृष्णके जीवनके परिपूर्ण रहस्यको जनता लगभग भूल ही गयी है। श्रीकृष्णको गोपीजन-वल्लभ कहा गया है। श्रीकृष्ण और गोपियोंके बीचका प्रेम कितना विशुद्ध और आध्यात्मिक बन गया था, जिसकी कल्पना जिन हृदयोंको नहीं आ सकी, उन्होंने या तो श्रीकृष्णको नीचे घसीट लिया है, अथवा उस प्रेमका वर्णन करनेवाले कवियोंको हलकी वृत्तिका और असत्य-वादी ठहराया है। मेरा कहना यह नहीं है कि श्रीकृष्ण और गोपियोंके बीचके प्रेमका वर्णन करनेमें कवियोंने भूल नहीं की है। मैं तो यही मानता हूं कि समाजकी स्थितिको देखकर कवियोंके लिये अधिक सावधानीके साथ उस प्रेमका वर्णन करना अुचित था। मुसलमानी धर्मके नूफी सम्प्रदायके मस्त कवियों और फकीरोंको सजा देते समय कदूर मुसलमान वादशाह कहते थे कि ये साधु जो कहते हैं वह गलत नहीं है; लेकिन अनधिकारी समाजके सामने जिस तरहकी रहस्यमय बातें रखकर ये समाजको नुकसान पहुंचाते हैं, और इसीलिये ये सजाके पात्र हैं। चूंकि गोपियोंके प्रेमको

हम नहीं समझ सकते, जिसलिये उस प्रेमको वैसे स्वरूप देनेकी कोजी आवश्यकता नहीं, जिसका हमारी वर्तमान नीति-कल्पनाओंके साथ मेल बैठ नके। मीराबायीने स्पष्ट ही दिखाया है कि गोपियोंका प्रेम कैसा था। जब-जब लोगोंके मनसे धर्मके अपरकी श्रद्धा अठ जाती है, तब-तब उस श्रद्धाको फिरसे स्थिर करनेके लिये मुक्त पुरुष जिस संसारमें अवतार लेते हैं, और स्वयं अपने अनुभवसे और जीवनसे लोगोंमें धर्मके प्रति श्रद्धा पैदा करते हैं। उसी तरह गोपियोंकी शुद्ध भक्तिके वारेमें जब लोगोंमें अश्रद्धा उत्पन्न हुआ, तब गोपियोंमें से एकने—शायद राधाजी ही होंगी—मीराका अवतार लेकर प्रेमधर्मकी फिरसे प्रस्थापना की। यदि हम भीश्वर और भक्तके बीचका यह अनिर्वचनीय प्रेम-संबंध स्पष्ट कर सकें, तब तो गोपियोंके प्रेम और विरहके गीत गानेमें मुझे कोजी आपत्ति नहीं दिखायी देती। मीराके आदर्शका त्याग हमसे हो ही नहीं सकता। जमाना बुरा आ गया है, जिसलिये क्या हम मीराबायीको भूल जायें? यह बात नहीं है कि श्रीकृष्णके साथ केवल गोपियोंका ही संबंध था। यशोदाजी बालकृष्णको पूजतीं, कुन्ती पार्य-सारथिको पूजती, सुभद्रा और द्रौपदी कृष्णको बन्धुरूपमें पूजतीं। श्रीकृष्णका यह संपूर्ण जीवन हमें अपनी स्त्रियोंके सामने रखना चाहिये। श्रीकृष्ण कितने संयमी थे, कितने नीतिज्ञ थे, कितने धर्मनिष्ठ थे, आदि सभी बातें स्त्रियोंके सामने स्पष्ट कर देनी चाहिये। और तभी गोपी-प्रेमका आदर्श उनके सामने रखना चाहिये। प्रेम और मोहके बीच जो स्वर्ग और नरकके जितना भेद है, उसे स्पष्ट करके दिखाना चाहिये। पुराणोंमें—भागवतमें—एक बहुत सुन्दर प्रसंगका वर्णन आया है कि रासलीलामें गोपियोंके मनमें मलिन कल्पना आते ही श्रीकृष्ण—असंख्य रूपधारी श्रीकृष्ण—अचानक अदृश्य हो गये और जब गोपियोंका मन पश्चात्तापसे पवित्र हुआ, तभी वे फिरसे प्रकट हुअे। जिसका रहस्य हरएकको समझ लेना चाहिये। जिस रहस्यको किसी भी व्यक्तिसे छिपा रखनेमें कुशल नहीं। अचूरे ज्ञानसे उत्पन्न होने-वाले दोषोंको हटानेका अुपाय संपूर्ण ज्ञान है, अज्ञान नहीं। प्रेमको अज्ञानके विशुद्ध रास्तेसे हमें ले जाना चाहिये। प्रेम दवानेसे नहीं दबता, बल्कि दवानेके प्रयत्नमें वह विकृत हो जाता है।

जन्माष्टमीके दिन हम सुदामा-चरित्र गायें, श्रीकृष्णजी द्वारा गोपियोंको दिया हुआ संदेश गायें, बुद्धवके हाथों श्रीकृष्णजीका गोपियोंको भेजा हुआ

सन्देशा गायें, गीताका रहस्य समझ लें, रास खेलें और उपवास रखकर शुद्ध वृत्तिसे अुसके अन्दरका रहस्य समझ लें।

जन्माष्टमीके दिन अगर हम गायकी पूजा करें तो वह ठीक ही है। गायकी पूजा करनेमें हम पशुको परमेश्वर नहीं मानते, किन्तु अुस पूजा द्वारा गायके प्रति प्रेम और कृतज्ञता प्रकट करते हैं। नदीकी पूजा, तुलसीकी पूजा और गायकी पूजा अगर अच्छी तरह सोच-समझकर हम करें, तो अुससे अन्तःकरणको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा मिलेगी, रसवृत्तिका विकास होगा और हृदय पवित्र तथा संस्कारी बनेगा। प्रत्येक पूजामें अेकसा ही भाव नहीं रहता। पूजा कृतज्ञतासे हो सकती है, वफादारीके कारण हो सकती है, प्रेमके कारण हो सकती है, आदर-वृद्धिसे हो सकती है, भक्तिसे हो सकती है, आत्मनिवेदन-वृत्तिसे हो सकती है या स्वरूपानुसंधानके कारण भी हो सकती है। बिस तरह देखा जाय तो गायकी पूजा करनेमें अेकेश्वरवादी या अनीश्वरवादीको भी कोअी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। निरीश्वरवादी अॉगस्टस कान्ट क्या मानव-जातिकी स्त्री-प्रतिमा बनाकर अुसकी पूजा नहीं करता था ?

श्रावण महीनेमें बहुतसी गायें व्याती हैं। घरकी छोटी-छोटी लड़कियां अगर कृतज्ञताके साथ गायोंकी और अिधर-अुधर अुछलने-कूदने व चरनेवाले छोटे-छोटे बछड़ोंकी हल्दी और रोलीसे पूजा करें, तो कितनी प्रेमवृत्ति जाग्रत होगी !

कन्याशालाओंमें अनेक तरहसे कृष्ण-जयन्ती मनायी जा सकेगी। घरके अन्दरकी जमीन अच्छी तरह लीपकर सफेद पत्थरकी बुकनी (रांगोली) और अवीर आदिसे चौक पूरनेकी प्रतियोगिता रखी जा सकेगी। लड़कियां गीत गायें, रास खेलें, कृष्ण-जीवनके भिन्न-भिन्न प्रसंगोंका नद्य और पद्यमें वर्णन करें, घरसे कलेवा लाकर सब मिलकर खायें। अुस दिन स्कूलकी लड़कियोंको अपनी सहेलियोंको भी साथ ले आनेकी बिजाजत हो, तो अधिक आनन्द आयेगा और अधिक लड़कियां शिक्षाकी ओर आर्कषित होंगी। धार्मिक शिक्षाको यदि प्रभावकारी बनाना है, तो हर त्यौहारके अवसर पर स्कूलको मन्दिरका रूप दे देना चाहिये। यदि हम मूर्ति-पूजासे न डर गये हों, तो जन्माष्टमीके दिन स्कूलमें हिंडोला बंधवाकर लोरियां गायें। अिसमें लड़कियोंकी माताओं भी अवश्य भाग लेंगी।

आजकी कन्याशालाओं अभी तक समाजका अेक अंग नहीं बनी हैं, अुन्होंने समाजमें अभी तक जड़ नहीं पकड़ी है, और जिसीलिअे अिन स्कूलोंको चलानेवाले अुत्साही देशसेवकोंका आवेसे ज्यादा परिश्रम वेकार जाता है। जन्माष्टमी जैसे त्यौहार मनानेमें यदि समाजकी सभी स्त्रियां भाग लेने लग जायं, तो देखते-देखते शिक्षा सफल हो जायगी; शिक्षाका लाभ केवल स्कूलमें पढ़नेवाली लड़कियोंको ही नहीं, बल्कि सारे समाजको मिलेगा; और हम शिक्षाका जो पवित्र कार्य कर रहे हैं, अुस पर भी श्रीकृष्ण परमात्माकी अमृत-दृष्टि बरसेगी।

३०-८-२३

३. प्रतीक्षा

जन्माष्टमी जैसे अुत्सव हम वर्षानुवर्ष क्यों मनाते हैं? असलमें जिस दिन हमारे हृदयमें श्रीकृष्णका अुदय होगा, अुसी दिन हमारी सच्ची जन्माष्टमी होगी। तब तक केवल रस्म अदा करनेके लिअे मनायी जानेवाली जन्माष्टमियां व्यर्थ ही हैं। पर यह कौन कह सकता है कि हमारे हृदयमें कृष्ण-जन्म कब होगा? जिसीलिअे शबरीकी तरह हमें अुसकी अखंड प्रतीक्षामें, अुसकी अुत्कंठामें रहना चाहिये। यह भी अुतना ही सही है कि अिस प्रकारकी प्रतीक्षाके विना हमारे हृदयमें कभी कृष्ण-जन्म नहीं होगा।

चोरोंके डरसे हम जो पहरा देते हैं, वह भी सारी रात देना पड़ता है। चोर क्या कहकर थोड़े ही आते हैं? वे तो चाहे जिस बक्त था सकते हैं। सरहद पर शत्रुके हमलेके विरोधमें अखंड पहरा देना पड़ता है। बरसों तक यह पहरा अुसी तरह देना पड़े तो भी क्या? सरहद पर गाफिल रहनेसे काम नहीं चलेगा। दरियाके तूफानमें जहाजके टूट जाने पर जान बचानेके लिअे कागकी बण्डियां (कॉर्क जैकेट) पहनकर लोग दरियामें कूदते हैं। अिस डरसे कि अैन संकटके समय पर घबराहट और दुःखमें कुछ सूझ न पड़ेगा, मल्लाहोंसे समय-समय पर अुसकी कवायद करायी जाती है, जिससे अैन मौके पर भूल नहीं होने पाये। गुजरातके मगहर लोककथा लेखक श्री भेषाणीने अेक लुटेरेकी कहानी दी है। न जाने घरमें कब मेहमान आयेंगे, और अगर आतिथ्यमें भूल हुआ तो सत्त्व चला जायगा, अिस खयालसे चाहे जहांसे धन लाकर वह लुटेरा हर बक्त गरम-गरम रसोयी तैयार रखता था। गोपीचंदकी मां मैनावती भी 'गोसाओं महाराज

कब आ जायें, जिसका कोजी ठीक ठिकाना नहीं' सोचकर गरम-गरम रसोजी हाथमें लेकर सवेरेसे शाम तक खड़ी ही रहती थी। गफलत हुआ और अुसी समय स्वामी महाराज आ जायें तो? ऋषियोंने शवरीसे कह रखा था कि श्रीरामचन्द्र आकर तुझे दर्शन देंगे और तेरा अुद्धार करेंगे। बचपनसे लेकर बुढ़ापे तक सारा जीवन अुसने श्रीरामकी प्रतीक्षामें विताया। अुसे विश्वास था कि ऋषियोंके शब्द व्यर्थ नहीं जायेंगे। शरीर थका हुआ था, फिर भी राम-दर्शनकी आशासे वह टिकी रही। अन्तमें अुसने रामके दर्शन किये, रामका स्वागत भी किया; फिर अधिक जीनेमें अुसे कुछ सार न दीख पड़ा। पूरी अेक जिन्दगी अुसने अिन्तजारमें वितायी।

दर्शनके आनन्दकी अपेक्षा यह प्रतीक्षाकी कृतार्थता कुछ विशेष होती है। प्राप्तिकी अपेक्षा प्रतीक्षामें जीवनका रस अधिक होता है। श्रद्धा, आकांक्षा, तपस्या, आशा-निराशा यही जीवनकी दुर्लभ पूंजी है।

यह दुर्लभ पूंजी पानेके लिये अिस प्रकारके नियत-कालिक अुत्सवोंकी आवश्यकता है।

दुनियामें सर्वत्र राक्षस फैले हुये हैं; गरीबोंका कोजी त्राता नहीं रहा है; अनेकरूप धारण करके राक्षस प्रजाको सताते हैं, ठगते हैं, पापके मार्गकी ओर लोगोंको ललचाते हैं और गढ़में ढकेल देते हैं; मनुष्यकी शक्ति, मनुष्यकी वुद्धि सब खर्च हो गयी है; लोग निराश और नास्तिक होने लगे हैं। अैसे समय मंगल-हृदयने करुणामयसे प्रार्थना की कि 'अब तारनहार तू ही है।' अन्तर्यामी जाग्रत हुआ और युगावतार प्रगट हुआ। यह सब श्रद्धापूर्वक मनमें लाकर हम अेकाग्र होनेका जो प्रयत्न करते हैं, अुसका नाम है जयन्तीका अुत्सव। धरतीकी प्यासके कारण जिस तरह आकाशके भेव पानी बरसाते हैं, अुसी तरह अैसी व्याकुलता और प्रतीक्षाके साथ अवतारी पुरुषका प्राकट्य होता ही है। अुसे हृदयमें स्थान देनेके लिये हम अपने हृदयका परिष्कार करें; हृदयको मांजकर साफ करें, वहां स्वागतका शुद्ध आसन तैयार रखें और अुसकी राह देखते रहें—अिसीलिये ये अुत्सव हैं। पानी और बरफ जैसे भिन्न नहीं हैं, पानी और भापमें जैसे तात्त्विक भेद नहीं है, वैसे ही अिस प्रतीक्षा और प्राप्तिके भेद नहीं है। भेद है भी तो केवल मात्राका। दिन-दिन यह अुत्कटता बड़े और बड़ती रहे, अिसीलिये अिस प्रकारके अुत्सवोंका आयोजन है।

४. दिव्य जन्म-कर्म

हम सुखमें हों या दुःखमें, जागते हों या सोते, स्वतंत्र हों या परतंत्र, जालिम हों या मजलूम, संगठित हों या असंगठित, जन्माष्टमी तो हर साल आयेगी ही। सूरज अगता है और डूबता है, चन्द्रकी वृद्धि होती है और क्षय होता है, नदीका पानी बहता चला जाता है, ऋतुचक्र घूमता ही रहता है, ग्रहण होते हैं और छूटते हैं, काल-प्रवाह बहता जाता है। अुसी तरह जन्माष्टमी नाम-स्मरण कराती आती है और नाम-स्मरण कराती चली जाती है। जब हम स्वतंत्र थे तब भी जन्माष्टमी आती थी, हमारा पतन होने लगा तब भी जन्माष्टमी आती रही; अब फिरसे हम अुठनेका प्रयत्न कर रहे हैं, तब भी जन्माष्टमी आयी है। आप अुसका अुपदेश सुनें या न सुनें, वह तो आयेगी और जायेगी। जिसका ध्यान जाग्रत होगा वह अुसका अुपदेश सुनेगा और धन्य होगा।

जन्माष्टमी पुरातन है, सनातन है, नित्य-नूतन है; क्योंकि वह संपूर्ण है। जन्माष्टमी कृष्णावतारका त्यौहार है। कृष्ण-चरित्र अद्भुत, विविध और संपूर्ण है; क्षीर-सागरके समान है। जिसके पास जितनी शक्ति होगी, अुतना अुसमें वह अवगाहन कर सकता है। फिर भी कोअी यह नहीं कह सकता कि मैंने श्रीकृष्णके चरित्रका पार पा लिया है।

*

*

*

श्रीकृष्णका जन्म कारावासमें हुआ। माता-पिताके वियोगमें अुन्हें वचपन विताना पड़ा। पुराणकारोंने हमें असा चित्र दिया है कि श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ विविध प्रकारकी लीलाओं करनेमें मशगूल थे। लेकिन वे यह बात नहीं भूले थे कि अुनके माता-पिता परराज्यमें बन्दी हैं। श्रीकृष्णने अपना सारा वचपन गोपियोंके बीच बैठकर वंशी बजानेमें नहीं वित्ताया था। व्यायाम करके मल्लविद्यामें वे प्रवीण हो गये थे। दुष्टोंका दमन करनेके अनेक वस्तु-पाठ अुन्होंने वचपनसे ही सीख रखे थे। मथुराकी राजनीतिसे वे हमेशा परिचिन रहा करते थे। अनुकूल समय देखकर अुन्होंने कंसका नारा दिया, माता-पिताको छुड़ाया और अुसके बाद ही गुरुजीके पास पढ़ने गये।

अुन्होंने वही विद्या सबसे पहले सीखी, जिससे अुनकी माताकी मुक्ति होनेवाली थी, पिताकी मुक्ति होनेवाली थी। अुसके बाद आत्माकी भूत्रको शान्त करनेके लिये, ज्ञानकी प्यास बुझानेके लिये, और विद्याका आनन्द

लूटनेके लिये वे सान्दीपनिके विद्यापीठमें अज्जयिनी गये। 'प्रथम माता-पिताकी मुक्ति, बादमें विद्या' — यही श्रीकृष्णका जीवन-मंत्र था। जिस बातका अन्हें कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ कि माता-पिताकी मुक्तिके पीछे — स्वदेशकी मुक्तिके पीछे — अन्हें अपने यौवनके दिन लगाने पड़े। कर्तव्य-पालनकी लगनसे श्रीकृष्णकी वृद्धि अितनी तीव्र हो गयी थी कि गुरुके पास विद्या सीखते अन्हें काल या श्रम लगा ही नहीं। माता-पिताको छुड़ाया, विद्या पूरी की, गुरुको दक्षिणा दी और तभी जाकर श्रीकृष्णने विवाह किया; और विवाहके बाद सारा जीवन निरासक्त वृत्तिसे परोपकार करनेमें लगाया। जिस समय और सब लोग अपने-अपने राज्यका और अपने ही अुत्कर्षका विचार करते थे, अुस समय श्रीकृष्ण सारे भारतवर्षकी राजनीतिका और धर्म-संस्थापनका विचार करते थे।

श्रीकृष्ण अैसा नहीं समझते थे कि लोक-संग्रहके मानी लोकसंख्या (जन-संख्या) का संग्रह है। और अिसीलिये अुन्होंने भयानक मानव-संहारको देखते हुअे भी धर्म पर ही डटे रहनेकी हिम्मत दिखायी; और यद्यपि वे स्वयं अप्रतिम मल्ल थे, और देशमें अितना प्रचंड राष्ट्र-क्षयकारी युद्ध मचा हुआ था, तो भी वे निःशस्त्र और अयुध्यमान रह सके। जब दुर्योधन और अर्जुन दोनों अेकसाथ श्रीकृष्णकी मदद मांगने गये, तब अुन्होंने अुन दोनों राजपुत्रोंके सामने जो पसंदगी रखी वह अर्थपूर्ण है — या तो निःशस्त्र श्रीकृष्णको पसन्द करो या यादव-सेनाको। दोनोंने अपनी-अपनी अिच्छाके अनुसार चुनाव किया और अुसका परिणाम हम देख सकते हैं।

*

*

*

भारतीय युद्ध महान् था, लेकिन कृष्ण-चरित्र तो अुससे भी महत्तर है। महाभारतमें गौरीशंकर और धवलगिरि जैसे दो प्रचंड शिखर जगमगाते हैं। अिन दो शिखरोंकी तुलनामें वाकी सभी अुत्तुंग शिखर छोटेसे टीलोंके समान दिखायी देते हैं। ये दो शिखर हैं भीष्म और श्रीकृष्ण। अुस महान् युद्धमें 'कर्तुम्, अकर्तुम्' और 'अन्यथाकर्तुम्' शक्ति अिन दोमें ही थी। दोनों अेकसे ही अनासक्त, अेकसे ही धर्मनिष्ठ, अेकसे ही परोपकारी और अेकसे ही योगी थे। फिर भी दोनोंमें कितना अंतर! दोनोंका समाज-शास्त्र अलग, दोनोंका राजनीतिक तत्त्वज्ञान अलग और दोनोंका जीवन-पथ भी अलग। भीष्मका विचार था, 'प्रचलित राज्य-प्रवंधकी रक्षा करते हुअे,

अुसीके द्वारा, जितना कुछ वन सके अुतना लोक-कल्याण करना और वर्तमान-कालके प्रति वफादार रहना'; जब कि श्रीकृष्ण अन्यायके शत्रु, पाप-पुंजके अग्नि और रुढ़िके विध्वंसक थे। अुनकी दृष्टि भविष्यकी ओर थी। राजनीतिक प्रश्नोंमें भीष्माचार्य वैध-नीतिका अनुसरण करनेवाले थे; लेकिन श्रीकृष्ण पुराने सड़े हुअे वैध-नीतिके मुर्दोंको चुन-चुनकर गाड़ने पर तुले हुअे थे। असलिये भीष्माचार्यने सत्ताके पक्षको अपनाया और श्रीकृष्णने सत्यके।

समाज-विज्ञानमें भी दोनोंमें यही भेद था। भीष्माचार्य कहते, 'राजा कालस्य कारणम्'— राजा जैसा बनायेगा वैसा जमाना बनेगा। श्रीकृष्ण कहते, "राजा कहाँसे जमानेको बनायेगा? जमाना तो मैं स्वयं हूँ, और अेक-अेक पुरानी रुढ़िका चुन-चुनकर नाश करनेके लिये मैंने अवतार लिया है— 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धः।'" भीष्माचार्य हमेशा धर्मशास्त्रके नीचे दबे हुअे रहते, और धर्मशास्त्रकी आज्ञाओंका पालन करनेमें ही संपूर्णता मानते थे। इसके विपरीत श्रीकृष्ण धर्मकी आज्ञाकी तहमें छिपा हुआ धार्मिक रहस्य समझकर अुसी पर दृढ़ रहते थे।

फिर भी कैसा आश्चर्य! भीष्माचार्यने प्रतिज्ञा-पालन करके भारत-वर्षमें राज्यक्रान्ति होने दी और जिस समाज-व्यवस्थासे वे चिपटे रहना चाहते थे, अुसीका अुन्होंने भारत-युद्धके द्वारा अुच्छेद किया। श्रीकृष्णने प्रतिज्ञा-भंग करके अपने भक्तकी जान बचायी और भीष्मको यश दिया।

जिस तरह शरीर नये-नये वस्त्र धारण करता है, आत्मा नयी-नयी देह धारण करती है, अुसी तरह धर्मकी सनातन आत्माको नयी-नयी विधियाँ खोज निकालनी पड़ती हैं। अिन्द्रकी पूजामें जब कोअी अर्थ नहीं रहता, तब गोवर्धनकी पूजा ही चलानी चाहिये। यज्ञ-यागकी धूम मचानेकी अपेक्षा भगवान्की शरणमें जाना ही अधिक श्रेयस्कर है— जन्माष्टमी हमें यही सिखाती है।

श्रीकृष्णका चरित्र हमने अब तक ध्यानपूर्वक नहीं देखा है। श्रीकृष्णकी वचनकी लीला और बड़ी अुन्नम किया हुआ जगद्गुह्यकारका अवतार-कृत्य अितना अत्यधिक मोहक और अुदात्त है, और श्रीकृष्णको अवतार मानकर हम अितने आश्चर्यमूढ़ हो गये हैं कि जिस पुरुषोत्तमने आदर्श मानवके नाग पर जिस तरह अपना जीवन बिताया, अुनकी तरफ हमारा ध्यान ही नहीं

जाता। आज तक हमने जितने नररत्नोंकी जीवनियां पढ़ी या देखी हैं, उन सबमें श्रीकृष्णकी जीवनी कुछ और ही तरहकी है। वचनमें छीके पर रखे मक्खनका नैवेद्य आत्मदेवको समर्पित करनेके बाद यशोदा माता द्वारा पकड़े जानेके भयसे डरे हुअे श्रीकृष्णकी नाटकीय लीला छोड़ दी जाय, तो श्रीकृष्णके सारे जीवनमें दुःख या भयका कहीं लवलेश भी नहीं पाया जाता। जीवन अितनी विविध घटनाओंसे परिपूर्ण होते हुअे भी श्रीकृष्ण कभी दिङ्मूढ़ नहीं हुअे, दुःखसे नहीं दवे, अथवा अुदासीनतासे शिथिल नहीं हुअे। जिसे आसक्ति ही न हो, वह अुदास क्यों होगा? जो ब्रह्मानंदको जानता हो, वह डरे किससे? जो सर्वभूतोंमें अपनेको ही देखता हो, अुसके मनमें राग, द्वेष या जुगुप्सा कहाँसे होगी? यही श्रीकृष्णका पूर्णत्व है। अेक ब्राह्मणने श्रीकृष्णको लात मारी, तो अुसे अुन्होंने अलंकारकी तरह धारण किया। गांधारीने घोर शाप दिया, तो अुसका अुन्होंने अपने अवतार-कार्यके सहायकके रूपमें आदर किया। अभिमन्यु मारा गया, घटोत्कच मारा गया, द्रौपदीके पुत्रोंका वध हुआ, अठारह अक्षौहिणी सेनाका नाश हुआ। महान्-महान् आचार्य काम आये, यादव-कुलका संहार हुआ, लेकिन श्रीकृष्ण रहे जैसे-के-वैसे — अक्षुब्ध, अविचलित और गंभीर! मानो प्रलय-कालके वादका महासागर!

*

*

*

क्या कोअी समर्थ चित्रकार अैसा अेक चित्र बना देगा, जिसमें भारतीय युद्धकी संग्राम-भूमि पर घायल हुअे हजारों मुमूर्षु योद्धा खूनके कीचड़में लोट रहे हैं और अुनके बीच श्रीकृष्णकी कारुण्य-मूर्ति हरअेकके माथे पर अपना शीतल, वरद हस्त फेरती हुअी घूम रही है? अन्तिम घड़ीमें श्रीकृष्णका दर्शन! यह अहोभाग्य जिस जमानेको मिला वह धन्य है! अुस समयके कवियोंने 'मरणोन्मुख वीरोंका है यह मुरलीधर विश्राम महान्।' — अिस प्रकारके भावपूर्ण गीत गाये होंगे।

*

*

*

सामने भारी संकट देखकर आगे बढ़ना या अकेले अपने ही सिर सारे संकटका बोझ अुठा लेना, और जब राज्य-वैभव या कीर्ति मिलनेवाली हो, तब शरमीली बहूकी तरह पीछे-पीछे रहना — श्रीकृष्णका यह स्वभाव कितना अुदात्त-मधुर है! गोकुलमें जितने भी राक्षस आये, अुन सबको स्वयं श्रीकृष्णने मारा। यमुनामें कालियनाग आकर रहा और अुसने

सारे वृन्दावनमें आतंक फैलाया, उस समय जिस बातका विचार किये बिना कि मेरा क्या होगा, श्रीकृष्ण कदंबके पेड़ परसे संकटकी गहराजीमें कूद पड़े। सब गोप-बालक भयभीत हो गये। कितने ही घर भाग गये, और कजी तो वहीँके वहीँ मूढ़ बनकर खंभेके समान निश्चल रह गये। किसीको कुछ भी नहीं सूझा। अकेले श्रीकृष्णने कालियके साथ युद्ध किया, उसे हराया, झुकाया और जीवन-दान देकर छोड़ दिया। कंसवधमें वे आगे थे, जरासंधके वधमें भी वे ही अग्रसर थे। जहाँ कहीं संकट पैदा हुआ वहाँ वे स्वयं अुपस्थित हुअे, और सो भी मांहरे पर।

*

*

*

जब अिन्द्रने प्रलय-कालकी वारिज शुरू की, उस समय भी श्रीकृष्णने गोवर्धनको उठाकर प्रजाकी रक्षा की। लेकिन अुनके साथ जनताको यह भी सबक सिखाया कि गोवर्धनको अूपर उठानेमें जब प्रत्येक व्यक्ति मदद देगा, तभी स्वयं प्रभु अपनी अुंगली उठावेंगे। शक्ति परमात्माकी, लेकिन प्रयत्न तुम्हारा।

*

*

*

जन्माष्टमीके दिन श्रीकृष्णसे हम क्या मांगें? हरजेक अपनी अपनी वृत्तिके अनुसार मांग ले। भारत-कालीन प्रमुख व्यक्तियोंने श्रीकृष्णसे जो कुछ मांगा था, वह पांडव-गीतामें श्लोकबद्ध किया गया है। कृष्ण कृष्णकी तरह मांगेगा, भक्त भक्त-हृदयसे मांग लेगा, अभिमानी अैत्रे वचन कहेगा जो अुसके अभिमानको शोभा दें, और वह अपना पाप भी परमात्माके मृत्ये मड़ देगा। लेकिन मांगना हो तो वही मांगना चाहिये, जो वीरमाता, धर्ममाता, तपस्विनी कुन्तीने मांगा था। भागवतमें कुन्तीकी प्रार्थना कितने सुन्दर शब्दोंमें दी गजी है! कुन्ती माता कहती है — “हे भगवन्, मुझे वह वैभव नहीं चाहिये, जिससे तुम्हारा विस्मरण हो। मुझे वह आपत्ति दो, जिसके कारण हमेशा तुम्हारा स्मरण बना रहे, तुम्हारा चिन्तन हो और शरणागतता बड़े।” भगवन्! हमें आपत्ति दो — ‘आपदः सन्तु नः शश्वत्’। क्योंकि

विपदो नैव विपदः सम्पदो नैव सम्पदः।

विपद् विस्मरणं विष्णोः सम्पन्नारायण-स्मृतिः॥

परमात्माको भूल जाना ही बड़ा भारी संकट है, और नारायणका अखंड स्मरण ही सर्व सम्पत्ति, वैभव, श्रेय, प्रेय, स्वराज्य और साम्राज्य है!

५. जन्माष्टमी

वहीका वही सूरज हर रोज अगता है, फिर भी वह हर रोज नया प्राण, नया चैतन्य और नया जीवन लेकर आता है।

यह समझकर कि सूरज तो पुराना ही है, पक्षी निरुत्साह नहीं होते। कलका ही सूरज आज आया है, यह कहकर द्विजगण चिर-परिचयके कारण भगवान् दिनकरका अनादर नहीं करते। जिस मनुष्यका जीवन शुष्क हो गया है, जिसकी आंखोंका तेज अउतर गया है, जिसके हृदयमें रक्तका अभिसरण रुक गया है, अउसीके लिये सूरज पुराना है। जिसमें प्राणके चैतन्यका थोड़ा भी अंश बचा है, अउसीके दृष्टिसे तो भगवान् सूर्यनारायण नित्य-नूतन हैं। जन्माष्टमी भी हर साल आती है। प्रतिवर्ष हम वही की वही कथा सुनते हैं, अउसी तरह अउ-वास रखते हैं, और अउसी तरह कृष्णजन्मका अउत्सव मनाते हैं। फिर भी हजारों साल हो गये, जन्माष्टमी हर साल अउस जगद्-गुरुका अेक नया ही सन्देश हमें देती आयी है। कृष्णपक्षकी अष्टमीके वक्र चन्द्रकी तरह अेक पांव पर भार देकर और अेक पांव टेढ़ा रखकर, शरीरको कमनीय वांक देकर, वंकिमचन्द्र* मुरलीधरने जिस दिन दुनियामें प्रथम प्राण फूँका, अउस दिनसे आज तक प्रत्येक निराश्रित मनुष्यको आश्वासन मिला है कि 'न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति' — जिस मनुष्यने सन्मार्गको पकड़ा है, जो धर्मसे चिपटा रहता है, अउसीके हे तात ! कभी दुर्गति नहीं होती।

*

*

*

लोगोंको अैसा लगता है कि 'धर्म दुर्बलोंके लिये है। बहुत हुआ तो वह व्यक्ति-व्यक्तिके सम्बन्धमें अुपयोगी सावित होगा; लेकिन राजा और सम्राट् जो कुछ करेंगे वही धर्म है। साम्राज्य-शक्ति धर्मसे श्रेष्ठ है। व्यक्तिका पुण्यक्षय होता है; लेकिन साम्राज्य तो अलौकिक वस्तु है। अीश्वरकी विभूतिकी अपेक्षा साम्राज्यकी विभूति श्रेष्ठतर है। साम्राज्य जब हाथमें विजय-पताका लेकर दिग्विजय करने निकलता है, तब दिनके चन्द्रमाकी तरह अीश्वर कहीं छिप जाता है।'

मथुरामें कंसकी धारणा अैसी ही थी; मगध देशमें जरासंधको अैसा ही लगता था; चेदि देशमें शिशुपालकी यही मनोदशा थी; जलाशयमें रहनेवाला

* वंकिमचन्द्र = वक्रचन्द्र = The Crescent Moon

कालियनाग असा ही समझता था; द्वारिका पर हमला करनेवाले कालयवनका तत्त्वज्ञान यही था; महापापी नरकासुरको यही शिक्षा मिली थी; और दिल्लीका सम्राट्, कौरवेश्वर जिसी वृत्तिमें पला था। ये सब महापराक्रमी राजा अन्धे या अज्ञ न थे। उनके दरवारमें अतिहास-वेत्ता, अर्थशास्त्र-विशारद, और राज-धुरन्धर अनेक विद्वान् थे। वे अपने-अपने शास्त्रोंको निचोड़कर, उनका मार निकाल कर, अपने-अपने सम्राटोंको सुनाया करते थे। लेकिन जरामंथ कहता — “आपके अतिहासके सिद्धान्तोंको जरा रहने दीजिये! मेरा पुरुषार्थ तो इसीमें है कि मैं अपने बुद्धिबल और बाहुबलसे आपके जिन सिद्धान्तोंको झूठा साबित कर दिखाऊं।” कालयवन कहता — “मैं अके ही अर्थनीति जानता हूँ — दूसरे देशोंको चूस-चूसकर उनका धन हरण करना! धनवान् होनेका यही अकेमात्र सीधा, सरल और असलिअे वैज्ञानिक मार्ग है।” शिशुपाल कहता — “न्याय-अन्यायकी बात प्रजाके आपसी लड़ाई-झगड़ोंमें चल सकती है। हम तो सम्राट् ठहरे! हमारी जाति ही निराली है। अिज्जत और प्रतिष्ठा ही हमारा धर्म है।” कौरवेश्वर कहता — “जितने रत्न हैं, वे सब हमारी बर्पाती हैं, हमारे ही पास अुन्हें आ जाना चाहिये; ‘यतो रत्नभुजां वयम्’ (क्योंकि हम रत्न-भोगी हैं)। रत्नोंका अुपभोग करनेके लिये ही हम पैदा किये गये हैं। दुनियामें जितने तालाव हैं, वे सब हमारे ही विहारके लिये हैं। विना लड़ाईके हम किसीको सूखीकी नोक पर समाये अितनी भी भूमि न देंगे।”

पक्षपात-शून्य नारदने कंसको सचेत कर दिया कि पराये शत्रुके विरुद्ध तू भले ही विजयी हुआ हो, लेकिन तेरे साम्राज्यके अन्दर — अरे, तेरे घरके ही अन्दर — तेरा शत्रु अुत्पन्न होगा। जिस रागी वहनको तूने अपनी आश्रित दार्मीकी तरह रखा है, अुसीके पुत्रके हाथों तेरा नाश होगा; क्योंकि वह धर्मात्मा होगा। अुसका तेजोवध करनेके तू जितने प्रयत्न करेगा, वे सब अुसके लिये अनुकूल ही होंगे। कंसने मनमें विचार किया — “Forewarned is forearmed! जो सावधान है वही सन्नद्ध है। समय पर अितनी चेतावनी मिलने पर भी हम पानीसे पहले पाड़ न वांयें, तो अतिहासज कैसे? हम सम्राट् कैसे?” नारदने कहा — “यह तेरी ‘विनाशकालकी विपरीत बुद्धि’ है। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह अतिहासका सिद्धान्त नहीं, बल्कि धर्मकी अनुभव-वाणी है। यह सनातन सत्य है। वसुदेव-देवकीके आठ अपत्योंमें से अेकके हाथों तू जरूर मारा जायगा। तेरे लिये अब अेक ही अुपाय है। अब भी पश्चात्ताप कर और श्री विष्णुकी

शरणमें जा ।” अभिमानी कंसने तिरस्कारयुक्त अट्टहासके साथ जवाब दिया — “समरभूमि पर पराजित हुअे विना सम्राट् पश्चात्ताप नहीं किया करते ।” ‘तथास्तु’ कहकर निराश नारद चले गये । कंसने सोचा — “आज तकके सम्राट् विजयी न हुअे, अिसका कारण अुनकी गफलत थी । पूरी तरह सावधान रहना वे न जान सके । मैं भी अगर गाफिल रह जाऊं, तो मुझे भी हारना पड़ेगा । लेकिन कोअी बात नहीं । जो वीर है अुसे चाहिये कि हमेशा जयके लिये कोशिश करे और पराजयके लिये तैयार रहे । हार जानेमें कोअी हेठी नहीं, लेकिन धर्मके नाम पर पहले ही किसीकी शरण जानेमें वदनामी है । धर्मका साम्राज्य साधु-संन्यासी, वावा-वैरागी और देव-ब्राह्मणोंको ही मुवारक हो । मैं तो सम्राट् हूं । मैं केवल शक्तिको ही पहचानता हूं ।”

क्रूर होकर कंसने वसुदेवके सात निरपराध अर्भकोंका खून कर डाला ।

कृष्णजन्मके समय अीश्वरी लीला प्रवृत्त हुअी, और कृष्ण परमात्माके वदले कन्या-देहधारी शक्ति कंसके हाथमें आ गयी । कंसने अुसे जमीन पर पटक कर मारना चाहा, मगर शक्ति थोड़े ही मरनेवाली थी ? वसुदेवने चुपकेसे श्रीकृष्णको गोकुलमें ला रखा ; लेकिन परमात्माको कोअी भी बात छिपाकर नहीं रखनी थी । परमात्माको ‘प्रकटताकी भीति’ कहां थी ? शरमिन्दा हुअे कंससे शक्तितने अट्टहास करके कहा, “तेरा शत्रु तो गोकुलमें दिन-डूना रात-चौगुना बढ रहा है ।” मथुरासे गोकुल-वृन्दावन बहुत दूर नहीं है । चार-पांच कोस भी न होगा । कंसने कृष्णको मारनेके जितने सूझे अुतने सब प्रयत्न किये ; लेकिन अुसको मालूम न हुआ कि श्रीकृष्णकी मृत्यु किस बातमें है । श्रीकृष्ण अमर तो ये नहीं ; लेकिन मरणावीन भी नहीं थे । धर्मकार्य करनेके लिये वे आये थे । जब तक धर्मका राज्य प्रस्थापित नहीं होता, तब तक भला वे कैसे विरत हो सकते थे ? कंसने सोचा कि श्रीकृष्णको अपने दरवारमें बुलाकर अुन्हें मार डाला जाय । लेकिन वहीं अुसकी वाजी पलट गयी ; क्योंकि अुसकी प्रजाने परमात्म-तत्त्वको पहचाना और वह परमात्माके अनुकूल हो गयी ।

कंसका नाश देखकर जरासंधको चेतना चाहिये था । लेकिन जरासंधने सोचा — “नहीं, कंसकी अपेक्षा मैं अधिक सावधान हूं । अनेक जरा-जर्जरित, भिन्न-भिन्न अवयवोंको अेक जगह सांध — जोड़ कर मैंने अपने साम्राज्य-शरीरको प्रबल बनाया है । मल्लयुद्धमें मेरी जोड़का कौन है ? मेरी नगरीका कोट दुर्भेद्य

है। मुझे डर काहेका ? ” लेकिन जरासंधकी भी दातुनके समान दो कमचियां बन गयीं। कालियनाग तो अपने जलस्थानको सुरक्षितताका नमूना समझता था। उसका जहर असह्य था; केवल फूत्कारसे ही वह बड़ी-बड़ी सेनाओंको मार डालता था। उसके उस विषम विषका भी कुछ न चला। कालयवनने भी चढ़ाजी की, लेकिन सोये हुये मुचक्रुन्दकी क्रोधाग्निमे वह बीचमें ही जल गया। नरकासुर अेक स्त्रीके हाथों पराभूत हुआ और मर गया। कौरवैश्वर दुर्योधन द्रौपदीकी क्रोधाग्निमें भस्म हो गया, और शिशुपालको बुसीकी की हुयी भगवन्निन्दाने मार डाला।

पड्रिपुके समान ये छः सम्राट् उस समय मर गये। सप्तलोक और सप्तपाताल सुखी हुये और जन्माष्टमी सफल हुयी। फिर भी, अितने सालोंके बाद भी, हर साल हम यह अुत्सव किसलिये मनाते हैं? अिसलिये कि अभी हमारे हृदयोंमें से और सामाजिक जीवनमें से पड्रिपुओंका नाश नहीं हुआ है। वे हमें बहुत सताते हैं। हम लगभग निराश हो गये हैं। अैसे अवसर पर हमारे हृदयमें श्रीकृष्णचन्द्रका जन्म होना चाहिये। अिस आश्वासनका हमारे हृदयमें अुदय हो जाना चाहिये कि 'जहां पाप है, वहां पापपुंजहारी भी है।' जब मध्यरात्रिके अन्धकारमें कृष्णचन्द्रका अुदय हो जायगा, तभी निराश दुनिया आश्वासन पा सकेगी और धर्म पर दृढ़ रह सकेगी।

४-९-२१

जन्माष्टमी

सावन बदी ८

१ दिन

जन्माष्टमी यानी गीता-गायक, गोपाल, श्रीकृष्णकी जयन्ती। अिस दिन गोसेवाका विचार प्रथम होना चाहिये; गोशाला सम्वन्धी कुछ-न-कुछ सेवा अिस दिन करनी चाहिये। लड़कियां तो गायकी पूजा करेंगी ही।

अिस दिन सब लोग अेकसाथ बैठकर चारो-चारीसे अेक-अेक अध्याय बोलकर गीताके अठारहों अध्यायोंका पाठ करें। गीता-गास्वजग थोड़ा विवेचन हो। श्रीकृष्णने कालिय, कंस, जरासंध, शिशुपाल, नरकासुर तथा दुर्योधन, अिन छः सम्राटोंके साम्राज्यका जो संहार किया, अुसका अितिहास आज कहा

जाय। विसीमें थोड़ा नाट्य-भाग भी मिलेगा, जिसमें से अेकाध नाट्य-प्रयोग रखा जा सकता है। दोपहरको विद्यार्थी और शिक्षक मिलकर घूमने जाय और भोजन करें। रातमें भागवतकी कोअी कथा कही जाय।

[अुत्तर भारतमें यह त्यौहार भाद्रपद कृष्ण ८ को होता है।]

१९

गणपतिकी अुपासना

[भादों सुदी ४]

हमारा हिन्दूधर्म अनेक छोटे-वड़े और नये-पुराने सम्प्रदायोंका अेक अ-विभक्त कुटुम्ब है। मनुष्यकी शक्ति और वृत्तिके अनुसार अुसे अेक ही सत्य अलग-अलग ढंगसे प्रतीत होता है। फिर अुसमें अनुभवके अलावा मनुष्य अपनी कल्पना और काव्यशक्तिको जोड़कर अुसकी विविधताको बहुत बढ़ा देता है। कालके प्रवाहके कारण मनुष्यके विश्वासोंमें जो परिवर्तन होते हैं, अुन सब परिवर्तनोंमें से कालक्रमके तत्त्वको भूल जानेसे या अुसके मिट जानेसे भी कअी झंझटें पैदा हुआ करती हैं। लेकिन मनुष्य-प्राणी स्वभावसे अितना पुराण-प्रिय है कि परेशान करनेवाली अिन झंझटोंको भी हिफाजतके साथ रख लेनेकी अिच्छा अुसके मनमें अुत्पन्न होती है। लेकिन अैसा भी तो नहीं कहा जा सकता कि अिस वृत्तिसे कुछ फायदा होता ही नहीं। अितिहासकी दृष्टि रखनेवाले समझदार लोगोंको अुसमें से अितिहास मिलता है, विकासका तत्त्व प्राप्त होता है, और मोटी अवलवाले सामान्य जन तो जिस तरह भी आश्वासन प्राप्त किया जा सकता हो अुसे पाकर सन्तोष मानते हैं। विविध वृत्तियोंके लोग, जहां किसी तरहकी अेकवाक्यता नहीं है वहां भी, अैसी परिस्थितिमें से ही अेकताका अनुभव करने लगते हैं!

गणेश-चतुर्थीके अुत्सवको ही ले लीजिये। गणपति-अुपासना अेक या दूसरे रूपमें वेदकालसे चली आयी है। लेकिन यह कहना मुश्किल है कि आजकलका गणेश-पूजाका पंथ वैदिक है। हिमालय पर्वतमें कअी स्थानोंसे छोटे-वड़े अनेक झरने निकलते हैं; और संयोगवशात् वे अेक होकर नदीका नाम प्राप्त करते हैं। मालूम होता है, यही हाल अिस गणेश-भक्तिका भी

हुआ है। इसकी पौराणिक कथाओं देखने लगे, तो वे कहीं भी मेल नहीं खातीं। असा दिखायी देता है कि जिस तरह आकाशके तारोंसे अत्यन्त हुआ पौराणिक कहानियों और कल्पनाओंमें मेल जैसी कोयी चीज नहीं हुआ करती, उसी तरह यहां भी हुआ है।

और शायद गणपति भी आकाशकी किसी ज्योतिमें से ही बना कोयी देवता हो। रंगसे गणपति लाल होता है। अने लाल रंगके फूल भाते हैं। तो संभव है वह आकाशका मंगल नामक ग्रह ही हो। गणपतिकी कयी चतुर्थियोंको 'अंगारिकी चतुर्थी' कहते हैं। अंगारक यानी मंगल। वह अंगारिकी चतुर्थी अगर मंगलवारके दिन आये, तो उसका पुण्य अधिक समझा गया है। गणपतिको मंगल-मूर्ति तो कहते हैं। ग्रहोंमें मंगलका नाम तो 'मंगल' है, मगर वह शुभ ग्रह नहीं समझा जाता। गणपतिका परिचय विघ्नहर्ता, विघ्न-नाशकके तौर पर कराया गया है। फिर भी मानव-गृह्यमूत्रमें बताया है कि रुद्र तथा महादेवने विनायकको गणोंका प्रमुख नियुक्त किया, और मनुष्योंके कार्योंमें विघ्न अुपस्थित करनेका काम अुसे सौंपा गया। महा-भारतमें शिव, स्कन्द, विशाख आदि देवताओंका जिक्र बच्चोंको तकलीफ देनेवाले देवताओंके तौर पर किया गया है; वही हालत विनायककी भी है।

पुराने जमानेमें देवताओंके संबंधमें जो कल्पना थी वह मिश्र थी। देवता यानी शक्ति; वह मनुष्यको हैरान भी कर सकती है और मदद भी दे सकती है। राजाकी खुशामद करके मनुष्य अुसका अनुग्रह प्राप्त कर सकता है, और राजाकी अवकृपा होनेसे मनुष्यका सत्यानाश होता है। इसी तरहको कल्पना अिन देवताओंके विषयमें भी थी। गणपति पहले तो विघ्नकर्ता रहा होगा, बादमें भक्तोंने विनय-अनुनय करके अुसे विघ्नहर्ता बनाया होगा।

अेक जगह कहा गया है कि गजानुरको मारनेके लिये भगवान् विष्णुने पार्वतीजीके पेटमें जन्म लिया। दूसरे स्थान पर कहा गया है कि महादेव-जीने गलतीसे अपने द्वारपाल गणका सिर धड़से अलग कर दिया और अपनी भूल ध्यानमें आते ही वास्तविक अपराधी गजानुरका सिर काटकर अुने अुस गणके धड़ पर जोड़ दिया। अिस कहानीमें शायद किमी अनार्य पूजाके वैदिक पूजामें रूपान्तरित किये जानेका अुल्लेख होगा।

गणपति या गणेश अनेक देवताओंका सरदार होना चाहिये। पुराने जमानेमें कयी जनतन्त्रात्मक राज्य गणराज्यके नामसे पहचाने जाते थे। अुन

गणराज्योंकी लोकसभाके देवताके तौर पर गणपतिकी स्थापना हुयी होगी। जिस तरह व्यक्तिकी आत्मा होती है, उसी तरह संगठित समाजकी, समष्टिकी भी आत्मा होनी चाहिये। यह सामाजिक आत्मा ही गणपति है। गणपतिकी पूजा करनेके मानी हैं सामाजिक जीवनको अपनी निष्ठा समर्पित करना — ऐसा भी शायद पुराने समयका भाव होगा।

कुछ भी हो, महादेव और विष्णुके बीचका विरोध टालनेके लिये गणपतिका अुपयोग अच्छा था। गणपति शैव भी है और वैष्णव भी। किसी शुभ कार्यका प्रारंभ करना हो या घरका दरवाजा बनाना हो, तो वहां गणपतिको बैठा देनेसे सब झगड़े टल जाते हैं।

जब हम लिखना सीखते हैं, तब 'अ, आ, अि, अी' से प्रारंभ नहीं करते। महाराष्ट्रमें हम 'श्री गणेशाय नमः' से शुरू करते थे। आज 'श्री-गणेशका' अर्थ ही 'प्रारंभ' हो गया है। संभव है कि आद्य लिपिकार कोअी गणेश नामक योजक होगा। चूंकि उसने लिपिका आविष्कार किया था, अिस-लिये लेखनका प्रारंभ कृतज्ञतापूर्वक उसके नामसे ही करनेका रिवाज पड़ गया होगा। व्यासजीने पहले अपने मस्तिष्कमें महाभारत रचा, पर उसे लिखनेवाला कोअी लेखक न मिल सका। आखिरकार गणेशजीने अुनकी कठिनाअीको दूर किया। पुराणोंमें कहा गया है कि त्रिविष्टप (तिव्वत) में 'लेखाः' नामके देवगण रहते थे। वे लेखन-कलामें प्रवीण थे। अुनका अगुआ गणपति था। तो क्या हमारी लेखन-कला फिनीशियासे न आकर तिव्वतसे यहां आयी होगी? देववाणीकी ध्वनियोंकी व्यवस्था करनेवाली हमारी वर्ण-माला वैज्ञानिक है। वर्णमालाकी योजना आर्यवुद्धिकी व्यवस्था सूचित करती है। हमारी लिपिमाला अिस तरहकी मालूम नहीं होती। वह वैज्ञानिक नहीं है। वह कहीं बाहरसे हमारे यहां आयी होगी। अगर वह तिव्वतसे आयी हो, तो कोअी आश्चर्यकी बात नहीं। लंबे अर्से तक ब्राह्मण तो लेखन-कलाकी अवगणना या अपेक्षा ही करते आये। अन्तमें अुन्हें भी श्री गणेशजीकी ही शरण लेनी पड़ी।

दूसरी अेक कल्पना यह है कि गणेशजी वास्तवमें गणेश नहीं बल्कि गुणेश हैं। अुपनिषत्कालके बाद जब तीन गुणोंकी व्यवस्था रची गयी, तब अिन तीन गुणोंके स्वामीके तौर पर 'अीश सर्वा गुणांचा' (सब गुणोंका अीश्वर) गणपति स्थापित किया गया होगा।

वेदान्त-विद्या जब लोक-मुलभ हुयी, तब बहुतसे अनार्य देवता और अुनकी अनार्य पूजा-पद्धति रूपकके तौर पर पहचानी जाने लगी। अंकार या प्रणवमें सत्त्व, रज, तम तीनों गुण हैं। जिस अंकारमें हायीकी सूंड जैसी शकल है। अुस परसे गणेश या गुणेश गजानन समझा गया। अुसके माये परका अर्धचन्द्र हायीका दांत बन गया। गणपति ज्ञानका, वेदान्त-विद्याका स्वामी बन गया। मनको मारे बिना वेदान्त-ज्ञानका साक्षात्कार नहीं होता; जिसलिअे मनके देवता चन्द्रका दर्शन टालकर ही ज्ञानकी आराधना की जाय, तभी चतुर्थी यानी तुरीयावस्था कृतार्थ होगी। गणपति चूहे पर बैठता है। चूहा यानी काल। मनुष्य-जीवनके धागोंको काट खानेवाला काल यानी चूहा। वह जिसकी सवारी है, वह गणपति ही मोअदाता है।

जिसी तरह कुछ लोग यह भी मानते हैं कि जंगली लोगोंकी या अनार्य लोगोंकी किसी पशु-पूजामें से अेक अुपासना अुत्पन्न हुयी, और वह बदलते-बदलते वेदान्त-विद्या तक पहुंच गया।

लेकिन आज जब हर साल खड़िया मिट्टीसे बनाये अुअे गणपति घर-घर पूजे जाते हैं, तब क्या अुन गणपतिके अुपासकके मनमें यह सब वेदान्त-विद्या जाग्रत रहती है? पुराने समयका गाणपत्य संप्रदाय बहुत भयावना था। मनुष्यकी खोपड़ियोंके आसन पर गणपतिकी स्थापना होती थी। जारण, मारण, अुच्चाटन आदि गंदी विद्याओंको गणपतिकी अुपासनाके साथ जोड़ा गया था। गनीमत है कि अुन सबसे हम आज अुबर गये हैं। धर्म-व्यवस्थापक कहते हैं कि कलियुगमें वाकी सब देवता सो गये हैं, सिर्फ चंडी और विनायक — अर्थात् काली और गणपति ये दो ही जाग्रत हैं। यह भी कहा गया है कि देवोंमें भी चातुर्वर्ण्य है। शंकरजीका वर्ण ब्राह्मण, विष्णु-जीका धन्विय, ब्रह्माजीका वैश्य और गणपतिका शूद्र है। और जिसमें आश्चर्य क्या? शंकरजी अकिंचन तथा तपस्वी योगी हैं; विष्णुजी लक्ष्मीपति, अैश्वर्य-वान्, प्रजा-पालक हैं; ब्रह्मदेव तो निर्माण-कर्ता हैं; लेकिन यह समझमें नहीं आता कि गणपतिको शूद्र क्यों समझा गया? क्या जिसलिअे कि वे सामान्य जनताके देवता हैं? कहीं-कहीं अैसी कोशिश हुयी है कि गणपतिको ब्रह्माका ही अेक रूप समझा जाय।

महाराष्ट्रमें गणपतिको 'मोरया' कहते हैं। जिसका मूल पूनाके पासके अेक स्थानिक देवतामें है। मोरगांवके साधु मोरया गणपतिके अुपासक थे।

अुन्हींको लोगोंने गणपतिका अवतार बना दिया। आजकल महाराष्ट्रमें कला और अुत्सवके नामसे कभी-कभी गणेशजीकी अैसी नखरेवाज और बेहूदी मूर्तियां बनायी जाती हैं कि शायद हिन्दूधर्मके कट्टर विरोधी भी अुनकी अिससे अधिक विडम्बना न कर सकेंगे। अिस तरहकी मूर्तियोंको देखकर भक्तिभाव कैसे जाग्रत या पुष्ट हो सकेगा ?

मूर्तिविधानके ग्रंथोंमें लिखा है कि पूजाके प्रमुख देवोंकी मूर्तियां शास्त्रोक्त 'ध्यान' के वर्णनके अनुसार ही प्रसन्न-गंभीर बनानी चाहिये। क्षुद्र देवों और यक्ष-किन्नरोंकी मूर्तियोंके बारेमें किसी तरहकी रोकटोक नहीं लगायी गयी है।

हिन्दूधर्मके धार्मिक विश्वासोंमें कुछ अितनी गड़बड़ी फैल गयी है कि अुसमें अेक बार प्रवेश करनेके बाद बाहर निकलना आसान नहीं है। पुराने धर्मकारों और समाज-व्यवस्थापकोंने समाजमें अुच्च वेदान्ती विचार रखने-वाले पंडितोंसे लेकर भूत-प्रेत-पिशाचादि काल्पनिक और भयानक शक्तियोंके अुपासकोंकी प्राकृत पूजा तक सबको सूत्रबद्ध करनेका प्रयत्न किया। यह कहना कि अैसा करनेके लिये अुन्होंने जान-बूझकर धूर्त्ताका प्रयोग किया, अैतिहासिक दृष्टिसे असत्य ही मालूम होता है। विलकुल अलग-अलग ढंगकी दो वस्तुओंको जब अेक ही समय और अेकसाथ सही समझकर स्वीकार करना पड़ता है, तब मनुष्यका कल्पना-समृद्ध मन अेक या दूसरे ढंगसे अुनका समन्वय करनेका प्रयत्न करता ही है। यह कहना धृष्टता समझी जायगी कि अुनमें से अेक कल्पना सच्ची है और दूसरी झूठी। परम सत्य तो मनुष्य-बुद्धिसे न मालूम कितनी दूर है। हमारी हालत तो वैसी ही है, जैसी अुस पत्थरकी, जो हिमालयके सामने खड़ा होकर कंकरसे कहता है—“तेरी अपेक्षा मैं हिमालयसे अधिक मिलता-जुलता हूं।” अेक कल्पनाको जंगली कहें, दूसरीको सुधरी हुआ कहें, और समय बीतने पर अनुभव करें कि दोनों अेकसी भ्रमात्मक थीं—अैसी हालतमें लोगोंकी कल्पनाओं पर नुक्ताचीनी करते रहनेके वजाय अपने जीवनमें सदाचार, अनासक्ति और निर्भयता लानेका प्रयत्न करें, तो लोग आप ही आप कल्पनाके काव्यका आनन्द लूटते हुअे भी अुसके प्रभावके नीचे दब न जायेंगे। जहां-जहां वहम और भ्रमात्मक कल्पनाओं मनुष्यको दुराचारकी ओर ले जाती हैं, वहां-वहां हम लोगोंको जाग्रत करते जायें तो वाकी सब काम आप ही आप सिद्ध ही जायगा।

दूसरी तरफ हमें लोगोंको भौतिक विज्ञानोंके सिद्धान्तों तथा पद्धतियोंसे परिचित करानेकी जल्दी करनी चाहिये। भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान परस्पर विरोधी नहीं बल्कि अेक-दूसरेके पोषक हैं। अेक ज्ञान दूसरे ज्ञानका विरोधी हो ही कैसे सकता है? दोनोंमें से सच्ची धार्मिकता जाग्रत होनी चाहिये। दोनोंकी अुपासना मानव-कल्याणकी दृष्टिसे ही करनी चाहिये, और सच कहें तो यही ज्ञानदाता-विघ्नहर्ता गणपतिकी सच्ची अुपासना है।

१४-१०-'३४

गणेश-चतुर्थी

भादों सुदी ४

१ दिन

यह ज्ञान-साधनाका दिन है। अिस दिन किसी भी नये शास्त्रका अध्ययन शुरू किया जाय। भिन्न-भिन्न शास्त्रोंकी रूपरेखा देनेवाले व्याख्यान रखे जायं। मोदक (पक्वान्न विशेष) का भोजन अिस दिनके लिये रूढ़िके अनुसार है ही। बहुतेसी जगहोंमें रामनवमी, जन्माष्टमी और गणेश-चतुर्थी ये तीन दिन सामाजिक अुत्सवके तौर पर रूढ़ हैं। अुनके कारण समाज अेकत्र हो जाता है। अुससे लाभ अुठाकर धर्म-संस्कारके अनेक प्रश्नोंकी चर्चा हो सके तो अच्छा। अिस कामके लिये गणेश-चतुर्थी विशेष अनुकूल दिन है। विद्यार्थी मिट्टीके गणपति बनायें, दूसरी भी तरह-तरहकी मूर्तियां बनायें और अुन सबको अेक बड़े कमरेमें तरतीवसे सजाकर रखें। भांति-भांतिकी पत्तियां लाकर अुनकी रचनासे कमरेको सुशोभित करें।

जैनियोंके पर्युपणके वारेमें भी विवेचन होना चाहिये।

मनोविज्ञान पर लिखे हुअे अैसे निबंध भी आज पढ़े जा सकते हैं, जिन्हें विद्यार्थी आसानीसे समझ सकें।

चरखा-द्वादशी

[भादों वदी १२]

१

चरखा-द्वादशी अब जनताका त्यौहार बन चुका है। स्वराज्य जब मिलना होगा तब मिलेगा। स्वर्गीय दादाभाभीसे लेकर लोकमान्य, दास और लाजपतराय तकके देशसेवकोंने अब तक अितनी तपश्चर्या की है कि यदि अब स्वराज्य न मिले तो ही आश्चर्य है। अगर हम बड़ी-बड़ी गलतियां न करें, फल-सिद्धिके समय ही कहीं अड़ंगा न लगायें, और अपने-अपने हिस्सेका राष्ट्रकार्य दृढ़तापूर्वक और समय पर करनेसे न चूकें, तो घरकी गायकी तरह स्वराज्यको अपने आप हमारे दरवाजे चले आना है। लेकिन अेक बड़ा भारी सवाल यह है कि यह स्वराज्य प्रजाका ही होगा या नहीं, और लोगोंके लिये वह पूरी तरह आशीर्वादरूप होगा या नहीं। किसान जितना अनाज दुनियाको देता है, उसकी पूरी कीमत उसे नहीं मिलती। बीचके लोग ही उसका बड़ा भारी हिस्सा खा जाते हैं। हमें मिलनेवाले स्वराज्यकी अगर यही हालत हो जाय, तो उसे अेक राष्ट्रीय आपत्ति ही समझना चाहिये। वैसा न होने पाये, अेक हाथसे जिसे प्राप्त किया उसे दूसरे हाथसे खो न दें, स्वराज्यका अर्थ गृह-कलह न हो, अिसीलिअे गांधीजीने चरखा-धर्म शुरू किया है और खादीका अितना आग्रह रखा है।

सहाराके मरुस्थलके वारेमें यह कहा जाता है कि कभी-कभी वहां आसमानसे मूसलाधार वारिश आ जाती है, लेकिन मरुभूमिकी रेत अितनी अधिक गरम होती है कि भूमि तक पहुंचनेसे पहले ही पानी भाप बनकर आकाशमें अुड़ जाता है। यदि हमने खादीकी दीक्षा न ली, तो गरीबोंकी दृष्टिसे हमारे स्वराज्यकी भी यही दशा होगी।

कुछ लोग कहते हैं कि बाहरसे खादी पहननेसे क्या होता है? अंदरसे जब हृदय-परिवर्तन हो जायगा, तभी वह सच्चा समझा जायगा। बात तो सही है। लेकिन यह किसने कहा कि बाह्य आचरणका हृदय पर असर

नहीं पड़ता ? आठों पहर शरीरके साथ संबंध रखनेवाली खादी अपना मूक सबक सिखाये बिना नहीं रहेगी। क्रियाकी शक्ति शब्दकी शक्तिकी अपेक्षा किसी भी हालतमें अधिक ही होती है।

चरखा-द्वादशीका यही माहात्म्य है। चरखा-द्वादशी यानी आम जनताके साथ हृदयकी श्रेकता। चरखा-द्वादशी यानी स्वराज्य-निष्ठा। चरखा-द्वादशी यानी निर्वैर स्थितिकी साधना। चरखा-द्वादशी यानी राष्ट्रीय संगठन।

चरखा-द्वादशी मनानेकी पद्धति कुछ अंश तक निश्चित हो जानी चाहिये। पिछले छः-सात सालमें अुसका स्वरूप बहुत-कुछ तो निश्चित हो ही गया है। अब तक हम अुस दिन 'हिन्द-स्वराज्य' का पारायण करते थे। अब अुसके साथ 'आत्मकथा' के दोनों भाग आठ दिनमें पढ़नेकी कञ्ची लोगों द्वारा सूचना की गयी है। अिस हीरक महोत्सवके लिये वह भले ही ठीक हो, लेकिन यह विचारने योग्य है कि हर साल 'आत्मकथा' का पारायण करना सरल होगा या नहीं। 'मंगल प्रभात'का वाचन शायद अधिक अपयुक्त होगा।

चरखा-द्वादशीके दिन हरिजनोंके साथ समरसताका हमें अनुभव करना चाहिये। सफाजीका जो कार्य अन्त्यज लोग करते हैं, अुसे आजके दिन स्वयं करके कुछ लोगोंने अिस वारेमें दिशा-सूचन किया है। जिन-जिन स्थानोंका हम अिस्तेमाल करते हैं, अुन सबको स्वयं साफ रखकर हमें सामाजिक स्वच्छताका पाठ सीखना चाहिये, और प्रचलित प्रथामें सुधार करने चाहिये। हर साल यदि हम अिस तरह आगे बढ़ते जायंगे, तो सारे राष्ट्रको बिना खर्चके और कम प्रयत्नसे अैसी अिक्षा मिलेगी, जो सैकड़ों वरससे नहीं मिली है।

लेकिन चरखा-द्वादशीका प्रधान कार्य तो अुसके नाममें ही सूचित किया गया है। अिंग्लैंडके प्राण जिस तरह अुसके जहाजों पर निर्भर हैं, अुसी तरह हमारी जनताके प्राण चरखे पर निर्भर हैं। यह चरखा यदि चलने लगे, तो हमारा भाग्य भी चलने लगेगा। अगर यह रुक जाय, तो हमारा भाग्य भी रुक जायगा। यह तो जरूरी है ही कि चरखा-द्वादशीके दिन सभी लोग चरखा कातें। लेकिन अुसके अलावा नये चरखे शुरू करना, जो कातना नहीं जानते अुन्हें कातना सिखाना, जो पूनियां बनाना नहीं जानते अुन्हें अिस दिन अुस शास्त्रकी दीक्षा देना, यह चरखा-द्वादशीका प्रधान कार्य है। चरखा चलानेकी जिन्हें आतुरता है, लेकिन चरखा खरीदनेकी हैसियत नहीं

है, जैसे लोगोंको चरखा दिलानेके लिये धनिकोंको चाहिये कि वे कुछ पैसा राष्ट्रीय संस्थाओंके सिपुर्द करें। चरखा चलता रहे, बिसके लिये चरखेको प्रवान पद देनेवाली संस्थाओं भी शुरू करनी चाहिये।

चरखेके महत्त्वको समझते हुअे भी और खादी पहनते हुअे भी बहुतसे लोगोंने अभी तक विदेशी कपड़ोंका मोह नहीं छोड़ा है। बिस तरह संचित पापको जला डालनेका काम भी बिस दिन प्रसन्नताके साथ किया जाना चाहिये। चरखा-द्वादशीके दिन विदेशी कपड़ोंकी जितनी होलियां कर सकें, अतने गरीबोंके आशीर्वाद मिलनेवाले हैं। चरखा-द्वादशीके दिन देशके भाभी-बहन आजीवन शुद्ध खादी ही पहननेका संकल्प करें, तो देशकी कितनी प्रगति होगी ! बिसमें आत्मोन्नति तो है ही।

हमें यह खयाल छोड़ देना चाहिये कि त्यौहारके मानी यह हैं कि हम बीमार पड़ने तक खुद मिष्टान्न और पक्वान्न खायें और दूसरोंको भी वैसा करनेका आग्रह करें। सोच-विचारकर देखनेसे मालूम हो जायगा कि बिसमें न सुख है, न सामर्थ्य-वृद्धि है, और न प्रसन्नता ही। यह असंस्कारी प्रथा हमें मिटा देनी चाहिये। पेटूपनका भला प्रचार कैसा ? बिसके विपरीत, अुस दिनसे अितना और अैसा आहार लेना शुरू करना चाहिये, बिससे आरोग्य तथा पुष्टि बढ़े, काम करनेका अुत्साह बढ़े तथा शरीर और मन पर ठीक-ठीक काबू रहे।

चरखा-द्वादशी यानी स्वदेशीका प्रचार। अुस दिन खेलोंमें खास कर देशीपन होना चाहिये। देशी संगीत, देशी चित्रकला, देशी भाषा आदिके पुनरुद्धारके लिये अुस दिन कितने ही नये-नये कार्यक्रम रखने चाहिये। चरखा-द्वादशी राष्ट्रीय अेकताका भी त्यौहार है। अुस दिन किसीका भी बहिष्कार न हो। सभी जातियोंके, सभी धर्मोंके तथा सभी पंथोंके स्त्री-पुरुष, बालक और वृद्ध अेकत्र होकर सामाजिक जीवनका अनुभव करें। चरखा-द्वादशी आत्मशुद्धिका त्यौहार है। जीवनमें जिन-जिन ब्यसनोंने घर कर लिया है, अुन्हें निकाल बाहर करनेका प्रयत्न बिस दिन विशेष रूपसे होना चाहिये। आये दिन बिस कार्यका प्रारंभ आसान नहीं होता, अुसे करनेकी शक्ति बिस दिनके माहात्म्यके कारण मनुष्यमें शायद आ भी जाय। चरखा-द्वादशी दीनजनोंके दुःखोंका निवारण करनेका त्यौहार है। अुस दिन यथाशक्ति संकट-निवारणमें अपना हिस्सा अदा करना चाहिये। चरखा-द्वादशी

स्वराज्यका त्योहार है। जिसलिजे अुस दिन जिस वातका अुग्र चिन्तन होना चाहिये कि परतंत्रताका अन्त किस तरह शीघ्रातिशीघ्र किया जाय।

२२-९-'२९

२. गांधी-सप्ताह

भादों वदी १२ और दूसरी अक्तूबरको गांधीजीका जन्मदिन मनाया जाता है। देशी तिथि और अंग्रेजी तारीखके बीच जब अन्तर रहता है, तब वह अेक सप्ताहके तौर पर मनाया जाता है। नित्रोंने जिस द्वादशीको 'मोहन-द्वादशी' नाम दिया; किन्तु गांधीजीको यह नाम पसन्द न आया। वे यह नहीं चाहते कि कोअी अुनकी जयन्ती मनाये। लेकिन किसी भी वहाने अगर लोग दरिद्र-नारायणकी सेवामें लग जाते हों, तो दरिद्र-नारायण-हितैपी गांधीजी अुस मौकेको हाथसे जाने नहीं देते। जिसलिजे गांधीजीने जिस दिनका नाम 'चरखा-द्वादशी' रखा है। गुजरातमें जिसे 'रेंटिया वारस' कहते हैं। कअी खादीभक्त जिस दिन चौबीस घंटे चरखा चलाते थे। लेकिन शरीर-स्वास्थ्यकी दृष्टिसे यह तपश्चर्या कठिन मालूम होनेसे लोग आठसे लेकर सोलह घंटों तक द्वादशी या दूसरी अक्तूबरका दिन कातनेमें विताते हैं। कुछ संस्थाओंके सदस्य सब मिलकर और वारी-वारीसे कातकर चौबीस घंटे अखंड चरखा चलाते हैं। खादी-विक्रीका काम तो जिस सप्ताहमें बड़े जोशके साथ चलता ही है। अुत्साही विद्यार्थी और मध्यम श्रेणीके स्त्री-पुरुष खादी लेकर घर-घर जाते हैं, अुसकी विक्री करते हैं, और साथ-साथ खादीका सन्देश भी सुनाते हैं।

जिनमें गांधीजीका सन्देश पूर्णतया मिल सकता है, अैसे दो ग्रंथोंका जिस दिन पारायण करनेवाले लोग भी बहुते हैं। ये दो ग्रंथ हैं—'हिन्द-स्वराज्य' और 'मंगल प्रभात'। जिन दोनों प्रबंधोंमें गांधीजीकी कही हुआ सभी बातें सूक्ष्म रूपसे आ जाती हैं। अुनका विवेचन जिस दिन भाषणों द्वारा किया जाता है। जिस सप्ताहमें कअी सवर्ण लोग हरिजन-सेवामें खास समय विताते हैं, और अस्पृश्यता-निवारणके लिजे अपने गांवमें धूम-फिरकर सफाअीका काम करनेवाले दलका भी संगठन करते हैं। हरिजन-सेवक-संघ जिस सप्ताहमें अपना वार्षिक चन्दा अिकट्टा करता है। राष्ट्रभाषा-प्रेमी लोग जिस सप्ताहमें हिन्दी-हिन्दुस्तानीके सन्देशको घर-घर पहुंचानेके लिजे सभाओं, संभाषणों, चर्चाओं और वार्तालापोंका कार्यक्रम रखते हैं।

मूक भावसे लोगोंको राष्ट्रीयताका सन्देश सुनानेकी विच्छा रखनेवाले लोग इस सप्ताहमें खास राष्ट्रीय ध्वजके रंगके खादीके फूल बड़े आदरके साथ लगाते हैं। गोसेवामें राष्ट्रका हित तथा धर्म-पालन समझनेवाले लोग इस सप्ताहमें गायके ही दूध और अुसीसे बननेवाली दही, घी आदि वस्तुओंका प्रयोग करनेका व्रत लेते हैं।

ये सभी बातें अच्छी हैं और वरसोंसे चली आयी हैं; इसलिअे इस सप्ताहके कार्यक्रममें राष्ट्रीय संकल्प-शक्ति प्रतिष्ठित हुअी है।

अिसके साथ ही आत्मशुद्धिकी दृष्टिसे दूसरा भी बहुत-कुछ किया जा सकता है। गीता, धम्मपद, बाअिवल, कुरान, ग्रंथसाहब, अवेस्ता गाथा आदि धर्मग्रंथोंसे चुने हुअे वचनोंका पठन तथा मनन अिस दिन किया जाय, तो सर्वधर्म-समभावकी भावनाको दृढ़ करनेमें बड़ी मदद मिलेगी। गांधी-सप्ताहके दिनोंमें भिन्न-भिन्न धर्मों, पंथों और संप्रदायोंके लोग अगर अिकटूठे होकर कोअी सामुदायिक कार्यक्रम रख सकें, तो अिससे अच्छी बात और क्या हो सकेगी?

मनुष्य स्वभाव ही अैसा है कि अुसे सत्यका तथा अुसकी प्राप्तिका दर्शन अेकांगी होता है। अिसलिअे दुनियामें पक्षभेद, मतभेद और पंथभेद तो रहेंगे ही। जो व्यक्ति निःस्पृह, निर्वैर और सत्यधर्मी है, वह अपने सत्य-दर्शनके साथ निष्ठावान तो रहेगा ही, लेकिन अिस निष्ठाके कारण ही दूसरोंके सत्य-दर्शनके प्रति वह अपना आदरभाव भी कायम रखेगा। अिस भावनाको बढ़ानेके लिअे गांधी-सप्ताहके दिनोंमें भिन्न-भिन्न पंथों, पक्षों, दर्शनों और साधनाओंके लोग अगर प्रेमादर-भावसे अेक-दूसरेसे मिलनेका सिलसिला शुरू करें, तो वह भी अिस छिन्न-भिन्न राष्ट्रकी अेक भारी सेवा समझी जायगी। लेकिन अिसमें तनिक भी कृत्रिमता या दंभ नहीं होना चाहिये। हार्दिक प्रेम और आदरसे ही यह काम हो सकेगा; और बहुतसे साधकोंका यह अनुभव भी है कि अुचित साधनों द्वारा हार्दिक प्रेमादरको बढ़ाना असंभव नहीं है।

गांधी-जयन्तीके दिनको वहनोंने खास तौर पर अपनाया है। स्त्री-जाति मोक्षकी, स्वतंत्रताकी, ब्रह्मचर्यकी और राष्ट्र-सेवाकी संपूर्ण अधिकारिणी है — अिस सिद्धान्तको गांधीजीने देशके हृदय पर अितनी दृढ़ताके साथ अंकित किया है कि गांधीयुग स्त्री-अुद्धारका युग कहा जाता है। अिस सप्ताहमें

शिक्षित और संस्कारी महिलायें अपनी अपढ़ बहनोंको कुछ ज्ञान देंगी और अनुसे नम्रताके साथ प्राचीन आर्य संस्कारोंकी शिक्षा ग्रहण करेंगी, तो स्त्री-जातिका अद्वार बड़ी आसानीसे हो सकेगा।

गांधीजीने अेक बहुत बड़ा और सूक्ष्म राष्ट्रकार्य खास करके स्त्री-जातिको ही सौंप दिया है। वह है मद्य-निषेध। मद्य-निषेध कोभी मामूली बात नहीं है। सत्त्वगुण और तमोगुणके बीच चलनेवाला वह अेक भीषण युद्ध है। मद्यपान जैसे नरकासुरका संहार करनेमें सत्यनिष्ठ सत्यभामा ही समर्थ हो सकती है।

अिस तरहके ठोस कार्यक्रमके साथ राष्ट्रीय संगीत, चित्रकला, अुत्सवका समारोह, गरीबोंको अन्नदान आदि रोचक कार्यक्रमोंको भी हमें भूलना न चाहिये। सात्त्विक नृत्यकला तथा नाट्य-अभिनय द्वारा हम भगवान्की अुपासना कर सकते हैं। अगर गांधी-सप्ताह द्वारा गरीबोंको अिस बातका पूरा यकीन नहीं हो जाता है कि प्रत्येक खादीधारी अूनका संकट-निवारक और हितकर्ता सेवक है, तो समझना होगा कि वह गांधी-सप्ताह निष्फल ही सावित हुआ। गांधीजीने सबसे श्रेष्ठ बात यह सिखायी है कि सत्ययुग हो या कलियुग, निष्काम सेवा ही अलौकिक शक्ति है। अपने राष्ट्रके गरीबोंकी सेवा करके ही हम स्वाधीनताकी शक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

आसुरी संपत्तिका आज जितना अुत्कर्ष और प्रभाव है, अुतना शायद तीनों युगोंमें आज तक कभी नहीं हुआ था। अब दैवी सम्पत्तिको भी अपना अुतना ही, बल्कि अुससे भी अधिक अुत्कर्ष और प्रभाव दिखलाना चाहिये।

अिस सप्ताहमें गांधीजीके राष्ट्रकार्य और सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवनसे संबंध रखनेवाले सिद्धान्तोंके प्रचारके लिये जितने सार्वजनिक कार्यक्रमोंका आयोजन हम कर सकेंगे, अुतना ही वह अुपयुक्त सावित होगा। आत्मदर्शनका अेक महत्त्वपूर्ण अुपाय अुसका श्रवण और कीर्तन भी है। महाराष्ट्रमें गणेश-अुत्सवमें अिस तरह ज्ञानचर्चा और विचार-प्रचारके सत्रका आयोजन किया जाता है, अुसी तरह अिस सप्ताहमें गांधीजीके विचारों, सिद्धान्तों और नीतिका श्रवण तथा कीर्तन सामूहिक रूपसे होना जरूरी है।

‘चरखा-द्वादशी’ हमारे लिये नव-संकल्प-पोषक और पूर्ण स्वातंत्र्य-प्रेरक बने!

चरखा-द्वादशी

भादों वदी १२

१ दिन

अिस त्यौहारका नाम 'मोहन-द्वादशी' रखा गया था; मगर गांधीजीने सिफारिश की कि अिसे 'चरखा-द्वादशी' कहा जाय ।

अिस दिन 'हिन्द-स्वराज्य' का पारायण करके, चरखेके संबंधमें गांधीजीके कुछ लेख पढ़कर, सारा दिन धुनने और कातनेमें लगाना चाहिये । जिनसे हो सके वे फलाहार करके रहें । अिस दिनके भुत्सवमें हरिजनोंको विशेष रूपसे शामिल कर लेना चाहिये ।

गांधीजीके धर्म-विचारोंको समझ लेनेके लिये 'मंगल प्रभात' का अध्ययन-विवेचन आज विशेष रूपसे किया जाय । अुनके धर्म-विषयक लेख दो भागोंमें प्रकाशित हुअे हैं । शिक्षक तथा प्रौढ़ विद्यार्थी अुन्हें आज अवश्य पढ़ें ।

[अुत्तर भारतमें यह दिन आश्विन कृष्ण १२ को पड़ता है ।]

२१

नवरात्रि

[कुवार सुदी १ से ९]

१. नवरात्रि

महिषासुर साम्राज्यवादी था । सूर्य, अिन्द्र, वायु, चन्द्र, यम, वरुण आदि सभी देवताओंके अधिकार और महकमे वह स्वयं ही चलाता था । स्वर्गके देवोंको अुसने भूलोककी प्रजा बना दिया था । किसीको भी अपने स्थान पर सुरक्षितताका अनुभव नहीं होता था । देव परमात्माके पास गये । परमात्माने सृष्टिकी जो व्यवस्था कर रखी थी, अुसे महिषासुरने कितना विगाड़ डाला है, अिस वारेमें अुन्होंने भगवान्को सब-कुछ कह सुनाया । सब हाल सुनकर विष्णु, ब्रह्मा, शंकर आदि सब देवोंके शरीरोंसे पुण्यप्रकोप जाग अुठा और अुससे अेक दैवी शक्ति-मूर्ति अुत्पन्न हुअी । सब

देवीने जिस सर्वदेवमयी शक्तिको अपने-अपने आयुर्वर्षोंकी शक्तिसे मंडित किया, और फिर जिस दैवी शक्ति और महिपासुरकी आसुरी शक्तिमें भीषण युद्ध ठन गया। कौन कह सकता है कि वह युद्ध कितने सालों तक चला होगा? लेकिन ऐसा माना जाता है कि कुवार महीनेकी शुक्ल प्रतिपदासे लेकर दशमी तक यह युद्ध चलता रहा, और उसके अनुसार दैवी शक्तिकी विजयका नवरात्रि-अुत्सव हम मनाते हैं।

दैवी शक्ति परमा विद्या है; ब्रह्मविद्या है; आत्मतत्त्व, विद्यातत्त्व और शिवतत्त्वका शुद्ध रूप है। यह शक्ति 'शठ प्रति शुभं करी' है; 'अहितेषु साध्वी' है; दुश्मनके लिये भी यह दया प्रकट करती है। दुष्ट लोगोंके बुरे स्वभावको शान्त करना ही जिस दैवी शक्तिका शील है। 'दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि! शीलम्।'

असुर लोग जिस शक्तिको न समझ सके। भक्त लोग जब दैवी शक्तिकी जय बोलने लगे, तो असुर परेशान होकर चिल्ला थुठे, "अरे यह क्या? अरे यह क्या?" आखिर असुरोंका राजा स्वयं ही लड़ने लगा। उसने अनेक तरहकी नीतियां आजमा कर देखीं, अनेक रूप धारण किये, लेकिन अन्तमें 'निःशेष-देवगण-शक्ति-समूहमूर्ति' की ही विजय हुयी। वायु अनुकूल बहने लगी; वर्षाने भूमिको सुजला सुफला कर दिया, दिशाओं प्रसन्न हुआं और भक्तगण देवीका मंगल गाने लगे। देवीने भक्तोंको आश्वासन दिया कि 'जिसी तरह फिर जब-जब आसुरी लोगोंके कारण आतंक फैल जायगा, तब-तब मैं स्वयं अवतार धारण करके दुष्टताका नाश करूंगी।'

यह महिपासुर प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें अपना साम्राज्य स्थापित करनेकी भरसक कोशिश करता है, और अमु-अस समय उसके सब स्वरूपोंको पहचानकर उसका समूल नाश करनेका कार्य दैवी शक्तिको करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्तःकरणकी जांच-परख करने पर यह जान सकता है कि उसके हृदयमें यह युद्ध कितने सालों तक चलता रहा है। नवरात्रिके दिनोंमें अपने हृदयमें दीपको अखंड रूपसे प्रज्वलित रखकर हमें दैवी शक्तिकी आराधना करनी चाहिये; क्योंकि जब यह दैवी शक्ति प्रसन्न होती है, तो वही हमें मोक्ष प्रदान करती है।

'सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।'

२. शारदाका अद्बोधन

हम नहीं जानते कि किस नवमीको सुरोंने शारदाका अद्बोधन किया था। लेकिन वह अत्यन्त शुभ, सुभग और कल्याणकारी मुहूर्त होना चाहिये। समृद्धिदायी वर्षके बाद जो शान्ति, जो निर्मलता, जो प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती है, उसीमें देवताओंको शारदाका दर्शन हुआ। घरतीने अभी हरा रंग नहीं छोड़ा है, परिपक्व धान्य सुवर्ण वर्णकी शोभा फैला रहे हैं—अैसे समय पर देवोंने शारदाका ध्यान किया। सज्जनोंके हृदयोंके समान स्वच्छ पानीमें विहार करनेवाले प्रसन्न कमल और आकाशमें अनन्त काव्यके फव्वारे छोड़नेवाले रसस्वामी चन्द्र, ये दोनों जब अक-दूसरेका ध्यान कर रहे थे, उसी समय देवोंने शारदाका आवाहन किया। शारदा आयी और उससे पृथ्वीके वदन-कमल पर सुहास्य फैला। शारदा आयी और वनश्रीका गौरव खिल अठा। शारदा आयी और घर-घर समृद्धि बढ़ गयी। शारदा आयी और वीणाका झंकार शुरू हुआ; संगीत और नृत्य ठौर-ठौर आरंभ हुआ।

शारदाका स्वरूप कैसा है? वाला? मुग्धा? प्रौढ़ा? या पुरंध्री? शारदा मंजुल-हासिनी वाला नहीं है, मनोमोहिनी मुग्धा नहीं है, विलास-चतुरा प्रौढ़ा नहीं है। वह तो नित्य-यौवना किन्तु स्तन्य-दायिनी माता है। वह हमारे साथ हंसती है, खेलती है; मगर वह हमारी सखी नहीं, माता है। हम उसके साथ बालोचित क्रीड़ा कर सकते हैं; लेकिन हम यह न भूलें कि हम माताके सम्मुख खड़े हैं। माता अर्थात् पवित्रता, वत्सलता, कारुण्य और विश्रब्धता। माता अर्थात् अमृत-निधान। 'न मातुः परदैवतम्।' यह वचन किसी उपदेश-प्रिय स्मृतिकारका गढ़ा हुआ नहीं है। यह तो किसी मातुःपुत्र धन्य बालककी अमृतवाणी है।

चराचर सृष्टिकी अकताका अनुभव करनेवाले हम आर्य-सन्तान अक शब्दमें अनेक अर्थोंको देखते हैं। शारदा यानी सरोवरमें विराजमान कमलोंकी शोभा। शारदा यानी शरत् पूर्णिमा और दीवालीकी कान्ति। शारदा यानी यौवन-सहज क्रीड़ा। शारदा यानी कृषिलक्ष्मी। शारदा यानी साहित्य-रिक्ता। शारदा यानी ब्रह्मविद्या, चिच्छक्ति। शारदा यानी विश्व-समाधि। यही यह हमारी माता है; हम उसके बालक हैं। कितनी धन्यता! कितनी स्पृहणीय पदवी! कितना अधिकार! और साथ ही कितनी बड़ी शक्ति!

शारदाके स्तन्यका स्पर्श जिन होठोंको हुआ हो, वे होठ अपवित्र वाणीका अुच्चारण नहीं करेंगे; निर्बलताके वचन मुंहसे नहीं निकालेंगे; द्वेषका सूचन तक न करेंगे; पापको नहीं संवारेंगे; पौरुषकी हत्या नहीं करेंगे, और मुग्धजनोंको धोखा नहीं देंगे।

शारदाके मंदिरमें सर्वोच्च कला हो, कंलाके नाम पर विचरनेवाली विलासिता नहीं। शारदाके भवनमें प्रेमका वायु-मंडल हो, केवल सौन्दर्यका मोहन नहीं। शारदाके अपवनमें प्राणोंका स्फुरण हो, निराशाका निःश्वास नहीं। शारदाके लताकुंजोंमें विश्व-प्रेमका संगीत हो, परस्पर अनुनयका मूर्खता-पूर्ण कल-कूजन नहीं। शारदाके विहारमें स्वतंत्राकी धीरोदात्त गति हो, अुद्देश्यहीन और स्वलनशील पदक्रम नहीं। शारदाके पीठमें ब्रह्मरसका प्रवाह हो, विषय-रसका अुन्माद नहीं।

माता शारदा, आशीर्वाद दे कि हमें तेरा स्मरण अखंड बना रहे। जब हम अधिकारी बनें, तो तू हमें अपने दर्शन दे। अगर हमारा ध्यान अविचल रहे, हमारी भक्ति अेकाग्र और अुत्कट बने, तो तू हमें अपनी दीक्षा दे। और जब हम तेरी अखंड सेवाके लायक बन जायं, तब अितनी भिक्षा दे कि केवल तेरी सेवाकी ही धुन हमेशा हम पर सवार रहे। तुझे कोटिशः प्रणाम हैं।

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः ॥

अक्तूबर, १९२४

सरस्वती-पूजा

कुवार सुदी ८ और ९

२ दिन

यह अुत्सव अष्टमी और नवमी दो दिन चले। पुस्तकालयके ग्रंथोंको झाड़-पोंछकर तरतीवसे जमाने और संस्थाकी तथा अपनी निजी कित्तानें ढीली पड़ गयी हों, तो अुनकी जिल्दें ठीक करने आदि कामोंमें अेक दिन लगाया जाय। शारदा-मंदिर (पुस्तकालय) को ठीक ढंगसे जमानेके बाद अुसे सजाया जाय और वहां शारदा माताकी पूजाके तौर पर संगीतका अेक जलसा रखा जाय।

दूसरा दिन खास करके चित्रकलाके लिये रखा जाय। जिस दिन कागजकी या दूसरी चीजोंकी तरह-तरहकी वस्तुओं बनायी जायं, चीक पूरे जायं, और हो सके तो धार्मिक या दूसरी अपयुक्त पुस्तकोंका दान किया जाय।

२२

दशहरा

[कुवार सुदी १०]

१. विजयादशमी

सीमोल्लंघन-पर्व

आगरेमें मुगल-कालकी जो अमारतें हैं, उनमें अेक विशेषता यह है कि उनके निचले खंड लाल पत्थरके हैं और अपूरवाले सफेद पत्थरके। लाल पत्थरका काम जहांगीरके समयका है, और सफेद पत्थरका शाहजहांके समयका। हर अमारतमें जिस तरहका कालक्रमका अितिहास वर्णभेदसे मूर्तिमन्त दिखायी देता है। किसी भी पुराने बड़े शहरमें पुरानी वस्ती और नयी वस्ती अेक-दूसरेसे सटी हुयी नजर आती है, या मोहन -जो- दड़ोकी तरह वस्तियोंकी तहों पर तहें जमी हुयी दिखायी देती हैं। भाषाकी कहावतोंमें भी भिन्न-भिन्न समयका अितिहास समाया हुआ होता है। हम घरमें फर्श लगानेके लिये जो पत्थर जड़ते हैं, ये अेक पत्थर अैसे दिखायी देते हैं; मगर उनमें भी प्रत्येक स्तरमें कयी वरसोंका तथा सदियोंका अन्तर होता है। नदीके किनारे हर साल जो कीचड़की तहों पर तहें जम जाती हैं, अन्तमें अुन्हींसे धरतीकी भट्ठीमें अेक पत्थर बन जाता है।

दशहरेका त्यौहार भी अेक ही त्यौहार होते हुये भिन्न-भिन्न कालके भिन्न-भिन्न स्तरोंका बना हुआ है। दशहरेके त्यौहारके साथ-साथ असंख्य युगोंके असंख्य प्रकारके आर्य-पुरुषार्थोंकी विजय जुड़ी हुयी है।

मनुष्य-मनुष्यका संघर्ष जितने महत्त्वका है, अुतने ही या अुससे भी अधिक महत्त्वका संघर्ष मनुष्य और प्रकृतिके बीचका है। मानवकी प्रकृति पर जो सबसे बड़ी विजय मिली, वह है खेती। जिस दिन जुती हुयी जमीनमें नौ प्रकारका अनाज वोकर, कृत्रिम जलका सिंचन करके अुसमें से

अपनी आजीविका तथा भविष्यके संग्रहके लिये पर्याप्त अनाज मनुष्य प्राप्त कर सका, वह दिन मनुष्यके लिये सबसे बड़ी विजयका था; क्योंकि अुसके बाद ही स्थिरता-मूलक संस्कृतिका जन्म हुआ। अुस दिनकी स्मृतिको हमेशा ताजा रखना कृपि-परायण आर्य लोगोंका प्रथम कर्तव्य था।

बीसवीं सदी भौतिक तथा यांत्रिक आविष्कारोंकी सदी समझी जाती है, और वह अुचित भी है। लेकिन मानव-जातिके अस्तित्व और संस्कृतिके लिये जो महान् आविष्कार कारणरूप हुअे हैं, वे सब आद्ययुगमें ही हुअे हैं। जमीनको जोतनेकी कला, सूत कातनेकी कला, आग जलानेकी कला और मिट्टीसे पक्का घड़ा बनानेकी कला—ये चार कलायें मानो मानवीय संस्कृतिके आधार-स्तंभ हैं। अिन चारों कलाओंका अुपयोग करके विजया-दशमीके दिन हमने कृपि-महोत्सवका निर्माण किया है।

अपने वचनमें देखे हुअे पहले नवरात्रिके अुत्सवकी याद मुझे आज भी बनी हुअी है। मेरे भाभी प्रतिपदाके दिन शहरके बाहर जाकर खेतोंसे अच्छी-से-अच्छी साफ काली मिट्टी ले आये। मैं स्वयं नौ अनाजोंकी फेहरिस्त बनाकर अुनमें से जो अनाज हमारे घरमें न मिले अुन्हें अपने नानाके यहांसे ले आया। मेरी दादीने छोटीसी धुनकीसे रबी धुनकर अुसकी १६ अंगुल लंबी बत्ती बनायी। मेरी मांने सूत कातकर (चरखे पर नहीं बल्कि लोटे पर) अुस सूतकी अेक हजार छोटी-छोटी बत्तियां बनायीं। मैं बाजारने नारियल तथा पंचरत्न ले आया। पंचरत्नमें सोना, मोती, हीरा, प्रवाल और नीलम या माणिक थे। अिन पंचरत्नोंके टुकड़े बहुत ही छोटे थे। मेरी भतीजी बगीचेसे फूल और तरह-तरहके पत्ते लायी। पिताजीने स्नान करके देवगृहमें गायके गोबरसे लिपी हुअी भूमि पर अुस काली मिट्टीको फैलाकर अेक सुन्दर चौक बनाया। यह हुआ हमारा खेत। अुसके बीचोंबीच अेक लोटा रख दिया। अुस लोटेमें पानी भरा हुआ था। अुसके अन्दर अेक सावुत चुपारी, दक्षिणा, पंचरत्न आदि चीजें डाली गयी थीं। अूपर आमके पेड़की अेक पांच पत्तोंवाली छोटीमी टहनी रखकर अुस पर अेक नारियल रखा था। सुन्दर आकारके लोटेमें से बाहर निकले हुअे आमके हरे-हरे पांच पत्ते और अुन पर शिखरके समान दिखायी देनेवाले नारियलका आकार देखकर हम ब्रेहद खुश हुअे। पूजाकी तैयारी हुअी, अिसलिये हमारे अुस छोटेसे खेतमें नौ प्रकारके अनाज बोये गये। अुन पर पानी छिड़का गया। बीचमें रखे हुअे घट (लोटे)की

चन्दन, केसर और कुंकुमसे पूजा की गयी। यथाविधि सांग पोडशोपचार पूजा हुयी। ९६ अंगुल लंबी वत्तीवाला दीपक जलाया गया। फिर आरती हुयी और घरमें सब लोग कहने लगे कि आज हमारे यहां नवरात्रिकी घट-स्थापना हुयी है। उस नन्दादीपको नौ दिन तक अखंड जलता रखना था। उसका वीचमें बुझ जाना महा अशुभ माना जाता था। दूसरे दिन पूजामें अेकके बदले दो मालायें लटकायी गयीं; तीसरे दिन तीन; चौथे दिन चार—अिस तरह मालाअें बढ़ती गयीं। अपूर मालायें बढ़ीं और नीचेके खेतमें अंकुर फूट निकले। कभी अंकुर तो अपने दलोंके छाते बनाकर ही बाहर निकल आये थे। हमें हर रोज खानेको मिष्टान्न मिलता; लेकिन पिताजी सिर्फ अेक ही समय भोजन करते, और सारा दिन पीताम्बर पहनकर उस नन्दादीपकी देखभाल करते। वत्ती न टूटे, तेल कम न पड़े, और दीया बुझने न पाये—अिस बातकी बड़ी फिकर रखनी पड़ती थी। रातको भी दो चार बार अुठकर तेल डालना, अपूर जमी हुयी कालिखको बड़ी सावधानीसे झटकना, आदि काम अुनको करने पड़ते थे।

जब नौ अनाजोंके अंकुर पूरी तरह फूट निकले, उस समयकी खेतकी शोभा अवर्णनीय थी। कुछ अनाज जल्दी अुगे, कुछ देरीसे। मैं यह अच्छी तरह याद रखता कि कौनसे अनाज पहले अुगे हैं, और कौनसे बादमें। सभी अंकुर विलकुल सफेद थे; क्योंकि नवरात्रिका यह 'खेत' घरके अन्दर था, और सूर्यके प्रकाशके बिना हरा रंग तो आ ही नहीं सकता था। फिर पिताजी खेत पर हल्दीका पानी छिड़कने लगे। मैंने पूछा—“यह किसलिअे?” जवाब मिला—“अिसलिअे कि अुगा हुआ अनाज सोनेके समान दिखायी दे!”

सातवें दिन सरस्वतीका आवाहन हुआ। घरमें जितनी धार्मिक और संस्कृतकी किताबें और पोथियां थीं, अुन सबको अेक रंगीन पाट पर रखकर हमने अुनकी पूजा की। हमें पढ़ाअीसे छुट्टी मिल गयी। अिसे अनव्याय कहते हैं। सरस्वतीका आवाहन, पूजन और विसर्जन तीन दिनमें हुआ। नवें दिन 'खंड' पूजन हुआ। 'खंड' पूजन यानी शस्त्रास्त्रोंका पूजन। अिस दिन हाथी-घोड़ों जैसे युद्धोपयोगी जानवरोंकी भी पूजा की जाती है। अिस तरह नवरात्रि पूरी हुयी और दसवें दिन दशहरा आया। दशहरेके दिन होम, बलिदान और सीमोल्लंघन, ये तीन प्रमुख विधियां थीं। वह विचारभका भी दिन था।

विजयादशमीके त्यौहारमें चातुर्वर्ण्य अंकन हुआ दीखता है। ब्राह्मणोंके सरस्वती-पूजन तथा विद्यारंभ; क्षत्रियोंके शस्त्र-पूजन, अश्व-पूजन तथा मीमो-ल्लंघन और वैश्योंकी खेती, ये तीनों बातें जिस त्यौहारमें अंकनित होती हैं। और जहां अितनी बड़ी प्रवृत्ति चलती हो, वहां शूद्रोंकी परिचर्या तो समाविष्ट है ही। जब देहाती लोग नवरात्रिके अनाजकी सोने-जैसी पीली-पीली कोपलें तोड़कर अपनी पगड़ियोंमें खोंसते हैं और बढ़िया पोशाक पहनकर गाते-बजाते सीमोल्लंघन करने जाते हैं, तब असा दृश्य आंखोंके सामने आ खड़ा होता है मानो सारे देशका पौरुष अपना पराक्रम दिखलानेके लिये बाहर निकल पड़ा हो।

दशहरेका अुत्सव जिस तरह कृपि-प्रधान है, अुसी तरह वह क्षात्र-महोत्सव भी है। जिन दिनों भाड़ेके सिपाहियोंको मुर्गेकी तरह लड़ानेका तरीका प्रचलित नहीं था, अुन दिनों क्षात्रतेज तथा राजतेज किसानोंमें ही परवरिश पाते थे। किसान यानी क्षेत्रपति—क्षत्रिय! जो सालभर भूमि माताकी सेवा करता है, वही मौका आने पर अुसकी रक्षाके लिये निकल पड़ेगा। नदियों, नालों, पहाड़ियों और पहाड़ोंके साथ जिसका रात-दिनका सम्बन्ध रहता है, घोड़ा, बैल जैसे जानवरोंको जो अनुशासन सिखा सकता है, और सारे समाजको जो खाना खिलाता है, अुसमें सेनापति और राजत्वके सब गुण आ जायं, तो आश्चर्यकी क्या बात है? राजा ही किसान है, और किसान ही राजा है।

अैसी हालतमें कृपिका त्यौहार क्षात्र-त्यौहार बन गया। जिसमें पूरी तरह अैतिहासिक औचित्य है। क्षत्रियोंका प्रधान कर्तव्य तो स्वदेश-रक्षा ही है। परन्तु बहुत बार शत्रुके स्वदेशमें घुसकर देशको बरबाद करनेसे पहले ही अुसके दुष्ट हेतुको पहचानकर स्वयं सीमोल्लंघन करना—अपनी नीमा यानी सरहदको लांघना—और खुद शत्रुके मुल्कमें लड़ाई ले जाना होशियारीकी और वीरोचित बात मानी जाती थी।

थोड़ा सोचने पर मालूम होगा कि जिस सीमोल्लंघनके पीछे साम्राज्य-वृत्ति है। अपनी सरहद लांघकर दूसरे देश पर अधिकार जमाना और वहांसे धन-धान्य लूट लाना, जिसमें आत्मरक्षाकी अपेक्षा महत्त्वाकांक्षा ही अंश अधिक है। जिस तरह लूटकर लाया हुआ सोना अगर पराक्रमी पुरुष अपने ही पास रखे, तो वर्तमान युगके अन्न-प्रकोप (Militarism) के साथ

विट्-प्रकोप (Industrialism) के मिल जानेकी भयानक स्थिति पैदा होगी। * जहां प्रभुत्व और धनिकत्व अेकत्र हो जाते हैं, वहां शैतानको अलग न्योता देनेकी जरूरत नहीं रहती। अिसीलिअे दशहरेके दिन लूटकर लाये हुअे सोनेको सब रिश्तेदारोंमें वितरित करना अुस दिनकी अेक महत्त्वकी धार्मिक विधि तय की गयी है।

सुवर्ण-वितरणकी अिस प्रथाका संबंअ रघुवंशके राजा रघुके साथ जोड़ा गया है।

रघुराजाने विश्वजित् यज्ञ किया। समुद्रवलयंकित पृथ्वीको जीतनेके वाद सर्वस्वका दान कर डालना विश्वजित् यज्ञ कहलाता है। जव रघुराजाने अिस तरहका विश्वजित् यज्ञ पूरा किया, तव अुनके पास वरतन्तु ऋषिका विद्वान और तेजस्वी शिष्य कौत्स जा पहुंचा। कौत्सने गुरुसे चौदहों विद्याओं ग्रहण की थीं; अुसकी दक्षिणाके तौर पर चौदह करोड़ सुवर्ण मुद्राओं गुरुको प्रदान करनेकी अुसकी अिच्छा थी। लेकिन सर्वस्वका दान करनेके वाद वचे हुअे मिट्टीके वरतनोंसे ही राजाको आदरातिथ्य करते देख कौत्सने राजासे कुछ भी न मांगनेका निश्चय किया। राजाको आशीर्वाद देकर वह जाने

* 'क्षत्र-प्रकोप' तथा 'विट्-प्रकोप' अिन दो नये नामोंकी सार्थकता मुझे सिद्ध करनी चाहिये। चातुर्वर्ण्यका सन्तुलन या सामंजस्य तो समाज-शरीरकी स्वाभाविक स्थिति है। समाजके लिअे अिन चारों वर्णोंकी आवश्यकताको स्वीकार कर लिया गया है। जिस तरह व्यक्तिके शरीरमें वात, पित्त और कफ ये तीन धातु अुचित अनुपातमें रहते हैं तभी शरीर नीरोग रहता है, अुसी तरह समाज-शरीरमें चातुर्वर्ण्य अुचित अनुपातमें होना चाहिये। शरीरमें पित्तकी मात्रा वढ़ जाती है, तो अुसे पित्त-प्रकोप कहते हैं। पित्त-प्रकोपसे सारा शरीर खराब हो जाता है। यही वात वात-प्रकोप और कफ-प्रकोपके विषयमें है। समाज-शरीरमें क्षात्रवर्गका अतिरेक या प्रावल्य हो जाय, तो अुस स्थितिको क्षत्र-प्रकोप कहना ही अुचित है। यही वात विट्-प्रकोप या वैश्य-प्रकोपकी भी है। शरीरका नाश होनेका समय आने पर तीनों धातुओंका प्रकोप हो जाता है। अिसे त्रिदोष कहते हैं। युरोपमें आज क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अिन तीनों वर्णोंका अेकसाथ प्रकोप हुआ है, अैसा साफ-साफ नजर आ रहा है; और वहांके ब्राह्मण अिन तीनों वर्णोंके किकर वन गये हैं।

लगा। रघुने वड़े आग्रहके साथ अुसे रोक रखा, और दूसरे दिन स्वर्ग पर घावा बोलकर अिन्द्र और कुबेरके पाससे धन लानेका प्रवन्व किया। रघुराजा चक्रवर्ती था। अतः अिन्द्र और कुबेर भी अुसके माण्डलिक थे। ब्राह्मणको दान देनेके लिये अुनसे कर लेनेमें संकोच किस बातका था? रघुराजाकी चढ़ाजीकी बात सुनकर देवता लोग डर गये। अुन्होंने शमीके अेक पेड़ पर सुवर्ण मुद्राओंकी वृष्टि की। रघुराजाने सुवह थुठकर देखा, तो जितना चाहिये अुतना सुवर्ण आ गया था। अुसने कौत्सको वह ढेर दे दिया। कौत्स चौदह करोड़से ज्यादा मुद्रा लेता न था, और राजा दानमें दिया हुआ धन वापस लेनेको तैयार न था। आखिर अुसने वह धन नगरवासियोंको लुटा दिया। वह दिन आश्विन शुक्ल दशमीका था; अिसीलिअे आज भी दशहरके दिन शमीका पूजन करके लोग अुसके पत्ते सोना समझकर लूटते हैं और अेक-दूसरेको देते हैं। कुछ लोग तो शमीके नीचेकी मिट्टीको भी सुवर्ण समझकर ले जाते हैं।

शमीका पूजन प्राचीन है। अैसा माना जाता है कि शमीके पेड़में ऋषियोंका तपस्तेज है। पुराने जमानेमें शमीकी लकड़ियोंको आपसमें घिसकर लोग आग सुलगाते थे। शमीकी समिया आहुतिके काम आती है। पाण्डव जब अज्ञात-वास करने गये थे, तब अुन्होंने अपने हथियार शमीके अेक पेड़ पर छिपा रखे थे, और वहां कोअी जाने न पाये अिसलिअे अुन्होंने अुस पेड़के तनेसे अेक नर-कंकाल बांध रखा था।

रामचन्द्रजीने रावण पर जो चढ़ाजी की, सो भी विजयादशमीके मुहूर्त पर। आर्य लोगोंने — हिन्दुओंने — अनेक वार विजयादशमीके मुहूर्त पर ही घावे बोलकर विजय प्राप्त की है। अिससे विजयादशमी राष्ट्रीय विजयका मुहूर्त या त्यौहार बन गया है। मराठे और राजपूत अिसी मुहूर्त पर स्वराज्यकी सीमाको बढ़ानेके हेतु शत्रु-प्रदेश पर आक्रमण करते थे। शस्त्रास्त्रोंसे सजकर और हाथी-घोड़ों पर चढ़कर नगरके बाहर जुलूस ले जानेका रिवाज आज भी है। वहां शमीका और अपराजिता देवीका पूजन सीमोल्लंघनका प्रमुख भाग होता है।*

* महिपासुर नामके अेक प्रबल दैत्यने बड़ा आतंक फैलाया था। जगदंबाने नौ दिन तक अुससे युद्ध करके विजयादशमीके दिन अुसका वध किया था। अिस आशयकी अेक कहानी पुराणोंमें मिलती है। अिसीलिअे अपराजिताका पूजन करने और महिप यानी भैसेकी बलि चढ़ानेका रिवाज पड़ा है।

असा माना जाता है कि शमी और अश्मन्तक वृक्षमें भी शत्रुका नाश करनेका गुण है। कचनारके पेड़को अश्मन्तक कहते हैं। जहां शमी नहीं मिलती, वहां कचनारके पेड़की पूजा होती है। कचनारके पत्तेका आकार सोनेके सिक्केकी तरह गोल होता है, और जुड़े हुए जवाबी कांडकी तरह उसके पत्ते मुड़े हुए होते हैं, जिससे वे ज्यादा खूबसूरत दिखायी देते हैं।

दशहरेके दिन चौमासा लगभग खतम हो जाता है। शिवाजीके किसान-सैनिक दशहरे तक खेतीकी चिन्तासे मुक्त हो जाते थे। कुछ काम बाकी न रहता था। सिर्फ फसल काटना ही बाकी रह जाता था। पर उसे तो घरकी औरतों, बच्चे और बूढ़े लोग भी कर सकते थे। जिससे सेना अिकट्ठी करके स्वराज्यकी सीमाको बढ़ानेके लिये सबसे नजदीक मुहूर्त दशहरेका ही होता था। इसी कारण महाराष्ट्रमें दशहरेका त्यौहार बहुत ही लोकप्रिय था और आज भी है।

हम यह देख सके हैं कि विजयादशमीके एक त्यौहार पर अनेक संस्कारों, अनेक संस्करणों और अनेक विश्वासोंकी तहें चढ़ी हुयी हैं। कृषि-महोत्सव क्षात्र-महोत्सव बन गया; सीमोल्लंघनका परिणाम दिग्विजय तक पहुंचा; स्व-संरक्षणके साथ सामाजिक प्रेम और धनका विभाग करनेकी प्रवृत्तिका सम्बन्ध दशहरेके साथ जुड़ा। लेकिन एक ऐतिहासिक घटनाको दशहरेके साथ जोड़ना अभी हम भूल गये हैं, जो कि जिस जमानेमें अधिक महत्त्वपूर्ण है। “दिग्विजयसे धर्मजय श्रेष्ठ है। बाह्य शत्रुका वध करनेकी अपेक्षा हृदयस्थ षड्रिपुओंको मारनेमें ही महान् पुरुषार्थ है। नवधान्यकी फसल काटनेकी वनिस्वत पुण्यकी फसल काटना अधिक चिरस्थायी होता है।” सारे संसारको असा अपुदेश देनेवाले मारजित्, लोकजित् भगवान् बुद्धका जन्म विजयादशमीके शुभ मुहूर्त पर ही हुआ था। विजयादशमीके दिन बुद्ध भगवान्का जन्म हुआ और वैशाखी पूर्णिमाके दिन अन्हें चार शान्तिदायी आर्यतत्त्वोंका और अष्टांगिक मार्गका बोध हुआ, यह बात हम भूल ही गये हैं। विष्णुका वर्तमान अवतार बुद्ध अवतार ही है। जिसलिये विजयादशमीका त्यौहार हमें भगवान् बुद्धके मार-विजयका स्मरण करके मनाना चाहिये।

२. क्या यही दशहरा है ?

‘शं नो अस्तु द्विपदे, शं चतुष्पदे।’ — वेदवचन

द्विपदों (दो पांववालों) का कल्याण हो; चतुष्पदों (चौपायों) का भी कल्याण हो !

दो पांव और चार पांववाले अपने बालकोंसे भूमि-माताने कहा — “मेरे बच्चो ! मेरी घास और अनाज तुम्हारे लिये ही है। वही मेरा दूध है। जो पियेगा वह पुष्ट होगा।”

दो पांववाले मनुष्य बड़े भाजी और चार पांववाले पशु छोटे भाजी थे। बड़े छोटोंकी देखभाल करते; छोटे बड़ोंकी आज्ञामें रहते। दोनोंने जमीन पर मेहनत की, और सब जगह मलयज-शीतला और सुजला धरती सुफला और शस्य-श्यामला हो गयी; सर्वत्र आनन्द छा गया।

मनुष्य बोला — “बलो, हम बंटवारा करके अुत्सव मनायें।”

पशुओंने कहा — “ठीक तो है, अुत्सव मनाना ही चाहिये !”

मनुष्यने अनाज लिया और पशु घास चरने लगे। अुत्सव शुरू हो गया। लेकिन जीभके लालचमें पड़कर धर्मदुद्धि-भ्रष्ट हुअे मनुष्यको अचानक कुछ सूझा। मनुष्यने पशुको खींचा और अुसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुअे कहा — “अुत्सवका यह भी अेक आवश्यक भाग है।”

धरती कांप अुठी; आकाश रोने लगा; और दिशाओं बोल अुठीं — “क्या यही अुत्सव है ?”

दशहरा

कुवार सुदी १०

१ दिन

यह त्यौहार वीरताका है। कुस्ती, गजग्राह (टग ऑफ वॉर), पटा आदि मर्दाने खेल खेलनेका रिवाज जारी रखने लायक है। दशहरेके दिन शहरसे बाहर जाकर वहां सामाजिक अुत्सव मनाना चाहिये। अपनी कमाजीमें से जितने पैसों बचाये जा सकें, अुतने बचाकर दशहरेके दिन वे किसी अच्छे कामके लिये दानमें दिये जायें।

सालभरमें कोअी महत्कृत्य करनेका संकल्प दशहरेके दिन किया जाय। यह भीमोल्लंघनका दिन है। जिस दिन अेकाध कदम आगे बढ़ना चाहिये।

जी. का-८

दशहरेके दिन सिर्फ वाद्योंका जलसा रखा जाय। यदि विद्यार्थियोंने कवायद सीखी हो, तो अिस दिन अुसका भी प्रदर्शन किया जा सकता है।

यह नहीं भूलना चाहिये कि दशहरेका प्रारंभ मातृ-पूजासे हुआ है। देवीपूजाका रहस्य अिस दिन समझाया जाना चाहिये।

२३

सार्वभौम धर्म

[कुवार सुदी १५]

ग्रीष्मकी असह्य गरमीके बाद जब वृष्टि होती है, तब सब जगह कीचड़ ही कीचड़ फैल जाता है। आखिर जब सृष्टि तृप्त हो जाती है, तभी अुस कीचड़को दबाकर या सुखाकर जमीन और जलाशयको अनाविल (निर्मल) करनेकी ओर अुसका ध्यान जाता है।

महान् आपत्तिके साथ जूझते हुअे मनुष्यको धर्माधर्मका ज्यादा खयाल नहीं रहता। अिस स्थितिको समझकर ही बुद्धिमान लोगोंने यह पुरानी सिखावन दी है कि किसी भी धर्मका आश्रय लेकर काम चलाया जाय, और आपत्तिसे बच जानेके बाद 'समर्थो धर्ममाचरेत्।'

स्वतंत्र, स्वायत्त होनेके बाद सूझनेवाला शान्तिका, समृद्धिका और निर्मल प्रसन्नताका अेक सार्वभौम धर्म होता है, वही शरद् है।

अिसी धर्मको जिसने अपना हमेशाका निरपवाद धर्म बनाया, वही धर्मराट् हो गया। ग्रीष्मकी गरमीसे और वर्षाके पानीसे जो अच्छी तरह बच निकले और शरद्की प्रसन्नताको जिन्होंने पा लिया, वे ही जिये, वे ही जीते।

अिसीलिअे अृषियोंने प्रार्थना की—

'अजिताः स्याम शरदः शतम्।'

शरद् पूर्णिमा

कुवार सुदी १५

१ दिन

ब्रह्मांड पुराणमें कहा गया है कि शरद् पूनमके दिन शहरके रास्तोंको साफ करके अन्हें सुगन्धित जलसे सम्मार्जित किया जाय; स्थान-स्थान पर फूल विछाये जायं और चंदोवे लगाये जायं । शरद् पूनम प्रकृतिके काव्यका अनुभव करनेका दिन है । इस दिन लक्ष्मी सर्वत्र घूमती है । लक्ष्मीके मानी धन-दौलत नहीं, बल्कि प्रकृतिकी शोभा, तारोंमें विराजमान चन्द्रकी शोभा, और अुसकी चांदनीका हृदय पर होनेवाला जादुअी असर । शरद् पूनम कलाका दिन है । इस दिन सुन्दर प्रदर्शनियोंका आयोजन किया जाय; तरह-तरहके काव्योंकी रचना की जाय ।

नया धान आया हो, तो अुसका चिअुड़ा बनाकर नारियलके साथ खाया जाय । नारियल अर्थात् प्रकृतिका दूध न मिले, तो गोमाताका दूध तो है ही ।

समाज-सेवकोंको चाहिये कि वे आज लोगोंको राजा नल और युधिष्ठिरकी कहानियां सुनाकर द्यूत-क्रीड़ाका निषेध करें ।

छोटे-बड़े सब मिलकर चांदनीमें कबड्डी खेलें । स्त्रियां और लड़कियां गरबा (रास) खेलें । वृद्ध अपने जीवनके बोधरसिक प्रसंगोंका वर्णन करें ।

हो सके तो रातको दो बजे अुठकर मध्यरात्रिकी नीरव शान्तिमें तारोंका दिव्य संगीत सुना जाय । चौमासेके बादलभरे आकाशके बाद यह सबसे पहली निरभ्र, निर्मल पूर्णमासी है; और ज्योतिःशास्त्रज्ञोंके कथनानुसार इस दिन चन्द्र पृथ्वीके अधिक-से-अधिक नजदीक आ जाता है ।

वैदिक कर्मकाण्ड परसे जिनका विश्वास अुठ गया है, अैसे लोग भी वैदिक ब्राह्मणोंको बुलाकर अुनसे मंत्रजागर (पारायण) करावें । वेदमंत्रोंका शुद्ध, सस्वर अुच्चारण तो आजकल सुननेको भी नहीं मिलता । पुरानी संस्कृतिका यह अवशेष निश्चित रूपसे बनाये रखने लायक है । जिन पूर्णिमाको गायनका जलसा तो होना ही चाहिये ।

२४

धन-तेरस

कुवार वदी १३

१ दिन

यह त्यौहार दीवालीकी तैयारीका है। लोककथाके अनुसार यह युवकोंकी अपमृत्युसे अुत्पन्न दयाका त्यौहार है। रातको कागज या पत्तोंकी छोटी-छोटी नावें बनाकर और अुनमें अेक-अेक दीया जलाकर अुन नावोंको नदीमें तैरनेके लिये छोड़ देना अिस दिनका प्रमुख आनन्द है। जहां नदी न हो, वहां तालाबमें भी दीपक छोड़े जा सकते हैं। हां, शान्त पानीको कुछ हिलाना होगा। युवकोंकी असमय-मृत्युकी संख्या समाजमें बढ़ती जा रही है। अिसके कारणोंकी खोज करनेकी योजनाके वारेमें समाजके नेता आज विशेष रूपसे चर्चा करें, और युवकोंको जो शिक्षा देनी हो वह दें।

गायोंके समूह (रेवड़) की पूजा भी अिस दिनके लिये कही गयी है; अिस विषयमें जो संभव हो किया जाय।

[यह तिथि अुत्तर भारतमें कार्तिक कृष्ण १३ होती है।]

२५

नरक-चतुर्दशी

कुवार वदी १४

१ दिन

अिस दिन कतवारखानोंसे कचरा निकालकर अुसे खादके तौर पर खेतमें डाला जाय या किसी गढ़ेमें गाड़ दिया जाय। अुसके बाद तेलसे मालिश करके गरम पानीसे नहाया जाय। पहलेसे तैयारी करके सफेदी लगाये हुअे मकान पर चूना-हल्दी मिलाकर या किसी दूसरे रंगकी वारीक लकीरें खींची जायं। दीवारों पर तस्वीरें बनायी जायं।

नरकासुरकी कथा पढ़ी जाय।

[यह तिथि अुत्तर भारतमें कार्तिक कृष्ण १४ होती है।]

११६

दीवाली

[कुवार बदी ३०]

१. बलिका राज्य

बलिराजाने दानका व्रत लिया था। कोची याचक जो वस्तु मांगता, राजा उसे वह वस्तु दे देता। बलिके राज्यमें जीव-हिंसा, मद्यपान, अगम्या-गमन, चोरी और विश्वामघात—अिन पांच महापापोंका कहीं नाम तक न था। सर्वत्र दया, दान और अुत्सवका बोलवाला रहता था। अन्तमें बलिराजाने वामन-मूर्ति श्रीविष्णुको अपना सर्वस्व अर्पण किया। बलिकी अिस दान-वीरताके स्मारकके रूपमें श्रीविष्णुने बलिके नामसे तीन दिन-रातका त्यौहार निश्चित किया। यही हमारी दीवाली है। बलिके राज्यमें आलस्य, मलिनता, रोग और दारिद्र्यका अभाव था। बलिके राज्यमें या लोगोंके हृदयमें अंधकार न था। सभी प्रेमसे रहते थे। द्वेष, मत्सर या असूयाका कारण ही न था। बलिका राज्य जन-साधारणके लिये अितना लोकोपकारी था कि अुसके कारण प्रत्यक्ष श्रीविष्णु अुसके द्वारपाल बनकर रहे। अिसी कारण यह निश्चित किया गया कि बलिराजाके स्मारक-स्वरूप अिस त्यौहारमें पहले लोग कूड़ा-कचरा, कीचड़ और गंदगीका नाश करें; जहां जहां अंधेरा हो, वहां दीपावलीकी शोभा करें; लोगोंके प्राण लेनेवाले यमराजका तर्पण करें; पूर्वजोंका स्मरण करें; मिष्टान्नका भक्षण करें, और सुगन्धित धूप-दीप तथा पुष्प-पत्रोंसे सुन्दरता बढ़ावें। अिन दिनों सायंकालकी शोभा अितनी मनोहारी होती है कि यक्ष, गंधर्व, किन्नर, औपधि, पिशाच, मंत्र और मणि सभी अुत्सवका नृत्य करते हैं। बलि-राज्यका स्मरण करके लोग तरह-तरहके रंगोंसे चौक पूरते हैं; सफेद चावल लगाकर भांति-भातिके सुन्दर चित्र बनाते हैं; गाय-बैल आदि गृह-पशुओंको सजा-धजाकर अुनका जुलूम निकालते हैं; श्रेष्ठ और कनिष्ठ सब मिलकर यष्टिकाकर्षणका खेल खेलते हैं। यष्टिकाकर्षण युरोपीय लोगोंके रस्सी खींचनेके 'टग ऑफ वॉर' जैसा अेक खेल है। अिसीको हमने 'गजग्राह'का नया नाम दिया है। पुराने जमानेमें राजा लोग दीवालीके दिन अपनी राजधानीके सभी लड़कोंको सार्वजनिक रूपसे आमंत्रण देते थे और अुनसे खेल खेलाते थे।

सुगन्धित द्रव्योंकी मालिश करके नहाना, तरह-तरहके दीये कतारमें जलाना और अिष्ट-मित्रोंके साथ मिष्टान्नका भोजन करना दीवालीका प्रवान कार्यक्रम है। वलिके राज्यमें प्रवेश करना हो, तो द्वेष, मत्सर, असूया, अपमान आदि सब भूलकर सबके साथ अेकदिल हो जाना और अिस तरह निष्पाप होकर नये वर्षमें प्रवेश करना हमारा प्राचीन रिवाज है।

अिसी दिन सत्यभामाने श्रीकृष्णकी मददसे नरकासुरका नाश करके सोलह हजार राजकन्याओंको मुक्त किया था।

दीपावलिके अुत्सवमें स्त्रियोंकी अपेक्षा नहीं की गयी है। स्त्री-पुरुषोंके सब संबंधोंमें भाभी-बहनका संबंध शुद्ध सात्त्विक प्रेम और समानताके अुल्लासका होता है। पति-पत्नीका या माता-पुत्रका सम्बंध अितना व्यापक और अितना सात्त्विक अुल्लासयुक्त नहीं होता।

धन-तेरससे लेकर भाभीदूज तकके पांचों दिनोंके साथ यमराजका नाम जुड़ा हुआ है। भला, अिसका अुद्देश्य क्या होगा ?

अिन्द्रप्रस्थका राजा हंस मृगयाके लिये घूम रहा था। हैम नामक अेक छोटेसे राजाने अुसका आतिथ्य किया। अुसी दिन हैमके यहां पुत्रोत्सव था। राजा आनन्दोत्सव मना ही रहा था कि अितनेमें भवितव्यताने आकर कहा कि विवाहके वाद चौथे ही दिन यह पुत्र सर्प-दंशसे मर जायगा। हंस राजाने अुस पुत्रको वचानेका निश्चय किया। अुसने यमुना नदीके दहमें अेक सुरक्षित घर बनवाकर हैमराजको वहां आकर रहनेका निमंत्रण दिया। सोलह साल वाद राजपुत्रका विवाह हुआ। विवाहसे ठीक चौथे ही दिन अुस दुर्गम स्थानमें भी सर्प प्रकट हुआ और राजपुत्र मर गया। आनन्दकी घड़ी अपार शोकमय बन गयी। क्रूर यमदूतोंको भी अिस करुण अवसर पर दया आयी, और अुन्होंने यमराजसे यह वर मांग लिया कि दीवालीके पांच दिनोंमें जो लोग दीपोत्सव मनायें, अुन पर अिस तरहकी आपत्ति न आवे।

यह तो हुआ धन-तेरसकी कहानी। नरक-चतुर्दशीके दिन तो यमराजका और भीष्मका तर्पण विशेष रूपसे कहा गया है। दीवाली तो अमावास्याका दिन है। अुस दिन यमलोकवासी पितरोंका पूजन और पार्वण श्राद्ध तो करना ही पड़ता है। प्रतिपदाके दिन यमराजसे संबंध रखनेवाली कोअी कथा नहीं कही गयी है; लेकिन अैसा मान लेनेमें कोअी हर्ज नहीं कि यमराज भी अुस दिन अपना नया बहीखाता खोलते होंगे। भैयादूजके दिन

यमराज अपनी वहन यमुनाके घर भोजन करने जाते हैं। दीवालीकी स्वच्छन्दताके साथ यमराजका स्मरण रखनेमें अुत्सवकारोंका अुद्देश्य चाहे जो रहा हो, लेकिन जिसमें शक नहीं कि अुसका असर बहुत अच्छा होता होगा। जिसने अुत्सवमें भी संयमका पालन किया होगा, वही यमराजके पाशसे मुक्त रह सकेगा।

नवम्बर, १९२२

२. दीवाली

दीवानखानेमें अेकाध सुन्दर चीज रखनेका रिवाज प्रत्येक घरमें होता है। बाहरका कोअी वंयक्ति आता है, तो सहज ही अुसकी नजर अुस तरफ जाती है और वह पूछ बैठता है—“वाह, कैसी बढ़िया चीज है! यह आपको कहाँसे मिली?” लेकिन अजायबघरमें तो जहाँ देखिये वहाँ सुन्दर ही सुन्दर चीजें दिखायी देती हैं। अुन्हें देखकर मनुष्य बहुत खुश होता है। लेकिन साथ ही वह अुतना ही पसोपेशमें भी पड़ जाता है। वह अिसी सोचमें रहता है कि क्या देखूँ और क्या न देखूँ?

हमारी दीवाली त्यौहारोंका अेक अैसा ही अजायबघर है। अिसे अिन सब त्यौहारोंका स्नेह-संमेलन भी माना जा सकता है। दीवालीका त्यौहार पांच दिनोंका माना जाता है। लेकिन सच पूछिये तो ठेठ नवरात्रिके त्यौहारसे अिसका प्रारंभ होता है, और भाअीदूजकी भेंटमें अिसका आनन्द अपनी चरम सीमा तक पहुंच जाता है।

शास्त्रोंमें प्रत्येक त्यौहारका माहात्म्य और कथा दी गयी है। दीवालीके बारेमें अितनी कहानियां हैं कि यदि ‘दीवाली माहात्म्य’ लिखा जाय, तो वह अेक बड़ा पीया बन जायगा। धन-त्तरसकी कथा अलग, नरक-चौदसकी कहानी अलग और अभावस (दीवाली) की अपनी अेक कहानी अलग। अिसके बाद नया साल शुरू होता है। और दूजके दिन वहनके घर भाअी अतिथि बनकर जाता है। दीवाली गृहस्थाश्रमी त्यौहार है; जनताका त्यौहार है, श्रावणीके दिन धर्म और शास्त्र प्रघान होते हैं; दशहरेके दिन युद्ध और शस्त्रास्त्र प्रमुख रहते हैं; दीवालीके दिन लक्ष्मी और धनको प्राधान्य प्राप्त होता है, और होली तो खेल और रंग-रागका त्यौहार है। जिस तरह मनुष्यमें चार वर्ण हैं, अुसी तरह त्यौहारोंमें भी चार वर्ण हो गये हैं।

पुरातन कालमें लोग श्रावणीके दिन जहाजोंमें बैठकर समुद्र पार देश-देशान्तरमें सफर करने जाते थे। दशहरेके दिन राजा लोग और योद्धागण अपनी सरहदोंको पार करके शत्रु पर चढ़ाजी करने निकलते थे। और दीवालीके दिन राजा लोग और व्यापारीगण स्वदेश वापस आकर कौटुम्बिक सुखका अुपभोग करते थे।

पुराणोंमें कथा है कि नरकासुर नामका अेक पराक्रमी राजा प्राग्ज्योतिषमें राज्य करता था। भूटानके दक्षिणकी तरफ जो प्रदेश है, उसे प्राग्ज्योतिष कहते थे। आज वह असम प्रान्तमें सम्मिलित है। नरकासुरका दूसरे राजाओंसे लड़ना तो घड़ीभरके लिये सहन कर लिया जा सकता था। किन्तु अुस दुष्टने स्त्रियोंको भी सताना शुरू किया। अुसके कारागारमें सोलह हजार राजकन्यायें थीं। श्रीकृष्णने विचार किया कि यह स्थिति हमारे लिये कलंक-रूप है। अब तो नरकासुरका नाश करना ही होगा। सत्यभामाने कहा — “आप स्त्रियोंके अुद्धारके लिये जा रहे हैं, तो फिर मैं घर पर कैसे रह सकती हूँ? नरकासुरके साथ मैं ही लड़ूंगी। आप चाहें तो मेरी मददमें रहें।”

श्रीकृष्णने यह बात मान ली। अुस दिन रथमें सत्यभामा आगे बैठी थी और श्रीकृष्ण मददके लिये पीछेकी तरफ बैठे थे। चतुर्दशीके दिन नरकासुरका नाश हुआ। देश स्वच्छ हो गया। लोगोंने आनन्द मनाया। यह वतानेके लिये कि नरकासुरका बड़ा भारी जुल्म दूर हुआ, लोगोंने रातको दीपोत्सव मनाया और अमावसकी रातमें भी पूर्णिमाकी शोभा दिखलायी।

लेकिन यह नरकासुर अेक बार मारनेसे मरनेवाला नहीं है। अुसे तो हर साल मारना पड़ता है। चौमासेमें सब जगह कीचड़ हो जाता है, अुसमें पेड़के पत्ते, गोबर, कीड़े वगैरा पड़ जाते हैं, और अिस तरह गांवके आसपास नरक — गन्दगी — फैल जाता है। वर्षके बाद जब भादोंकी धूप पड़ती है, तो अिस नरककी दुर्गंध हवामें फैल जाती है, जिससे लोग बीमार पड़ते हैं। अिसलिये वहादुर लोगोंकी आरोग्यसेना कुदाली-फावड़ा वगैरा लेकर अिस नरकके साथ लड़ने जाय, गांवके आसपासके नरकका नाश करे, और घर आकर वदन पर तेल मलकर नहाये। गोशाला तो साफ की हुयी होती ही है; अुसमें से मच्छरोंको निकाल देनेके लिये रात वहां दीया जलाये, घुआं करे और फिर प्रसन्न होकर मिष्टान्नों और पक्वान्नोंका भोजन करे।

दीवालीके बाद नया वर्ष शुरू होता है, और घरमें नया अनाज आता है। हिन्दुओंके घरोंमें वेदकालसे लेकर आज तक जिस नवान्नकी विधिका श्रद्धापूर्वक पालन होता है। महाराष्ट्रमें जिस भोजनसे पहले अंक कड़वे फलका रस चखनेकी प्रथा है। जिसका अद्देश्य यह होगा कि कड़वी मेहनत किये बिना मिष्टान्न नहीं मिल सकता। भगवद्गीतामें लिखा है कि आरंभमें जो जहरके समान है और अन्तमें अमृतके समान, वही सात्त्विक सुख है। गोआमें दीवालीके दिन चिअुड़ेका मिष्टान्न बनाते हैं और जितने भी अिष्ट-मित्र हों उन सबको उस दिन निमंत्रण देते हैं। अर्थात् प्रत्येक व्यक्तिको अपने प्रत्येक अिष्ट-मित्रके यहां जाना ही चाहिये। प्रत्येक घरमें फलहार रखा रहता है, उसमें से अेकाध टुकड़ा चखकर आदमी दूसरे घर जाता है। व्यवहारमें कटुता आओ हो, दुश्मनी हुआ हो, या जो भी कुछ हुआ हो, दीवालीके दिन मनसे वह सब निकाल देते हैं और नया प्रीति-सम्बन्ध जोड़ते हैं। जिस प्रकार व्यापारी दीवाली पर सब लेन-देन चुका देते हैं और नये वहीखातेमें बाकी नहीं खींचते, उसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति नये वर्षके प्रारंभमें हृदयमें कुछ भी वैर या जहर बाकी नहीं रहने देता। जिस दिन वस्तीमें से तरक—गंदगी—निकल जाय, हृदयसे पाप निकल जाय, रात्रिमें से अंधकार निकल जाय, और मिर परसे कर्ज दूर हो जाय, उस दिनसे बढ़कर दूसरा पवित्र दिन कौनसा हो सकता है ?

३०-११-२१

३. मृत्युका भुत्सव

जो सोलहों आने पक्की है, जिसके वारेमें तनिक भी शक नहीं, अैसी चीज जिन्दगीमें कौनसी है? सिर्फ अंक; और वह है मृत्यु!

राजा हो या रंक, बूढ़ी कुब्जा हो या लावण्यवती जिन्दुमती, शेर हो या गाय, बाज हो या कवूतर, मृत्युकी भेंट तो हरअेकसे होने ही वाली है। अब सवाल यह है कि जिस निश्चित अतिथिका स्वागत हम किस तरह करें ?

हम जिस प्रकार उसे पहचानते हैं, उसी प्रकार उसका स्वागत करें। मृत्युका स्वरूप कटहल-जैसा है। अपूर तो सब काटे ही काटे होते हैं; अन्दरका स्वाद न मालूम कैसा हो! मृत्यु अर्थात् घड़ीभरका आराम; मृत्यु अर्थात् नाटकके दो अंकोंके मध्यावकाशकी यवनिका; मृत्यु अर्थात् वाणीके अस्खलित प्रवाहमें आनेवाले विराम-चिह्न। अंग्रेज कवि दूजके

चांदका स्वागत करते समय 'बालचन्द्रकी गोदमें वृद्धचन्द्र' कहकर उसका वर्णन करते हैं। अमावस तक पुराना चंद्र सूख जाता है, क्षीण हो जाता है। अब वह अपने पैरों पर कैसे खड़ा होगा? इसलिये उससे पैदा हुआ बालचन्द्र अपनी बारीक भुजाओं फैलाकर उस बूढ़े काले चन्द्रको अुठा लेता है, और दूसरे दिन पश्चिमके रंगमंच पर ले आता है, और यों सारी दुनिया द्वारा तालियां बजाकर किये जानेवाले स्वागतको स्वीकार करता है। मुसलमान लोग 'आदका चांद' कहकर इसीका स्वागत करते हैं। मृत्यु तो पुनर्जन्मके लिये ही है। प्रत्येक नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ीका तेज लेकर जवानीके जोशमें आगे बढ़ती रहती है; और पुरानी पीढ़ी बुढ़ापेके परावलंबनको महसूस करती हुई लुप्त हो जाती है। यह कैसे भुलाया जा सकता है कि बूढ़ा, निश्चेतन बना हुआ जाड़ा प्रफुल्ल नव वसन्तको अंगुली पकड़ कर ले आता है? इस बातको भुलानेसे काम न चलेगा कि हेमन्तकी काटनेवाली ठंडकमें ही वसन्तका प्रसव है।

दीवालीके दिन वसन्तकी अपेक्षासे, वसन्तकी मार्ग-प्रतीक्षासे, अगर हम दीपोत्सव कर सकते हैं, मिष्टान्न भोजन कर सकते हैं, आनन्द और मंगलताका अनुभव कर सकते हैं, तो हम मृत्युसे क्यों न खुश हों?

दीवाली हमें सिखाती है कि मौतका रोना मत रोओ, मृत्युमें ही नवयौवन प्रदान करनेकी, नवजीवन देनेकी शक्ति है; दूसरोंमें नहीं।

दीवालीका त्यौहार मौतका अुत्सव है, मृत्युका अभिनन्दन है, मृत्यु परकी श्रद्धा है। निराशासे अुत्पन्न होनेवाली आशाका स्वागत है।

रुद्र ही शिव है; मृत्युका दूसरा रूप ही जीवन है।

यह किसे अच्छा न लगेगा कि यमराज अपनी बहनके घर जायं? मृत्यु नित्य नूतनताके घर अुत्सव मनाये?

मृत्यु अग्नि नहीं, बल्कि तेजस्वी रत्नमणि है, जिसे छूनेमें कोअी खतरा नहीं।

अक्तूबर, १९२५

४. छोटे भाओके बिना दीवाली !

दीवालीके दिन घरके सब कुटुंबीजन अिकट्टा होते हैं।

दूर देशोंमें गये हुअे लोग भी जहां तक हो सके, दीवालीके अवसर पर अपने घर वापस जानेके लिये आतुर रहते हैं। दीवाली यानी मिष्टान्नका

दिन । जिस दिन सभी अिष्टजन अिकट्ठे न हुअे हों, तो मिष्टान्न मिष्ट कैसे लगे ? अगर अपना भाजी रूठ गया हो, तो जिस दिन हम अुसे मनाकर वापस घर लाते हैं । अगर अपने भाजीके साथ हमने बुरा वरताव किया हो, तो अुसे माफी मांगकर और अुसे प्रेमकी रस्सीसे बांधकर खींच लाते हैं । हमारी सबसे बड़ी अिच्छा यह रहती है कि दीवालीके दिन अेक भी भाजी हमसे दूर न रहे ।

हमने अपने अेक भाजीको — और वह भी सबसे छोटे (अन्त्यज) भाजीको — अेक अरसेसे दूर रखा है; जान-बूझकर दूर रखा है, अुसका तिरस्कार करके अुसे दूर रखा है । फिर भी वह रूठा नहीं है । बेचारा कुछ निराश-सा हुआ है; कुछ आशाभरी दृष्टिसे घरकी ओर देख रहा है । अभी तक वह अपना हिस्सा नहीं मांग रहा है, किसी तरहका हक नहीं जता रहा है । तुम जिस हालतमें रखोगे, अुस हालतमें रहनेको तैयार है; सिर्फ अुसे घरके अन्दर स्थान चाहिये । वह जिसी बातका भूखा है कि भाजी कहकर हम अुसे पुकारें । अुसके बगैर हमारी दीवाली कैसे मनायी जायगी ? अुसके बिना मिष्टान्नमें रस कहाँसे आयेगा ? दीवालीके दिन हम अन्नकूट भले ही करें, लेकिन अीश्वर अुसके अूँचे शिखरकी तरफ देखता तक नहीं । वह तो छोटे भाजीकी प्रेमप्यासी आँखोंसे हमारी तरफ देख रहा है । जब तक हम छोटे भाजीको 'भैया' कहकर प्रेमसे अन्दर न बुलायेंगे, तब तक अीश्वरको 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' कहनेका हमें कोअी अधिकार नहीं ।

अक्तूबर, १९२५

दीवाली

कुवार बदी ३०

१ दिन

यह त्यौहार जितना जाग्रत है कि जिसके संबन्धमें कोअी खास नयी सूचनाअें देनेकी जरूरत नहीं । लड़के घर जाकर अपने मां-बापसे मिलें । अिष्टमित्र अेक-दूसरेसे मिलकर दिलोंकी सफाअी करें । अेक-दूसरेको प्यारी चीजें भेंटमें भेजें ।

प्रत्येकको चाहिये कि वह रात सोनेसे पहले जिस बातकी जांच करे कि सारे वर्षके संकल्पोंमें से कितने संकल्प पूरे हुअे । नये वर्षमें जीवनमें कौनसी

नयी वात दाखिल की जा सकती है, पुरानी बातोंमें से कौनसी छोड़ देने लायक हैं, आदि सब बातोंका विचार करके हम सो जायं।

दीवाली अर्थात् दीपावलि, दीपोत्सव। इस दिन दीपोंका अुत्सव करना ही चाहिये।

[यह तिथि अुत्तर भारतमें कार्तिक कृष्ण ३० होती है।]

२७

नया वर्ष

कार्तिक सुदी १

१ दिन

यह दिन प्रधानतया मित्रोंसे मिलने तथा गुरुजनोंके दर्शन करके अुनके आशीर्वाद प्राप्त करनेका दिन है। नये सालका नया संकल्प और सारे वर्षकी कुछ निश्चित योजना भी इस दिन बनायी जाय। जो सोच सकते हैं वे अेक दो घंटे शांतिसे अेकान्तमें बैठकर प्रार्थनापूर्वक नये वर्षका संकल्प और अुसे पूरा करनेका विस्तृत कार्यक्रम मनमें तैयार करें, और जिनके सामने इस तरहका संकल्प प्रकट करना अिष्ट हो, अुनको यह सुनायें तथा अपने पास अुसे अवश्य लिख रखें।

२८

कहां है भैयादूज ?

[कार्तिक सुदी २]

हिन्दू समाजमें स्त्रियोंकी स्थिति जैसी होनी चाहिये वैसी नहीं है। अितने सालोंसे चर्चाओं चल रही हैं, बहुतसे परिवारोंमें तब्दीलियां हुअी हैं, लोकमतमें भी काफी परिवर्तन हुआ है; फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि आज स्त्रियोंकी हालत संतोपजनक है। परिस्थितिके दबावसे लाचार हुअे बिना जीवनमें कोअी हेरफेर न करनेकी मुमूर्षु जड़ताको समाज जब तक त्याग नहीं देता, तब तक यही हालत रहेगी।

‘यही हालत’ के क्या मानी? ‘यही हालत’ के मानी हैं स्वभावकी परतंत्रता, हृदयकी दुर्बलता और सामाजिक अुन्नतिके श्रेष्ठ तत्त्वोंके विषयमें

नास्तिकता। प्रचलित परिस्थितिसे बूबा हुआ मन प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये हिन्दू आदर्शके वैभवकालकी तस्वीरोंको दृष्टिके सामने खड़ा करनेके लिये छटपटाता है, और जिस व्यापारमें हमें आज तक निराश नहीं होना पड़ा है। मदालसा, मैनावती, सुमित्रा, विदुला या जीजाबाबी जैसी आदर्श माताओं हमारे यहां हुयी हैं। आदर्श पत्नीके वारेमें तो हिन्दुस्तान हमेशा दुनियाके सब देशोंके अग्रभागमें ही रहेगा। उनकी नामावलि सीता-सावित्रीसे शुरू करना आसान है, लेकिन उस नामावलिका अन्त कहां होगा ?

आदर्श माता और आदर्श पत्नीकी मिसालें तो हमारे पास डेरों पड़ी हुयी हैं। लेकिन आदर्श ब्रह्मचारिणियोंके विषयमें वैसा नहीं कहा जा सकता। प्राचीन युगमें नारीको अपुवीत दिया जाता था, जिस आशयके अग्नि-गिने वचन और सुलभा, गार्गी, श्वरी, और मैत्रेयीके लोक-विश्रुत अुदाहरण ही हमारे सामने हैं। वेदवती, धृतव्रता, बड़वा, शुतावती आदि नाम तो नाम ही रह गये हैं। मोक्षको ही परम पुरुषार्थ माननेवाली ब्रह्मचारिणी स्त्रियोंके अितने कम अुदाहरण हों, यह कोयी शोभास्पद स्थिति नहीं।

जहां स्त्रियोंकी सामाजिक स्वतंत्रताको भी स्वीकार नहीं किया गया है, वहां पारलौकिक स्वतंत्रता अर्थात् मोक्षके विषयमें कौन अुत्साह रखे ? हिन्दू, अीसाअी, बौद्ध और बिस्लाम धर्ममें स्त्रियोंकी शक्तिके विषयमें न्यूनाधिक मात्रामें शंका ही दिखायी गयी है। जब आर्य आनन्दने बुद्ध भगवान्से सीधे सवाल पूछे, तब अन्तमें बुद्ध भगवान्ने स्वीकार किया, “निर्वाण प्राप्त करना स्त्रियोंके लिये असंभव नहीं है।” जिस घटनाके संबंधमें कुमार-स्वामी जैसे आधुनिक संस्कारी पुरुष हमसे पूछते हैं — “क्या यह बात सही नहीं है कि दुनियादारीकी वृत्ति पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक है ?” वंकिमचन्द्रजीने भी ‘आनन्दमठ’ में अस्पष्ट रूपसे जिस बातका सूचन किया है कि मोक्षधर्मके साथ स्त्रियोंकी घोर दुश्मनी है।

जहां जिस तरहकी धारणा हो, वहां आदर्श ब्रह्मचारिणियोंकी संख्या कम ही रहेगी। और, मोक्ष-प्राप्तिकी अिच्छा ही जहां मन्द हो, वहां ब्रह्मचर्य-जैसी कठिन दीक्षा लेनेकी बात किसे सूझेगी ? (यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य चरन्ति।)

‘तेऽपि यान्ति परां गतिम्’ कहकर गोपीजन-वल्लभ श्रीकृष्णने दूद्रोंके साथ स्त्रियोंको भी आश्वासन दिया। लेकिन भगवान्ने कोयी आदर्श ब्रह्मचारिणी तैयार की हो, तो पुराणकारोंने अुसका कहीं अुल्लेख नहीं किया है।

वीरमाता, वीरांगना, वीरकन्या जैसे वहादुरीके आदर्श हमारे यहां पर्याप्त मात्रामें न सही, फिर भी बहुत हैं। तेजस्वितामें हमारे सामने सिर्फ द्रौपदी और झांसीकी रानी लक्ष्मीबायी हों, तो भी हमारे समाजके मुखको अज्ज्वल करनेके लिये वे काफी हैं।

परंतु आदर्शके प्रकारोंमें एक त्रुटि ऐसी है, जो हमें चुभे बिना नहीं रहती। गृहस्थाश्रम और संन्यास, बड़े-बड़े संघ और सम्मिलित परिवार, किसीका भी वर्णन पढ़ें और आदर्शको जानें, सबको देखकर यही कहा जा सकता है कि हमारे यहां आदर्श भायी-बहनोके चित्र हैं ही नहीं। श्रीकृष्ण भगवान् ने सुभद्राकी अपेक्षा द्रौपदीके बन्धुत्वका अधिक खयाल रखा। इस एक अज्ज्वल दृष्टान्तको छोड़ दें, तो बाकी क्या रहता है? महेन्द्र और संघ-मित्राको आदर्श मिशनरी कहा जा सकता है; मगर यह नहीं कह सकते कि अन्होंने आदर्श बन्धु-भगिनीकी कोयी मिसाल पेश की है। आदर्श बंधु-भगिनीका विचार करते समय भावावेशके साथ अनुका स्मरण नहीं हो आता। आद्य और आर्ष कवि वाल्मीकिको भी मानव-जीवनके सभी संबंध सूझे, लेकिन एक भायी-बहनके आदर्शका चित्रण करनेकी न सूझी। अतना ही नहीं, बल्कि असु वेचारी शान्ता (श्रीरामचन्द्रजीकी बहन) का भी वे अपुयोग न कर सके। पौराणिक तथा ऐतिहासिक साहित्यमें कहीं भी बंधु-भगिनीका आदर्श रूढ़ हुआ दिखायी नहीं देता। अतना ही नहीं, बल्कि कल्पित साहित्यमें भी हमारे कवियोंने भायी-बहनके अज्ज्वल आदर्शका चित्रण करनेमें कहीं अपनी प्रतिभाका अुत्कर्ष नहीं दिखाया है। सम्राट् श्रीहर्ष अपनी बहन राज्यश्रीको छुड़ानेके लिये जंगलकी तरफ दौड़ा—अगर यह प्रेमपूर्ण प्रसंग अन्य देशोंके कवियोंके हाथ आता, तो न मालूम असे लेकर अन्होंने कितने अमर काव्य लिखे होते।

हमारे कवियोंने यह अक्षम्य प्रमाद क्यों किया होगा? जिसके भायी नहीं है, असु कन्याके साथ व्याह भी नहीं करना चाहिये—यहां तक कह देनेवाले हमारे शास्त्रकारोंने भी भायी-बहनके संबंध पर अपनी धर्मबुद्धि खर्च नहीं की। इसका कारण? बाल-विवाह? जहां आठ-दस सालकी होनेसे पहले ही लड़की विवाहित होकर समुराल जाती हो, वहां भायी-बहनके संबंधके विकासके लिये अवसर ही कहां? लेकिन हमारे यहां बाल-विवाह आदिकालसे नहीं होता था। वेदमें यम-यमीके विख्यात यमल (जोड़ी) का काव्यमय

बुल्लेख है। यमके मरने पर यमीके आंसू किसी तरह रुकते न थे। सभी देवीोंने यमीको शान्त करनेकी चेष्टा की, किन्तु उसका सान्त्वन न होता था। अन्तमें देवीोंने रात्रिका निर्माण किया। रात बीत गयी और यमी भाभीकी मृत्युका दुःख कुछ भूल-सी गयी। उस रातके बाद ही आज और कलका भेद शुरू हुआ। उससे पहले तो हमेशा 'आज' ही 'आज' रहता था।

वेदोंने यम-यमीके बन्धु-भगिनी प्रेमका वर्णन तो बहुत बढ़िया किया है; लेकिन युनोंने इस रूपकको बिल्कुल विगाड़ डाला है। संभव है इसी कारण हमारे कवियोंकी रचि इस विषयसे हट गयी हो, और उसके बाद उनमें भाभी-बहनके काव्यमय तथा आध्यात्मिक संबंधका चित्रण करनेका अुत्साह ही न रहा हो। कच और देवयानीके वारेमें भी मामला इसी तरह विगड़ गया है। इसीलिअे भाभी-बहनके पवित्र संबंधके विषयमें कविगण नास्तिक बन गये होंगे। अनेक यगोंसे भारतवासी हर साल भाभीदूजका त्यौहार मनाते आये हैं। फिर भी किसी कविके मनमें यह विचार न आया कि वह भाभी-बहनके संबंधको प्राधान्य देकर कोअी महाकाव्य लिखे।

अिस तरह निराश मन जब अपनी हताश दृष्टि लोक-साहित्यकी ओर डालता है, तो वह आनन्दाश्चर्यसे आर्द्र हो जाती है। भाभी-बहनका संबंध अनादि है, हृदय-सहज है, सार्वभौम है। उसे लोक-हृदय कैसे भूले? लोक-गीतों और लोककथाओंमें जहां देखिये वहां भाभी-बहनके मीठे संबंधकी स्मृतियां विखरी पड़ी हैं। भविष्यके सामाजिक आदर्शको गढ़नेवाले आजके कवियो! अिस पड़ती भूमिकी ओर दृष्टि डालिये और स्त्री-पुरुषके बीचके अिस अेकमात्र निर्विकार, निष्काम और समानतापूर्ण संबंधका चित्रण करनेमें अपना शक्तिसर्वस्व खर्च कीजिये।

भैयादूज

कार्तिक सुदी २

१ दिन

सब त्यौहारोंमें अिस त्यौहारका काव्य कुछ अनूठा ही है। जिन स्कूलोंमें लड़कोंके साथ लड़कियोंका भी स्थान हो, वहां तो यह दिन विशेष रूपसे मनाया जा सकेगा। अिस दिनका नाश्ता या पूरा भोजन लड़कियां ही बनायें, और वे सब लड़कोंको परोसें। यह रिवाज भी अच्छा है कि

लड़के अपने हाथसे बनायी हुयी कोयी भी अुपयोगी वस्तु वहनोंको भेंटस्वरूप दें। अपने हाथसे काते हुये सूतकी खादीका टुकड़ा, कोयी किताव, दवात या अिसी तरहकी कोयी वस्तु दी जा सकती है।

भायी-दूजके दिन प्रत्येक विद्यार्थी अपनी वहनको पत्र तो जरूर लिखे। अिस तरहके पत्रोंकी नकलें जमा करके व्यक्तिगत रूपसे पढ़ी जायं, तो अुसमें कोयी हर्ज नहीं। लेकिन अिसमें कृत्रिमता न आनी चाहिये। कोयी कृष्ण-द्रौपदीकी कथा लिखे या अुस पर कविता करे।

संस्थामें तो सब विद्यार्थी सभी विद्यार्थिनियोंके भायी हैं। अुनमें अैसा भेद नहीं होना चाहिये कि वे किसी खास भायी या वहनको चुनें।

२९

महाअेकादशी

कार्तिक सुदी ११

आधा दिन

अिस दिन देव-शयन और देव-प्रबोधनका रहस्य कोयी शिक्षक समझायें। चातुर्मास्यका अुद्यापन करें। तुलसीकी कहानीके संबंधमें थोड़ा-बहुत विवेचन हो। महाअेकादशीके दिन सब लोग सवेरे चार वजे नहाकर प्रार्थनामें अुपस्थित रहें। कार्तिक-स्नानका माहात्म्य विशेष समझा गया है। प्रार्थनामें गीताका पंद्रहवां अध्याय पढ़ा जाय। पेड़ोंकी क्यारियां साफ करके अुन्हें पानी देनेमें सभी लोग अिस दिन थोड़ा-थोड़ा समय व्यतीत करें। यह अिस दिनका महा-यज्ञ है। महाअेकादशीका फलाहार तो है ही। हो सके तो दशमीकी शामको कुछ न खाया जाय। महाअेकादशीके दिन संगीतयुक्त भजनोंको अधिक समय देना चाहिये।

अेकादशियां दो आयें तो संस्थामें दूसरीको पसन्द किया जाय। वैष्णव धर्ममें भक्ति, चारित्र्यकी शुद्धि और मनुष्य-मनुष्यके बीचकी समानता, अिन तीन बातों पर विशेष जोर दिया गया है। छात्रोंको यह बात अच्छी तरह समझा दी जाय।

युद्ध-गीताकी जयन्ती

[अगहन सुदी ११]

आज धर्मयुद्धकी अखंड प्रेरणा देनेवाली भगवद्गीताकी जयन्ती है। गीता ग्रंथ नहीं बल्कि राष्ट्रमाता है। आज युसका सन्देश भारत द्वारा सारी दुनियाके लिये है। जब गीता पहले-पहले गायी गयी, उन दिनों वर्षका प्रारंभ मार्गशीर्ष महीनेसे होता था। मार्गशीर्षको वैदिक लोग अग्रहायण कहते थे। आज भी हमारे देहाती लोग युसे अगहन कहते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं— 'महीनोंमें मैं श्रेष्ठ महीना मार्गशीर्ष हूँ।' और बिस महीनेमें भी योक्षदा अेकादशीके दिन गीतामाताका स्मरण होना स्वाभाविक है। गीताका स्मरण आते ही यह कहा जा सकता है कि गीताने हृदयमें जन्म लिया है। वहीं युसका मन्दिर बनानेके लिये हम गीता-जयन्ती मनाते हैं। भला गीतामाताके लिये ऑट-पत्थरका मंदिर कैसे बनाया जाय? गीताकी स्थापना तो हृदय-मंदिरमें ही की जा सकती है। गीताकी पूजा चावल, फूलों या पत्तोंसे नहीं की जा सकती। गीताको तो तभी संतोष होगा, जब हम अपना सारा जीवन युसके लिये अर्पण कर दें।

गीता कहती है कि अितने कच्चे मत बनो कि सुख-दुःख तुम्हें आसानीसे दवा लें। तुम्हें जय-पराजयकी भी परवाह नहीं होनी चाहिये। जो निश्चयी हैं, आग्रही हैं, हठी हैं, वे मनमें आयी दुःखी चीजको आन्त्रिकार प्राप्त कर ही लेते हैं। इसलिये निर्मल बनो, वीर बनो। लंबी यात्राके लिये निकले हुअे लोगोंको रास्तेमें जाड़ा भी सहना पड़ता है और गरमी भी बरदाश्त करनी पड़ती है। रास्तेमें दिन भी निकल आता है, और रात भी हो जाती है। पर यात्रा तो चलनी ही चाहिये। समय जातिकी अंसी जीवन-यात्रा व्यक्तिगत स्वार्थके लिये न हो, संकुचित स्वार्थके लिये न हो। इस यात्राके लिये निकले हुअे लोगोंको 'सर्वभूतहिते रताः' होना चाहिये। युनके मनमें किसीके प्रति द्वेषभाव तो होना ही नहीं चाहिये। गीता-धर्मके लोग सिर्फ अीश्वरको पहचानते हैं। सभी जीव अीश्वरके ही बालक होनेसे वे किसीका द्वेष नहीं करते। युनका युद्ध तो पाप, अनाचार और सत्याचारके

विरुद्ध ही अखंड रूपसे चलता रहेगा। कामरूपी, वासनारूपी, अजेय शत्रुका असहकारके दृढ़ शस्त्रसे छेदन करके वे जरूर अविचल पद प्राप्त करेंगे। जो लोग इस युद्धकी दीक्षा लेते हैं, उनके लिये गीता-जयन्ती है। धर्म-युद्धसे अनिकार नहीं किया जा सकता। अनिकार करनेसे स्वधर्म और कीर्ति दोनोंका नाश होता है, और पल्लेमें सिर्फ पाप और थुक्का-फजीहत ही आ पड़ती है। धर्मयुद्धमें गंवाने-जैसा कुछ है ही नहीं। जीत जायं तो भी धर्मकी विजय; मारे जायं तो भी धर्मकी ही विजय।

गीता कहती है कि इस बातकी फिकर कभी मत करो कि हम मुट्ठी-भर ही हैं। हम अपना हृदय अन्नत करें; हम श्रेष्ठ बन जायं। लोग आप ही आप हमारे पीछे आ जायेंगे। जिधर श्रेष्ठ व्यक्ति प्रयाण करेंगे, अुधर आम लोग तो जायेंगे ही। अगर हम आलसी बन गये, रुक गये, तो जनताकी नष्ट करनेका पाप हमारे मत्थे पड़ेगा।

गीताजीने यह भी कहा है कि धर्मवीरकी शिक्षा कैसी होनी चाहिये। धर्मवीर अिन्द्रियोंके लालचमें नहीं फंसेगा, सुख-दुःखमें वह न जायगा; न लाभ-हानिसे ललचायेगा और न दवेगा ही। वह तो वीर है। ओछे कामोंमें वह अपने जीवनको फजूल खर्च नहीं करेगा। वह अीश्वरका सैनिक है। जब वह धर्मकी ग्लानि देखता है, अधर्मका अभ्युत्थान देखता है, तब इस विश्वासको मनमें धारण करके कि भगवान् स्वयं आनेवाले हैं, भगवान्के धर्म-संस्थापनके संदेशको सुननेके लिये वह तैयार रहता है। जिनकी करतूतें दुष्ट हैं, उनके पास वह नहीं फटकता। साधुओंकी रक्षाके लिये वह हमेशा कटिवद्ध रहता है। इस विचार या भीतिसे वह कर्मका त्याग नहीं करता कि कर्मके पीछे कष्ट है। सदीं-गर्मीको भूलकर, लाभ-हानिका तनिक भी विचार किये बिना, मनमें किसी प्रकारके मत्सरको स्थान न देते हुअे, यदृच्छासे जो कुछ मिलता है, उसीमें सन्तोष मानकर वह लड़ता ही रहता है। बड़े यज्ञका प्रारंभ करनेके बाद वह जो कुछ भी करता है, यज्ञके लिये ही करता है। यज्ञके बाद जो कुछ बचे, वही खानेका अुसे अधिकार है, अैसा समझकर वह अुतना ही लेता है। महाप्रबल शत्रुका छेदन करनेसे पहले अपने हृदयकी दुर्बलता और संशय-वृत्तिका ही वह छेदन करता है। जब संशय-वृत्ति चली जाती है, अविश्वास नष्ट हो जाता है, तब सहज श्रद्धाके कारण वह वज्रकाय बन जाता है। अीश्वरका कार्य करनेमें संशय किस

वातका ? चिन्ता किस वातकी ? धर्मवीर कहता है कि मैं तो कुछ करता ही नहीं, परमेश्वर जैसी प्रेरणा देता है वैसा करता हूँ। और वैसा करते हुये मर भी जाऊँ तो क्या ? अंक जन्मके बाद दूसरा तो आने ही वाला है। इस जन्ममें अच्छा काम किया हो और वीरकी मृत्यु पायी हो, तो नया जन्म आजकी अपेक्षा बुरा तो होगा ही नहीं; कुछ अच्छा ही होगा। हमेशा श्रीश्वरका स्मरण रखकर लड़ना है। श्रीश्वरका ध्यान कायम रहेगा, तो अन्तमें श्रीश्वरके पास ही पहुंचा जा सकेगा।

गीता कहती है कि लोगोंका जीवन-मरण, कल्याण-अकल्याण काल-पुरुष परमात्माके हाथमें है। उसे जो करना होगा वही होगा। हम भुसवे हाथमें निमित्त-मात्र हैं, खिलौने हैं। भूतमात्रके कल्याणको मनमें रखकर, किसी प्रकारके राग-द्वेषको मनमें स्थान न देकर, हम प्रभुके वचनका पालन करें। जब हम निर्वैर वनेंगे, तभी प्रभुके पास पहुंच सकेंगे। हम भुसका ध्यान धरें; वह हमारा बुद्धार करेगा।

तमाम दुनियाकी सत्ता और सहूलियतोंको अपने ही हाथमें रखनेके आग्रहसे प्रवृत्ति करनेवाले राक्षस कभी होते हैं। वे तो विलासितामें ही विश्वास रखते हैं। उसके लिये वे न्याय-अन्यायका भी विचार नहीं करते, और दुनियाका धन जहां-तहांसे खींच लाते हैं। वे अपने मनम हवायी किले बनाते हैं—“देखो, आज अितना मिला; ये मेरे मनोरथ अब तप्त होंगे। अितना धन तो मेरे पास है ही, अितना और मिल जायगा। अितने शत्रुओंको मैंने मारा, दूसरोंको भी मार डालूंगा। मैं दुनियाका स्वामी हूँ। भोगोंका अपभोग करना मैं ही जानता हूँ। सुख-सामर्थ्य मेरे ही हैं। मेरी जाति सबसे श्रेष्ठ है। मेरे जैसा कोयी नहीं; दुनियाका भला मैं ही करूंगा। मैं दुनियाका अगुआ हूँ।” इस तरहके खयालोंमें मशगूल रहनेवाले, दंभसे दुनियाको ठगने-वाले, और दीनोंकी देहमें स्थित श्रीश्वरका अपमान करनेवाले तो कभी पड़े हैं।

शैतान इस दुनियाको हजम करके बैठा है। यदि भुसकी जंगह हम श्रीश्वरका राज्य प्रस्थापित कर सकें, तो हमारा काम बन जाय। इस अनित्य और दुःखपूर्ण दुनियामें सुखका अपभोग कौन करे ? यह श्रीश्वरीय सेवा मिली है, इसीलिये तो जीवन रमसे भरा हुआ है।

गीता-जयन्ती

अगहन सुदी ११

आषा दिन

यह नव आविष्कृत त्यौहार है। गीताके 'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' वचन परसे यह दिन निश्चित किया गया है। अत्यन्त प्राचीन कालमें मार्गशीर्ष महीनेसे वर्षारंभ होता था। इस दिन पूरा गीतापाठ होना चाहिये। लोकमान्य तिलककी अग्रहायण सम्बन्धी कल्पना तथा ज्योतिष-शास्त्रका अयन-चलन इस दिन समझाया जा सकता है। इस दिन गीताके सन्देशका विवेचन और श्रीकृष्णकी विभूतिके बारेमें चर्चा की जाय।

३१

दत्त-जयन्ती

अगहन सुदी १५

१ दिन

दत्तात्रेयकी अुपासना उत्तरं भारतमें विशेष रूपसे प्रचलित नहीं है। फिर भी अगर यह दिन थोड़ा पैदल प्रवास करनेमें विताया जाय, तो वह अिष्ट है। अगहन महीनेमें बहुत त्यौहार नहीं पड़ते। पूर्णमासीके दिन सवेरे एक गांवमें नहाना, दूसरे गांवमें जाकर भोजन करना, और तीसरे गांवमें जाकर निवास करना, इस तरह अवधूतके समान कार्यक्रम रखा जा सकता है।

भीसाबी धर्म एक तरहकी गुरु-पूजा है। इसलिअे आज 'Imitation of Christ' (भीसाका अनुसरण) नामकी किताब भी पढ़ी जाय।

सिक्ख लोग अेक तरहसे गुरु-अुपासक कहे जा सकते हैं। अुन्होंने शुद्ध भक्ति और सदाचार पर हमें बहुत-सा धार्मिक साहित्य दिया है। अुसमें से कुछका आज पारायण किया जाय। अुदाहरणके लिअे, सुखमनी, जपजी आदिका। इसके अलावा, सिक्ख गुरुओंने सात्त्विक बलिदानका जो लोकोत्तर आदर्श सिद्ध करके दिखाया, अुससे सम्बन्ध रखनेवाली बातें भी विद्यार्थियोंको बताया जा सकती हैं। गुरु-पूर्णमा और दत्त-जयन्तीके अिन दो त्यौहारों पर सिक्ख सम्प्रदाय और गुरुभक्तिके विषयमें बहुत-कुछ कहा जा सकता है।

संक्रांति

[पूस मास]

पूस महीनेमें जब अेक महाराष्ट्रीय दूसरे महाराष्ट्रीय व्यक्तिसे मिलता है, तो 'तिलगुड़' जरूर देता है। हम अेक-दूसरेको तिलगुड़ देते हैं, और कहते हैं—'तिलगुळ घ्या आणि गोड बोला' (तिलगुड़ लीजिये और मीठी बातें कीजिये); क्योंकि तिलमें स्नेह है और गुड़में मिठास। यह अिस संकल्पका चिह्न है कि सबके साथ हमारा प्रेम और मिठास रहे। वेदमें अेक मंत्र है—

मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।

[अर्थात्—सब प्राणी मेरी ओर अवैरसे, स्नेहभावसे, देखें। मैं सब प्राणियोंकी ओर स्नेहकी दृष्टिसे देखता हूं। हम सब स्नेहकी दृष्टिसे देखें।]

महाराष्ट्रके श्रद्धावान् लोगोंने अिस वैदिक मंत्रका ही यह मजेदार और मीठा रूपान्तर किया है।

*

*

*

जिस तरह मनुष्योंका मनुष्यों पर असर पड़ता है, उसी तरह प्रकृतिका भी मनुष्यों पर असर पड़ता है—अुनके शरीर पर ही नहीं, बल्कि अुनके मन पर, अुनकी रहन-सहन पर, अुनके आदर्श पर और अुनके सामाजिक जीवन पर भी।

जिस तरह श्रेष्ठ और पूज्य विभूतियोंका असर हमारे जीवन पर पड़ता है, उसी तरह प्रकृतिकी घटनाओंका भी पड़ता है। किसी रिश्तेदारकी मृत्युसे जिस तरह हम हतोत्साह हो जाते हैं, उसी तरह सूर्यके सप्तम ग्रहणको देखकर भी हम विमनस्क हो जाते हैं। महायुद्ध और अकाल दोनोंका हम पर अेकसा ही असर पड़ता है। कौन कह सकता है कि पुत्रोत्सव और वसन्तोत्सवमें समानता नहीं है? श्रीकृष्णने कंस पर, रामने रावण पर

और बुद्धने मार पर जो विजय प्राप्त की, उसे हजारों साल हो चुके हैं। फिर भी जब-जब उस विजयका दिन आता है, तब-तब उस विजयका सन्देश हमें पुनः पुनः मिलता है। प्रभावकी दृष्टिसे धूपकी जाड़े पर पायी हुयी विजय अिससे कुछ कम नहीं होती। चूँकि वह हर सालकी बात है, अिसलिये वह कुछ कम असर करनेवाली नहीं होती। सूर्योदय प्रतिदिन होता है, फिर भी सब देशों और सब भाषाओंके कवियों और रसिकोंको सूर्योदयकी शोभा और उसकी अपुमा अुत्साहप्रद ही प्रतीत होती है।

मकर-संक्रान्ति दिनकी रात पर, धूपकी जाड़े पर और प्रवृत्तिकी निद्रा पर विजय सूचित करती है। असाढ़ महीनेसे दीर्घतमा रात्रिकी विजय हो रही थी। दिन-प्रतिदिन प्रवृत्ति कम हो रही थी। सर्वत्र अेक तरहकी ग्लानि छायी हुयी थी। सूर्यकी किरणें कम हो रही थीं। दीपोत्सव करके हमने किसी तरह नये सालका अुत्सव मनाया, लेकिन जाड़ेकी कठोरता तो बढ़ती ही गयी। महात्मा सविता मानो दक्षिणके कैदखानेमें बन्द हो गये। कब छूटेंगे ?

आपत्तिका भी अन्त तो होता ही है। सूर्यका दक्षिणकी तरफका संक्रमण पूरा हुआ और अुत्तरायणका आरंभ हुआ। सविताकी किरणें अधिकाधिक फैलने लगीं। दिनके पल बढ़ने लगे, रात्रिके पल घटने लगे। अिस बातके चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे कि रात्रिके साम्राज्यका क्षय शुरू हुआ है, और अिसका पूरा यकीन होने लगा कि महात्मा सविता दक्षिण दिशाके बन्धनसे अब जरूर मुक्त होंगे। बस, यह आगामी मुक्तिका आनन्द ही मकर-संक्रमण है।

यह मकर-संक्रमण हम किस तरह मनार्यें ? गंगाके किनारे जाकर देखिये। वहां असंख्य श्रद्धावान् लोग गंगाके पात्रमें झोंपड़ियां बनाकर कभी दिनोंसे रह रहे हैं। जहां गंगा और यमुनाका हिन्दूधर्मकी सरस्वतीके साथ संगम होता है, वहां हजारों लोगोंको प्रयाग-स्नानके लिये आते देखकर मैं अभी लौटा हूँ। सूर्योदयसे पहले अुठकर नाम-स्मरण करते हुअे और भीष्म-माता गंगाकी या धर्म-भगिनी यमुनाकी जय बोलते हुअे वे नहाने जाते हैं। क्या यमुनामें नहानेवाला यमसे डरेगा ? गंगामें स्नान करनेवालेकी दृढ़ता क्या भीष्म पितामह जैसी नहीं होनी चाहिये ? प्रयागका स्नान तो निर्भयता और दृढ़ताकी दीक्षा ही है।

मकर-संक्रमण जितना विजयका अुत्सव है, अुतना ही स्नेह और मिठासकी वृद्धिका भी अुत्सव है। भूख और जाड़ेसे क्षीण लोग भेड़ियोंकी तरह अेक-दूसरेसे लड़ें, तो बिसमें आश्चर्यकी कोबी बात नहीं। लेकिन प्रकाश और समृद्धिके समय तो अुन्हें यह सब भूल जाना चाहिये। बिसीलिये हिन्दुस्तानके अनेक प्रान्तोंमें अुत्तरायणके प्रारंभमें अेक-दूसरेको तिल और गुड़ देनेका रिवाज है। सिर्फ बिसीलिये नहीं कि जाड़ेके दिनोंमें वह अेक पुष्टिकारक खुराक है, बल्कि स्नेह और मिठासकी वृद्धिका मूचन करनेके लिये भी। (तिलमें स्नेह है—संस्कृतमें स्नेहके मानी हैं तेल—और गुड़में मिठास है।) सब अनाजोंमें तिलकी अुपज सबसे अधिक होती है, बिसीलिये अुसका यानी प्रेमका लेन-देन कल्याणकर माना गया है।

मकर-संक्रान्तिके दिन परस्पर तिल और गुड़ देकर आपसके पुराने अपरावोंकी क्षमा मांगनेका रिवाज दिलसे अपना लिया जाय, तो समाजमें अैक्य और अुत्साहकी वृद्धि अवश्य होगी। और बढ़ते हुअे सूर्यकी तरह देशका सौभाग्य भी बढ़ेगा।

अुत्तरायणका यह सन्देश अुन्नतिकारक है। स्वराज्यके दिनोंमें इमें बिसे भूलना नहीं चाहिये।

अुत्तरायणके बाद बसन्त पंचमी और फिर 'रथ-सप्तमी करके अन्तमें भोग-विलासोंको जला कर संयम-धर्मका स्वीकार करनेके लिये होलिकोत्सव मनाना होता है। ऋतुचक्रके परिवर्तनमें भी धर्म है। प्रकृतिके साथ जिसका सहकार नहीं टूटा है, वही अुसे प्राप्त कर सकता है।

१८-१-'२३

मकर-संक्रान्ति

पूस मास

१ दिन

अब यह झगड़ा शुरू होनेवाला है कि मकर-संक्रमणका दिन कौनसा हो? सायन पंचांगवाले तो दिसंबरकी २३ वीं तारीखसे ही त्रिपटे रहेंगे, और सामान्य पंचांग जनवरीकी १३ वीं या १४ वीं तारीख तक राह देंगे।

मकर-संक्रान्तिका दिन हमारी पंचांग-पद्धतिको नमझने और नमझानेके लिये अनुकूल है। महाराष्ट्रका रिवाज स्वादिष्ट लगता हो, तो बिस दिन तिलगुड़का प्रचार करने जैसा है। सारे पूस महीनेमें तिल खायें, तो भी

ठीक ही है। जाड़ेके मौसमके अुत्तरार्धमें स्निग्ध अन्न पौष्टिक होता है। लेकिन प्रधान वृत्ति तो पतंग बुड़ानेकी ही हो, वशतें कि अुसका घागा स्वदेशी हो। अगर लड़के बाजारसे बने-बनाये पतंग लायें, तो यह त्यौहार रखनेका कुछ मतलब ही नहीं रहता। पतंग तो घर पर ही बनाये जायं और साथ मिलकर बुड़ाये जायं। पतंग बनानेकी भी अेक खास वैज्ञानिक कला होती है।

इतिहास और समाज-विज्ञानके रसिक अध्यापक अिस दिन जीवन-संक्रमण या राष्ट्रीय संक्रमणके वारेमें व्याख्यान दें, तो अुसे सुननेके लिये तैयार रहना चाहिये।

३३

वसन्त

[माघ सुदी ५]

वसन्त पंचमी अर्थात् ऋतुराजका स्वागत !

माघ शुक्ल पंचमीको हम वसन्त पंचमी कहते हैं, लेकिन प्रत्येक व्यक्तिके लिये अुसी दिन वसन्त पंचमी नहीं होती। ठण्डे खूनवाले मनुष्यके लिये वह अितनी जल्दी नहीं आती।

वसन्त पंचमी प्रकृतिका यौवन है। जिसका रहन-सहन प्रकृतिसे अलग न पड़ गया हो, जो प्रकृतिके रंगमें रंग गया हो, वह मनुष्य बिना कहे ही वसन्त पंचमीका अनुभव करता है। नदीके क्षीण प्रवाहमें अेकाअेक आयी हुआ जोरकी बाढ़को जिस प्रकार हम अपनी आंखोंसे साफ देख सकते हैं, अुसी प्रकार वसन्तको भी आता हुआ हम देख सकते हैं। अलबत्ता, वह अेक ही समय पर सबके हृदयोंमें प्रवेश नहीं करता।

जब वसन्त आता है तो यौवनके अनुमादके साथ आता है। यौवनमें सुन्दरता होती है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि अुसमें हमेशा क्षेम भी होता है। यौवनमें शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यकी रक्षा करना बहुत ही कठिन हो जाता है। यही हालत वसन्तमें भी होती है। तारुण्यकी तरह

वसन्त भी मनमौजी और चंचल होता है। गिन दिनों कभी जाड़ा मालूम होता है, कभी गरमी; कभी जी अूवने लगता है, तो कभी अुल्लास मालूम होने लगता है। खोयी हुअी शक्तिको जाड़ेमें फिरसे प्राप्त किया जा सकता है। मगर जाड़ेमें प्राप्त की हुअी शक्तिको वसन्तमें संचित कर रखना आसान नहीं है। वसन्तमें संयमका पालन किया जाय, तो सारे वर्षके लिये आरोग्यकी रक्षा हो जाती है। वसन्त ऋतुमें जीवमात्र पर अेक चित्ताकर्षक कान्ति छा जाती है, पर वह अुतनी ही खतरनाक भी होती है।

वसन्तके अुल्लासमें संयमकी भापा शोभा नहीं देती; वह सहन भी नहीं होती। परन्तु किसी समय अुसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है। अगर धीण मनुष्य पथ्यसे रहे, तो अुसमें कौन आश्चर्यकी बात है? अुससे लाभ भी क्या? किसी तरह जीवित रहनेमें क्या स्वारस्य है? सुरक्षित वसन्त ही जीवनका आनन्द है।

वसन्त अुड़ाअू होता है। अिसमें भी प्रकृतिका तारुण्य ही प्रकट होता है। कितने ही फूल और फल मुरझा जाते हैं। मानो प्रकृति जाड़ेकी कंजूसीका बदला ले रही हो। वसन्तकी समृद्धि कोअी शाश्वत समृद्धि नहीं। जितना कुछ दिखायी देता है, अुतना टिकता नहीं।

राष्ट्रका वसन्त भी अक्सर अुड़ाअू होता है। कितने ही फूल और फल बड़ी-बड़ी आशाओं दिखाते हैं; लेकिन परिपक्व होनेसे पहले ही मुरझाकर गिर पड़ते हैं। सच्चे वही हैं, जो शरद् ऋतु तक कायम रहते हैं। राष्ट्रके वसन्तमें संयमकी वाणी अप्रिय मालूम होती है, परन्तु वही पथ्यकर होती है।

अुत्सवमें विनय, समृद्धिमें स्थिरता, यौवनमें संयम—यही सफल जीवनका रहस्य है। फूलोंकी सार्थकता किसी बातमें है कि अुनका दर्प फलके रसमें परिणत हो।

वसन्त पंचमीके अुत्सवकी सृष्टि न तो शास्त्रकारों द्वारा हुअी है, और न धर्माचार्योंने अुसे स्वीकार ही किया है। अुने तो कवियों और गायकों, तरुणों और रसिकोंने जन्म दिया है। कोयलने अुसे आमंत्रण दिया है, और फूलोंने अुसका स्वागत किया है। वसन्तके मानी हैं पत्तियोंका गान, आन्न-मंजरियोंकी सुगन्ध, शुभ्र अुभ्रोंकी विविधता और पवनकी चंचलता। पवन तो हमेशा ही चंचल होता है; लेकिन वसन्तमें वह विशेष भावने क्रीड़ा

करता है। जहाँ जाता है वहाँ पूरे जोश-खरोशके साथ जाता है; जहाँ बहता है वहाँ पूरे वेगसे बहता है; जब गाता है तब पूरी शक्तिके साथ गाता है, और थोड़ी देरमें बदल भी जाता है।

वसन्तसे संगीतका नया सत्र शुरू होता है। गायक आठों पहर वसन्तके आलाप ले सकते हैं। वे न तो पूर्व-रात्रि देखते हैं, न अत्तर-रात्रि।

जब संयम, औचित्य और रस तीनोंका संयोग होता है, तभी संगीतका प्रवाह चलता है। जीवनमें भी अकेला संयम स्मशानवत् हो जायगा, अकेला औचित्य दंभरूप हो जायगा, और अकेला रस क्षणजीवी विलासितामें ही खप जायगा। अिन तीनोंका संयोग ही जीवन है। वसन्तमें प्रकृति हमें रसकी बाढ़ प्रदान करती है। जैसे समय संयम और औचित्य ही हमारी पूंजी होनी चाहिये।

फरवरी, १९२३

३४

मंगलमूर्ति भीष्म

[माघ सुदी ८]

आज भीष्माष्टमीका पवित्र दिन है। भारतीय युद्धके बाद वाणोंकी शय्या बनाकर अत्तरायणकी राह देखनेवाले और वीचके अिस समयमें मानव-जातिको धर्मकी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर सकनेवाली राजनीतिका अपदेश देनेवाले अखंड ब्रह्मचारी भीष्माचार्यका यह पुण्यदिन है।

महाभारतकी मंगलमूर्तियां तीन हैं— भीष्म, कृष्ण और व्यास। अिस त्रिमूर्तिमें भी प्रधान स्थान तो भीष्मका ही है। कृष्णकी विभूति तो आखिर दिव्य ही ठहरी; अिसलिये उसे भव्य नहीं कहा जा सकता। व्यास किसी वानप्रस्थकी तरह दूर-दूर ही रहते हैं। समस्त भारत पर अपनी मंगल छाया फैलानेवाले तो धर्मात्मा भीष्म ही हैं। वे सागरके समान गंभीर, हिमालयके समान अत्तुंग-प्रचण्ड और अनन्त आकाशकी तरह शान्त-निर्मल हैं।

भीष्म कृष्णके अुत्तम भक्तोंमें से एक है।

प्रह्लाद-नारद-पराशर-पुण्डरीक-

व्यासाम्बरीप-शुक-शौनक-भीष्म-दाल्भ्यान् ।

रुक्मांगदारुन-वसिष्ठ-विभीषणादीन्,

पुण्यान् जिमान् परम-भागवतान् स्मरामि ॥

अिस तरह हररोज सवेरे अुठकर हम जिन-जिन परम-भागवतोंका स्मरण करते हैं, उनमें भी भीष्मका स्थान कुछ निराला ही है। दूसरे भागवत भगवान्के अधीन रहकर उनकी प्रेरणाके अनुरूप अपना वरताव रखते हैं। भीष्मके भाग्यमें अपने परम प्रभुका अखंड विरोध करना ही वडा था। और अैसा होते हुअे भी उनकी वह भक्ति विरोधी भक्ति नहीं थी।

भीष्म और कृष्णका राष्ट्र-पुरुषके रूपमें विचार करते समय भी उनका आत्यंतिक स्वभाव-भेद स्पष्ट रूपसे दिखायी देता है। दोनों धर्मनिष्ठ, धर्म-परायण और धर्मकार थे; किन्तु दोनोंका जीवन-दर्शन विलकुल भिन्न था। भीष्मका जीवन-तत्त्व बहुत-कुछ प्रभु रामचन्द्रके जीवन-तत्त्व जैसा है। दोनों मर्यादा-पुरुषोत्तम, अपनेको धर्म-परतंत्र समझनेवाले और धर्मपालनके लिये बड़े-से-बड़ा त्याग शीतल वृत्तिसे करनेवाले थे। मानव-जातिके सामने आदर्श प्रस्तुत करनेवाले ये दो ही हैं। दूसरी तरफ श्रीकृष्ण हैं — जैसे प्रतिज्ञा-भंजक वैसे ही मर्यादा-भंजक! अुन्होंने तो मानो यह दिखानेके लिये ही अवतार धारण किया था कि धर्ममार्गके प्रत्येक नियमके लिये अपवाद कैसे हो सकते हैं। वावू वंकिमचन्द्रने श्रीकृष्णका एक जीवन-चरित्र लिखा है। वह चरित्र नहीं, बल्कि श्रीकृष्ण पर किये जानेवाले आक्षेपोंका एक बड़ा खंडन ही है। यदि न्याय-निपुण लोग अपना बुद्धि-सर्वस्व लगाकर श्रीकृष्णकी पैरवी न करें, तो श्रीकृष्णके अेक भी कामका औचित्य ध्यानमें न आये। मृत्यु-समयकी अमह्य वेदनाओंसे पीड़ित बछड़ेको मृत्युके हवाले करके जिस तरह गांधीजीने अहिंसा-धर्मका पालन किया था, अुसी तरहका कोयी काम करके श्रीकृष्णने हर वार धर्मका पालन किया होगा। अैसा प्रतीत होता है। धार्मिक सिद्धान्तोंके मूलमें पहुंचकर उनके तत्त्वार्थका पालन करनेके लिये शब्दार्थका विरोध किन्तु तरह किया जाय, अिसीका अध्ययन श्रीकृष्णने किया होगा।

देवव्रत (भीष्माचार्य) ने अैन जवानीमें अेक भीष्म-प्रतिज्ञा करके राज्य और स्त्रीका त्याग किया। अिस अेक प्रतिज्ञा-पालनके लिये अुन्होंने नव

तरफसे अपनी हानि होने दी। प्रतिज्ञा-पालनका प्रयोजन पूरा होनेके बाद भी अन्होंने अुस प्रतिज्ञाका त्याग नहीं किया। और अुनका नसीब भी कैसा अजीब था? हालांकि अुन्होंने राज्यका स्वीकार नहीं किया, फिर भी अुसका सारा भार तो अुन्हेंको ढोना पड़ा। भाभी-भाभीमें होनेवाले झगड़ोंको टालनेके लिये अुन्होंने व्याह करना टाला; लेकिन अुन्हें कभी नियोग और कभी व्याह कराने पड़े। अधिक क्या कहें? स्वयंवरोंमें भाग लेकर यौवन-संपन्न लड़कियोंको भी वे जीत लाये! और भाभी-भाभीके बीचमें जिस झगड़ेको टालनेके लिये अुन्होंने अखंड ब्रह्मचर्यका स्वीकार किया था, अुसी झगड़ेके कारण अपनी अिच्छाके विरुद्ध असत्पक्षके लिये लड़कर और लाखों लोगोंका संहार करके अुन्हें अपने प्राण त्यागने पड़े। जिस तरह भीष्म-प्रतिज्ञा जगत्के लिये आदर्शभूत है, अुसी तरह अुनका ब्रह्मचर्य भी अुतना ही अलौकिक है। जिस ब्रह्मचर्यके बल पर वे परम ज्ञानी, परम समर्थ और धर्मज्ञ बने; यही नहीं बल्कि अिच्छा-मरणवाले भी बन गये। लेकिन अुनकी अुस प्रतिज्ञासे कौरव-कुलको या आर्य-संस्कृतिको क्या लाभ हुआ? और नहीं तो कम-से-कम अितना संतोष तो अुन्हें मिलना चाहिये था कि 'मैं सत्यके लिये युद्ध कर रहा हूं!' अुन्होंने राज्य-विषयक अपना अधिकार छोड़ दिया और स्वयं राजाके सेवक बने। अपनी सारी वफादारी अुन्होंने राजगद्दीको अर्पित कर दी। 'मैं जिस गद्दीका अन्न खाता हूं, जिसलिये गद्दीकी जो आज्ञा हो, वह मुझे सिर-माथे चढ़ानी चाहिये।' जिस तरहकी वैधानिक वृत्ति अुन्होंने धारण की। सचमुच भीष्म-जैसा कट्टर विधानवादी (constitutionalist) शायद ही कोअी हुआ होगा। लेकिन विधानको ही देवता समझकर आचरण करनेसे अुन्होंने राष्ट्रहितका तो सत्यानाश ही होने दिया।

२

महाभारतके धर्म-धुरंवर दो हैं—श्रीकृष्ण और भीष्म। श्रीकृष्णका अुपदेश भगवद्गीतामें समाया हुआ है। भीष्मका अुपदेश कहीं अेकत्र किया हुआ नहीं मिलता। अुनका विख्यात राजधर्म शान्तिपर्वमें है। लेकिन भीष्मने अपनी सिखावनका सारा निचोड़ देहत्याग करते समय कही हुआ तीन ही पंक्तियोंमें दे दिया है। महाभारतने भीष्माचार्यको अिच्छा-मरणी कहा है। भीष्मको राजा युधिष्ठिरसे जो कुछ कहना था, वह सब अुन्होंने कह दिया। अुसके बाद भगवान् श्रीकृष्णकी ओर मुड़कर अुन्होंने भगवान्से देहत्यागकी

अनुज्ञा मांगी। पितृभक्त और निष्पाप भीष्मको श्रीकृष्णने अनुज्ञा दे दी। सभी पांडव पितामहके आसपास जमा हुये। उस समय उनको और उनकी मारफत सब भारतवासियोंको भीष्माचार्यने नीचे लिखे वचन कह सुनाये :

प्राणानुत्स्रष्टुमिच्छामि तत्रानुजातुमर्हथ ।
 सत्येषु यतितव्यं वः सत्यं हि परमं बलम् ॥
 आनृशंस्यपरैर्भाव्यं सदैव नियतात्मभिः ।
 ब्रह्मण्यैर्वर्मशीलैश्च तपोनित्यैश्च भारताः ॥

“सत्यके लिये निरंतर प्रयत्न करो। सत्य ही सबसे श्रेष्ठ बल है। हमेशा अपने मन पर, हृदय पर काबू रखकर दयाभावको अपनाओ। दुष्ट वृत्तिके अवीन मत होओ। जनताको ज्ञान और चारित्र्यकी शिक्षा देनेवाले वर्गका हमेशा पोषण करते रहो। धर्मकी प्रेरणाके अनुसार चलो, और हमेशा अपनी सारी शक्तियोंका विकास करते रहो।”

आज भी भारतवासियोंके लिये दूसरा कौनसा उपदेश हो सकता है ?

१९३१

भीष्माष्टमी

माघ सुदी ८

१ समय

यह पुराना त्यौहार करीब-करीब भुलाया जा चुका था। अब कहीं-कहीं जिसका पुनरुज्जीवन होने लगा है। हमारे यहां भी वैसा प्रयत्न होना चाहिये। भीष्म ब्रह्मचारी, दृढ़व्रत, भगवद्-भक्त और नीतिज्ञ थे। महानारतमे भीष्मकी जीवनीका निचोड़ निकालकर वह गंगा-प्रसाद विद्यार्थियोंको देना चाहिये; खासकर कर्ण और भीष्मका अंतिम संवाद। बुद्ध, सात्त्विक आहार करके जिस दिन प्रार्थनापूर्वक ब्रह्मचर्यका व्रत लेना चाहिये। अगर यह त्यौहार समाजमें जड़ पकड़े, तो जिसमें बहुत-सी बातें जोड़ी जा सकती हैं। आदर्श ब्रह्मचारियोंकी नामावली तैयार करके आजके दिन उनकी जीवनीयोंका परिचय कराया जाय। बुदाहरणके लिये, रामकृष्ण परमहंस और शारदादेवी, आसा, शुकदेव, योगवासिष्ठकी चुड़ाला, हनुमान, वनवानी लक्ष्मण, स्वामी रामदास आदि।

जिस दिन लाठीकी कवायद और संघ-व्यायाम रखा जा सकता है।

महाशिवरात्रि

[माघ वदी १४]

१. हरिणोंका स्मरण

एक विशाल वन था। बीस-तीस, तीस-तीस कोस तक न झोंपड़ीका पता था, न मुसाफिरोके कामचलाऊ चूल्होंका। वनमें एक रमणीय तालाव था। तालावके पास कुछ हरिण रहते थे। तालावके किनारे वेलका एक पेड़ था। उस पेड़के नीचे पाषाण-रूपमें महादेवजी विराजमान थे। हरिण रोज तालावमें नहाते, महादेवजीके दर्शन करते और चरने जाते। दोपहरको आकर वेलके पेड़के नीचे विश्राम करते; शामको तालावका पानी पीकर महादेवजीके दर्शन करते और सो जाते। विना कोसी शास्त्र पढ़े ही हरिणोंको धर्मका ज्ञान हुआ था। जिसलिजे वे संतोषपूर्वक अपना निर्दोष जीवन व्यतीत करते थे।

माघका महीना था। कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिनकी बात है। एक विकराल व्याध उस वनमें घुसा। शाम हुआ ही चाहती थी। व्याध बहुत ही भूखा था। व्याधोंकी भूख असी-वैसी नहीं होती। अगर अन्हें कुछ न मिले, तो वे कच्चा मांस ही खाने बैठ जाते हैं। लेकिन हमारे जिस व्याधको अपनी भूखका दुःख न था। 'घरमें बाल-बच्चे भूखे हैं, अन्हें क्या खिलाऊँ? क्या मुंह लेकर घर जाऊँ? अगर शिकार न मिला, तो खाली हाथ घर जानेकी अपेक्षा रात वनमें ही रह जाना अच्छा होगा — शायद कुछ हाथ लग जाय।' जिस तरह सोचता हुआ वह तालावके किनारे आया और वेलके पेड़ पर चढ़कर बैठ गया।

अपने बाल-बच्चोंके भरण-पोषणके लिजे स्वयं बहुत कष्ट अुठाने और खतरोंका सामना करनेको ही वह अपना धर्म समझता था। जिससे अधिक व्यापक धर्मका ज्ञान उसे नहीं था।

रात हुआ। कृष्णपक्षकी घोर अंवेरी काली रात। कुछ दिखायी न पड़ता था। व्याधने तालावकी ओर देखनेमें रुकावट डालनेवाले वेलके पत्तोंको तोड़-तोड़कर नीचे फेंक दिया। अितनेमें वहां दो-चार हरिण पानी पीने आये। पेड़ पर बैठे व्याधको देखकर वे चौंक पड़े और निराशाभरे स्वरमें बोले — "हे व्याध, अपने घनुप पर वाण न चढ़ा। हम मरनेको तैयार

हैं, पर हमें जितना समय दे कि हम घर जाकर अपने बाल-बच्चों और सगे-संबंधियोंसे मिल आयें। सूर्योदयसे पहले ही हम यहां हाजिर हो जायेंगे।”

व्याघ्र खिल-खिलाकर हंस पड़ा। बोला—“क्या तुम मुझे बुद्ध समझते हो? क्या मैं जिस तरह अपने हाथ आये शिकारको छोड़ दूँ? मेरे बाल-बच्चे तो अंधर भूखसे तड़प रहे हैं।”

“हम भी तेरी तरह बाल-बच्चोंका ही खयाल करके जितनी छुट्टी चाह रहे हैं। अक वार आजमाकर तो देख कि हम अपने वचनका पालन करते हैं या नहीं?”

व्याघ्रके मनमें श्रद्धा और कौतुक जाग उठा। ठीक सूर्योदयसे पहले लौट आनेकी ताकीद करके उसने अर्ध हरिणोंको घर जाने दिया, और बुद्ध बेलके पत्तोंको तोड़ता हुआ रातभर जागता रहा। श्रद्धावान् व्याघ्रके हाथों अपने सिर पर पड़े विल्वपत्रोंसे महादेवजी संतुष्ट हुए।

ठीक सूर्योदयका समय हुआ, और हरिणोंका अक बड़ा दल वहां आ पहुंचा।

हरिण घर गये, बाल-बच्चोंसे मिले, अपने सोंगोंसे अक-दूसरेको खुजलाया, नन्हें बच्चोंको प्रेमसे चाटा, अन्हें व्याघ्रकी कहानी कह सुनायी और विदा मांगी।

“दुष्ट व्याघ्रके साथ वचन-पालन कैसा? ‘शठं प्रति शाठ्यं कुर्यात्।’ पैरोंमें जितना जोर हो अतना सब जोर लगाकर यहाँते चुपचाप भाग जाओ!” —अैसी सलाह देनेवाला अर्धमें कोअी न निकला। सगे-संबंधियोंने कहा—“चलो, हम भी साथ चलते हैं। स्वेच्छासे मृत्यु स्वीकार करने पर मोक्ष मिलता है। आपके अपूर्व आत्म-यज्ञको देखकर हम पुनीत होंगे।”

बाल-बच्चे भी साथ हो लिये। मानो नव व्याघ्रकी हिंस्रताकी परीक्षा करने ही निकले हों!

सूर्योदयसे पहले ही सारा दल वहां आ पहुंचा। रातवाले हरिण आगे बढ़े और बोले—“लो भायी, हम वधके लिये तैयार हैं।” दूसरे हरिण भी बोल उठे—“हमें भी मार डालो! अगर हमें मारनेने तुम्हारे बाल-बच्चोंकी भूख शान्त होती है तो अच्छा ही है।” व्याघ्रकी हिंसावृत्ति रात्रिकी तरह लुप्त हो गयी। सारे दिनके अपवाप्त और सारे रातके जागरणसे उसकी चित्तवृत्ति अन्तर्मुख हुयी थी। तिस पर अिन प्रतिज्ञा-पालक हरिणोंका

धर्माचरण देखकर वह दंग रह गया। उसके हृदयमें नया प्रकाश फैला। उसे प्रेम-शौर्यकी दीक्षा मिली। वह पेड़से अतरा और हरिणोंकी शरण गया। दो पैरवालेने चार पैरवाले पशुओंके पैर छुअे। आकाशसे श्वेत पुष्पोंकी वृष्टि हुअी। कैलाशसे अेक वड़ा विमान अतर आया। व्याध और हरिण अुसमें बैठे और कल्याणकारिणी शिवरात्रिका माहात्म्य गाते हुअे शिवलोक सिधारे। आज भी वे दिव्य रूपमें चमकते हैं।*

महाशिवरात्रिका दिन मानो अिन धर्मनिष्ठ, सत्यव्रत हरिणोंके स्मरणका ही दिन है।*

मार्च, १९२२

२. अेक पत्र

यही बात बार-बार मनमें अुठ रही है कि आज आप लोग महाशिवरात्रिका त्यौहार किस तरह मना रहे होंगे? शिवरात्रिका त्यौहार अुत्सव नहीं, बल्कि व्रत है। शिवरात्रिका त्यौहार व्रत समझा जाता है, अिसलिअे वैष्णव लोग अुसके वारेमें अुदासीन रहते हैं। शैव-वैष्णवोंका यह भेद अेक जमानेमें हमारे देशमें बहुत ही तीव्र था। जब तक मनुष्यमें लड़नेकी वृत्ति है, तब तक चाहे जिस भेदको आगे करके वह लड़ेगा। दक्षिण हिन्दुस्तानके शैव-वैष्णवोंने पुराने जमानेमें अेक-दूसरेका कुछ कम खून नहीं वहाया है।

* मृगनक्षत्र और व्याध।

* अेकादशी, अष्टमी, चतुर्थी और शिवरात्रि ये सब हिन्दू महीनोंमें हमेशा आनेवाले त्यौहार हैं। वैष्णवोंने अेकादशीको सवके लिअे लोकप्रिय बना दिया है। गणपतिके अुपासक विनायकी और संकष्टी चतुर्थीका व्रत रखते हैं। देवीके अुपासक अष्टमीका व्रत रखते हैं। शिवरात्रि हर महीने कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन आती है। शैव लोग शिवरात्रिका व्रत रखते हैं। जिस तरह अेकादशियोंमें आषाढी और कार्तिकी अेकादशियां महाअेकादशियां हैं, अुसी तरह माघ महीनेकी शिवरात्रि महाशिवरात्रि है।

प्रत्येक मासके प्रत्येक त्यौहारका अपना माहात्म्य और अुसकी अपनी अेक कथा होती है। अुनमें से महाशिवरात्रिकी कथा अूपर दी गअी है।

कहानीके अिस पुरातन क्षेत्रकी ओर लोक-कथाओंका संग्रह करनेवाले संशोधकोंका ध्यान जाना चाहिये।

शिवरात्रिका माहात्म्य तो आप सब लोग जानते ही हैं। 'हरिणोंका स्मरण' के संबंधमें आपने पढ़ा और सुना ही है। वचन-पालनकी टेक, मातृ-वात्सल्य और दूसरोंके लिये स्वात्मार्पण—यह सिखावन जिस कहानीसे आपने ली ही होगी। लेकिन आज मेरे मनमें शिवरात्रिका महत्त्व दूसरी दृष्टिसे स्फुरित हो रहा है।

हमारे धर्ममें जीवदयाकी सिखावन सर्वोच्च और शुद्ध भूमिका परसे दी गयी है। तिर्यक् यानी मनुष्येतर जीव भी अीश्वरके ही बालक हैं; अीश्वरके हृदयमें उनके प्रति भी अतना ही वात्सल्य रहता है, जितना हमारे प्रति; मूक पशु-पक्षियोंमें भी हमारी ही तरह भावनाओं होती हैं; अन्हें दुःखी बनाना अधमता है; पशुओंको पीड़ा पहुंचानेसे अीश्वर विशेष रूपसे नाराज होता है—आदि बातोंकी सीख हमारे धर्ममें अनेक सुन्दर और प्रभावकारी ढंगोंसे दी गयी है। हमारा यह धर्म-सिद्धान्त है कि पशु हमारी दयाके पात्र नहीं, वरन् प्रेमके अधिकारी हैं। जीवदया नहीं, बल्कि जीवके प्रति आत्मौपम्यवाली प्रेमकी भावना हमारे धर्मको अभीष्ट है, पसन्द है।

जीवप्रेमके प्रथम हिमायती हैं हमारे वाल्मीकि। अन्होंने रामायणकी कथामें देवता, राक्षस, मनुष्य आदिके साथ पशु-पक्षियोंको भी बराबरीका स्थान दिया है। तिर्यक् योनिमें भी वीर, कूटनीतिज्ञ, साधु और प्रेम-सेवक होते हैं, जिसके बारेमें वाल्मीकिने कुछ अैसे ढंगसे गीत गाये हैं, मानो वे कोअी नयी बात कहते ही न हों—मानो विलकुल स्वाभाविक बातें लिख रहे हों! भक्त-शिरोमणि हनुमान, अग्र-शासन सुग्रीव, आर्तघ्राण जटायु और सेनापति जाम्बवानके विषयमें हमारे मनमें दयाभाव नहीं, आदरभाव ही अत्युन्नत होता है। हम यह भी भूल जाते हैं कि वे पशु-पक्षी हैं। यह समभाव ही जीवप्रेमकी सच्ची बुनियाद है।

वसिष्ठ और कामवेनु, दिलीप और नन्दिनी, नेबला और राजसूय यज्ञ, गज और ग्राह, वेदकी सरमा और चोरी करनेवाले पणि लोग (फिनी-शियन्स), धर्मराजका श्वान, नल-दमयंतीके हंस और कर्कोटक, भगवान् मनुको बचानेवाला मत्स्य, प्रभु रामचन्द्रकी मदद करनेवाली गिलहरी—अमी अेक-दो नहीं बल्कि असंख्य घटनाओंके वर्णन हमारे धर्मग्रंथोंमें किये गये हैं। अुनसे प्राणियोंके प्रति समभाव दृढ़ होता है। हमारे कअी अवतार भी मनुष्येतर हैं। जातक-कथाओं, पंचतंत्र, हितोपदेशकी कहानियां आदि सब

बिस्ती दिशामें काम करती हैं। 'हरिणोंका स्मरण' भी हममें मनुष्येतरोके प्रति प्रेम और समभाव अल्पन्न करता है।

तो शिवरात्रिके दिन हम क्या करें? सिद्धैया कहेंगे — "गोरक्षाके लिये २,००० गज सूत कातें।" किशोरलालभाभी कहेंगे — "अपने आश्रमके लावारिस कुत्तोंको हम क्यों न पालें? अगर हरअेक कुत्तेको यह महसूस होने लगे कि अुसे अपना समझकर खिलाने-पिलानेवाला यहां कोबी है, तो वह आर्य बनेगा और नालायक कुत्तोंको यहां आने न देगा।" डाह्याभाभी कहेंगे — "सबसे पहले जहां तक हो सके, गाड़ीमें न बैठनेका और अुसमें कम-से-कम बोझ लादनेका नियम बनायें, तो हमारा जीवप्रेम सार्थक होगा।" मगनलालभाभी कहेंगे — "लड़के कुत्तोंके पीछे पड़कर अुन्हें मारते हैं; अगर अुन्हें रोकां जाय तो वह काफी होगा।" ठाकोरभाभी कहेंगे — "कमरे साफ रखकर मकड़ी बगैराके जाले बनने ही न दिये जायं, तो वह जीव-दयाका अेक सुन्दर अंग होगा।" मुझ-जैसा कहेगा — "रातके समय नदीके पानीमें जाकर अुसके अन्दर सोयी हुअी मछलियोंको तकलीफ न दी जाय, तो शिवरात्रिके दिन मछलियोंके लिये भी शिवरात्रि रहेगी।" शंकर कहेगा — "गरमीके दिनोंमें चिड़ियोंके लिये पीनेका पानी रखना जरूरी है।" प्रत्येक प्रस्तावमें कुछ-न-कुछ सुन्दरता है, और ये सभी नियम आश्रम-जीवनमें शोभा देनेवाले हैं।

तो कहिये, शिवरात्रिका स्मरण करके आप कौनसा नया व्रत लेंगे? यह काम प्रेमका है, और अिसे प्रेमसे करना है। यह जरूरी नहीं कि लिया हुआ व्रत प्रकट किया ही जाय। आप स्वयं अुसे चुन लें, और अुसके अनुसार अुत्साहके साथ बरताव करने लेंगे।

महाशिवरात्रि

माघ वदी १४

आधा दिन

यह अपरिग्रह और जीवदयाका त्यौहार है। महाशिवरात्रिके दिन अकेले शिव-अुपासक ही नहीं, बरन् सभी लोग अुपवास रखें, और अिस बात पर विचार करें तो अच्छा हो कि अपने रोज-रोजके जीवनमें अनावश्यक चीजोंका कितना त्याग किया जा सकता है। हमारा सबसे बड़ा परिग्रह लोभ और आलस्यका है। अुसे कम करनेका अिलाज खोजनेमें आजका कुछ समय

खर्च किया जाय तो वह अिष्ट होगा। अपरिग्रही महादेवजीके ढगनोंको जानेका रिवाज जरूर ही जारी रखने जैसा है। महादेवजीका द्वार हमेशा मुक्त रहता है। आजके दिन शिक्षक महादेवजीकी कोठी अच्छी धर्म-बोधक कहानी लड़कोंको सुनायें। वे अुन्हें कारण देकर समझायें कि क्यों महान्दकों आमका मौर चढ़ाना ठीक नहीं है।

[यह तिथि अुत्तर भारतमें फाल्गुन कृष्ण १४ होती है।]

३६

गुलामोंका त्यौहार

[फाल्गुन शुदी १५]

प्रत्येक त्यौहारमें कुछ-न-कुछ ग्रहण करने योग्य अवश्य होता है। लेकिन क्या आजकलकी होलीसे भी कुछ शिक्षा मिल सकती है? पिछले तीस-पच्चीस वरसोंमें यह त्यौहार जिस ढंगसे मनाया गया है, अुमे देखने हुअे तो अिसके विषयमें किमी तरहका अुत्साह अुत्पन्न नहीं हों नयन्ता। न अिसका प्राचीन अितिहास और न पौराणिक कथाएँ ही अिम त्यौहार पर कोठी अच्छा प्रकाश डालती हैं। फिर भी यह तो स्वीकार करना ही चाहिये कि होली अेक प्राचीनतम त्यौहार है। जाड़ेके समाप्त होने पर अेक जबरदस्त होली जलाकर आनन्दोत्सव मनानेका रिवाज हर देशमें और हर जमानेमें मौजूद रहा है। अिस अुत्सवमें लोग संयमकी लगाम ढाली छोड़कर स्वच्छन्दताका थोड़ा आस्वाद लेना चाहते हैं। हिन्दुओंमें अकेले मनुष्योंकी ही जाति नहीं होती, बल्कि देवताओं, पशु-पक्षियों और त्यौहारोंकी भी अपनी जातियाँ होती हैं। स्वर्गके अष्टावसु जातिके वैश्य हैं, नाग और कद्रूतर व्रीह्मण होते हैं, और तोता बनिया माना जाता है। अिसी तरह होलीका त्यौहार शूद्रोंका त्यौहार है। क्या अिमोलिअे किमी जमानेके विगड़े हुअे शूद्रों द्वारा होलीका यह कार्यक्रम बनाया गया था, और अुनके हकोंको कायम रखनेके लिये दूसरे वर्णोंने अुसे स्वीकार कर लिया था? पुराणोंमें अेक नियम है कि होलीके दिन अष्टूतोंको छूना चाहिये। भला अिमका क्या अुद्देश्य रहा होगा? द्विज लोग संस्कारी अर्थात् संयमी और शूद्र स्वच्छन्दी हैं, क्या

अिसी विचारसे होलीमें अितनी स्वच्छंदता रखी गयी है? होलीके दिन राजा-प्रजा अेक होकर अेक-दूसरे पर रंग अुड़ाते हैं। क्या अिसका आशय यह है कि सालमें कम-से-कम चार-पांच दिन तो सब लोग समानताके सिद्धान्तका अनुभव करें?

होली यानी काम-दहन; वैराग्यकी साधना। विषयको काव्यका मोहक रूप देनेसे वह बढ़ता है। अुसीको वीभत्स स्वरूप देकर, नंगा करके, समाजके सामने अुसका असली रूप खड़ा करके, विषय-भोगके प्रति घृणा अुत्पन्न करनेका अुद्देश्य तो अिसमें नहीं था? जाड़ेभर जिसके मोहपाशमें फंसे रहे, अुसकी दुर्गति करके, अुसे जलाकर और पश्चात्तापकी राख शरीर पर मल-कर वैराग्य धारण करनेका अुद्देश्य तो अिसमें नहीं था?

अिसकी जड़में प्राचीन कालकी लिंग-पूजाकी विडम्बना तो नहीं थी?

लेकिन होलीका अर्थ वसन्तोत्सव भी तो है। जाड़ा गया, वसन्तका नूतन जीवन वनस्पतियोंमें भी आ गया। अतः जाड़ेमें जमा करके रखी हुअी तमाम लकड़ियोंको अेकत्र करके आखिरी बार आग जलाकर ठण्डको विदा करनेका तो यह अुत्सव नहीं है? और यह दुण्डा राक्षसी कौन है? कहते हैं कि यह नन्हें वच्चोंको सताती है। होलीके दिन जगह-जगह आग सुलगाकर, शोर-गुल मचाकर अुसे भगा दिया जाता है। अिसमें कौनसी कविकल्पना है? क्या रहस्य है?

लोगोंमें अश्लीलता तो है ही। वह मिटाये मिट नहीं सकती। कुछ लोगोंका खयाल है कि 'तुष्यतु दुर्जनः' न्यायके अनुसार सालमें अेक दिन दे देनेसे वह हीन वृत्ति वर्षभर कावूमें रहती है। अगर यह सच है, तो यह अेक भयंकर भूल है। आगमें घी डालनेसे वह कभी कावूमें नहीं रहती। पाप और अग्निके साथ स्नेह कैसा? वसन्तका अुत्सव अीश्वर-स्मरण पूर्वक सौम्य रीतिसे मनाना चाहिये। क्या दीवालीमें अुत्सवका आनन्द कम होता है? क्या लकड़ियोंकी होली जलानेसे ही सच्चा वसन्तोत्सव मनाया जा सकता है? यदि यह माना जाय कि होलिका अेक राक्षसी थी और अुसे जलानेका यह त्यौहार है, तो हम अुसे चुराकर लायी हुअी लकड़ियोंसे नहीं जला सकते। होलिका राक्षसी तो प्रह्लादकी निर्बेर पवित्रतासे ही जल सकती है।

हमें यह सोचना चाहिये कि हमारे त्यौहार हमारे राष्ट्रीय जीवन और हमारी संस्कृतिके प्रतिबिंब हैं या नहीं? मनुष्यमात्र अुत्सव-प्रिय है। परंतु

स्वतंत्र मनुष्योंका उत्सव जुदा होता है और गुलामोंका जुदा । जो स्वतंत्र होता है, जिसके सिर जिम्मेदारी होती है, जिसको अधिकारका प्रयोग करना होता है, उसकी अभिरुचि सादी और प्रतिष्ठित होती है । जो परतंत्र होता है, जिसे अपने उत्तरदायित्वका ज्ञान नहीं, जिसके जीवनमें कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं, उसकी अभिरुचि वेढंगी और अतिरेकयुक्त होती है । अेक ग्रंथकारने लिखा है कि स्त्रियोंको तरह-तरहके रंग जो पसन्द आते हैं और रंग-विरंगी व चित्र-विचित्र पोशाककी ओर उनका मन जो दौड़ा करता है, उनका कारण उनकी परबगता है । यदि स्त्री स्वाधीन हो जाय, तो उसका पहनावा भी सादा और सफेद हो जायगा । स्त्रियोंके संबंधमें यह बात सच हो या न हो, मगर जनता पर तो यह भलीभांति चरितार्थ होती है । जिस जमानेमें जनता अधिकार-हीन, परतंत्र, बालवृत्तिवाली और गैर-जिम्मेदार रही होगी, उसी जमानेमें मूर्खतापूर्ण कार्यों द्वारा इस त्यौहारको मनानेकी यह प्रथा प्रचलित हुआ होगी ।

रोमन लोगोंमें सैटर्नलिया नामसे गुलामोंका अेक त्यौहार मनाया जाता था । उस दिन गुलाम अपने मालिकके साथ खाना खाते, जुआ खेलते, आज्ञादीसे बोलते-चालते और खुशियां मनाते । उस दिन अितना आनंद मनानेके बाद फिर अेक साल तक गुलामीमें रहनेकी हिम्मत उनमें आ जाती थी ।

स्वराज्यवादी जनताको अवििक गंभीर बनना चाहिये । अपनी योग्यता क्या है, अपनी स्थिति कैसी है, आदि बातोंका विचार करके उसको अपना जीवन विताना चाहिये जो उसे शोभा दे । अगर वसन्तोत्सव मनाना है, तो समाजमें तथा जीवन पैदा करके यह त्यौहार मनाना चाहिये । अगर काम-दहन करना है, तो ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करके पवित्र बनना चाहिये । यदि होलिकोत्सव गुलामीके लिये अेकमात्र सांत्वनाका साधन हो, तो स्वराज्यकी खातिर उसे तुरन्त ही मिटा देना चाहिये । अगर भापाके भण्डारमें गालियोंकी पूंजी कम हो जाय, तो उसके लिये शोक करनेकी कोअी जरूरत नहीं । होलीके दिनोंमें शहरों और गांवोंकी सफाई करनेमें हम अपना समय बिताना सकते हैं । लड़के कसरत करने और बहादुरीके मरदाने खेल खेलने तथा शरावके व्यसनमें फंसे हुए लोगोंके मुहल्लोंमें जाकर उन्हें शरावब्तोरी छोड़ देनेका व्यक्तिगत अपदेश देनेमें इस दिनका अपुयोग कर सकते हैं । स्त्रियां स्वदेशीके गीत गा-ना कर खादीका प्रचार कर सकती हैं ।

प्रत्येक त्यौहारका अपना अेक स्वराज्य-संस्करण अवश्य होना चाहिये, क्योंकि स्वराज्यका अर्थ है आत्मशुद्धि और नवजीवन।

१२-३-'२२

होली

फागुन सुदी १५

१ दिन

होलीका त्यौहार है तो हटा देने लायक, क्योंकि अिस दिनके पुराने कार्यक्रममें अुन्नतिका अेक भी अंश नहीं। फिर भी यह त्यौहार सारे देशमें अितना अधिक रूढ़ और लोकप्रिय है कि अगर हम अिसका अुपयोग न कर सकें, तो वह हमारा ही दोष समझा जायगा। आज तक होलीके दिन संस्कारी समझे जानेवाले लोग भी असंस्कारी बनते रहे हैं। अगर आगेसे संस्कारी लोग असंस्कारी लोगोंकी सेवा करनेमें अिस दिनका अुपयोग करें, तो यह त्यौहार सार्थक हो जायगा। होलीके दिन हम हरिजनोंको विशेष रूपसे अपने यहां बुलायें, समान भावसे अुनका स्वागत करें, अुनके सुख-दुःखको समझें, या हरिजनोंकी वस्तीमें जाकर अुन्हें कोरा अुपदेश करनेके वजाय अुनके प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूति दिखायें। अुनके लड़कोंको अपने यहां खेलनेके लिये बुलायें और अुनके साथ कवड्डी वगैरा खेलें।

होलीका त्यौहार मैदानी और मरदाने खेलोंके लिये विशेष अनुकूल है। दिनमें तरह-तरहकी कसरतोंके दंगल रखे जायं। अुसके बाद सब मिलकर भोजन करें। रातको चांदनीमें कवड्डी खेले जाय।

अच्छा हो यदि होली जलानेकी प्रथा अुठा दी जाय। सिर्फ शौकके लिये जरूरी चीजें जलाना हमारे समाजको न पुसायेगा। घास, गोबर आदि खेतीके कामकी चीजें जलानेमें खेतीके प्रति लापरवाही प्रकट होती है, फिर भी छात्रोंको यह समझा दिया जाय कि गोशालामें धुआं करके मच्छरोंसे जानवरोंकी रक्षा करनी चाहिये।

होलीके दिन कच्चे आमकी भांति-भांतिकी चीजें बनाकर खानेमें औचित्य है।

अिस दिन अपने संपर्कमें आनेवाले मजदूरों, नौकरों और दूसरे गरीब लोगोंके साथ बैठकर खाना खानेकी प्रथा बहुत ही अच्छी है। खानेमें अैसी ही चीजें रहें, जो सबको मिल सकती हों।

बहुत अच्छा हो यदि होलीके दिन मद्यपान-निषेधका काम भी खास तौरसे किया जाय। जिस दिन हरिजनोंमें पैदा हुअे अनेक साधु-सन्तोंके चरित्रोंका कीर्तन विशेष रूपसे किया जाना चाहिये। जैसे, गुहक, नन्दनार, चोखामेळा, कनकदास, बळ आदि।

जिस दिन हरिजन-सेवक अकनाय महाराजके वारेमें अवश्य कहना चाहिये।

३७

धर्म-रक्षक शिवाजी

[फागुन वदी ३]

अेक वार सत्याग्रहाश्रममें शिवाजी महाराजकी जयन्ती मनायी गयी थी। अुस अवसर पर पूज्य गांधीजीने कहा था—“शिवाजी महाराजके वारेमें अितिहासकार क्या कहते हैं, अुस तरफ ध्यान देनेकी अपेक्षा मैं जिस बातको अधिक महत्त्व दूंगा कि सन्तोंने अुनके संबंधमें क्या कहा है। अगर सन्त पुरुषोंने अुन्हें अच्छा प्रमाण-पत्र दिया हो, तो मेरे लिये वह काफी है।”

शिवाजी महाराजके विषयमें संत तुकाराम और समर्थ रामदासने जो आदर-वचन कहे हैं, वे सचमुच बहुत कीमती हैं; क्योंकि वे दोनों शिवाजीके समकालीन थे। महाराष्ट्रके महाकवि मोरोपन्तने शिवाजीकी तुलना जनक राजाके साथ की है। अुमे हम अतिशयोक्ति समझकर छोड़ दें। शिवाजी महाराज जितने राज्य-संस्थापक थे, अुतने ही धर्म-रक्षक भी थे। अुनके द्वारा ब्राह्मणोंको विशेष दान दिये जानेकी कोअी घटना नहीं मिलती। अुन्होंने कहीं कोअी गोशाला भी नहीं बनवायी थी। फिर भी महाराष्ट्रको जनताने अुन्हें ‘गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक छत्रपति’ की अुपाधि प्रदान की थी।

अीस्वी सन् ७०० में, जब मुसलमान हिन्दुस्तानमें आने लगे थे, जिस देशकी हालत कुछ अच्छी नहीं थी। लोगोंमें आपसी फूट, जातिकी अुच्च-नीचताका अभिमान, बहम, आलस्य और प्रमादका साम्राज्य सर्वत्र फैला

हुआ था। श्री शंकराचार्यने हिन्दू-समाजको संगठित करनेका जो प्रयत्न शुरू किया था, उसे अीस्वी सन् १५०० तक अनेक सन्तोंने आगे बढ़ाया। वेदान्तके सूर्य और भक्तिकी चांदनीके प्रभावसे हिन्दूधर्मका सनातनत्व फिर एक बार चमक उठा। फिर भी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति पूरी तरह सुधरी नहीं थी। जिसलिये बहुतसे लोग धर्मान्तर करने लगे। जिसमें जुल्म और जबरदस्तीका अंश कितना ही क्यों न रहा हो, तो भी यह निश्चित बात है कि सिर्फ़ अुसी कारणसे अितने ज्यादा लोग धर्मान्तरित न किये जाते। कभी कारीगर जातियां विना किसी कारणके अस्पृश्य समझी जानेसे अूब गयी थीं। अुन्हें सामाजिक अत्याचारोंके अलावा सरकारी जुल्म-जबरदस्तियां भी बहुत वरदाश्त करनी पड़ती थीं। अितिहासका सबूत है कि अिस तकलीफसे परेशान होकर कभी जातियां पूरी-की-पूरी दूसरे धर्मोंमें चली गयीं। और अिस मार्गसे वे अपने अस्पृश्यताके कलंकसे मुक्त हो सकीं।

मुसलमानोंका जो हमला पंजावसे शुरू हुआ, वह पूर्वमें बंगाल और अुत्कल तक पहुंचा और दक्षिणमें पांड्य, केरल और चोल लोगोंके राज्यों तक फैल गया। अीस्वी सन् १३०० तक यह आक्रमण लगभग पूरा हो गया। अुस वक्त दक्षिणमें अनागोंदी और हम्पीकी तरफ होयसळ वंशने हिन्दू संगठनका एक बड़ा जबरदस्त और सफल प्रयोग करके विजयनगर साम्राज्यकी स्थापना की। यह साम्राज्य सिर्फ़ दो सौ बरस तक चला, लेकिन बगदादके बादशाह और चीनके सम्राटकी अपेक्षा विजयनगरके 'तीन मुकुट धारण करनेवाले' महाराजाधिराजका वैभव बड़ा समझा जाता था। विजयनगरने एक बार फिर पुरानी हिन्दू संस्कृतिका अुद्धार करनेका पूरा-पूरा प्रयत्न करके देखा। अुसने वेदविद्याको फिरसे चालू किया; व्रत, अुत्सव आदिका विस्तार किया। अिसके परिणामस्वरूप श्रुति-स्मृति-पुराण तथा तंत्र द्वारा विस्तृत बना हुआ हिन्दूधर्म राजमान्य हुआ।

लेकिन अुसके अिस प्रयत्नमें आवश्यक आधुनिकता और मानवताको स्थान न मिलनेसे राकसतागड़ीकी लड़ाअी (अिसे तालीकोटका युद्ध भी कहते हैं) में विजयनगरके साम्राज्यका अेकाअेक नाश हुआ और हिन्दूधर्म तथा हिन्दू-समाज फिर एक बार अनाथ बने।

अैसी स्थितिको पहुंचे अुअे हिन्दू-समाजमें फिरसे जी अुठनेकी जो छटपटाहट मौजूद थी और जिसे साधु-सन्तोंने पुनः सींचा था, वह छटपटाहट

शिवाजी महाराजमें प्रकट हुयी और अन्होंने फिरसे 'हिन्दवी स्वराज्य' की प्रस्थापना करनेका निश्चय किया।

विशेष रूपसे ध्यान रखने लायक बात यह है कि शिवाजीके ननमें अिस्लामके प्रति, अुसके औलियों या धर्मग्रंथोंके प्रति तनिक भी तिरस्कार न था। हिन्दुओं द्वारा मुसलमानोंकी मस्जिदों, रोजों या मकबरोंके तोड़े जानेकी अेक भी मिसाल नहीं पायी जाती। हिन्दू लोगोंके मनमें केवल अपने धर्मके प्रति नहीं, बल्कि सभी धर्मोंके प्रति श्रद्धा और आदर होता है। धर्म वही है, जो मनुष्यको अूपर अुठाये। हिन्दू लोग अितना तो अच्छी तरह समझने लगे थे कि अगर धर्मका नाश होने दिया जायगा, तो मारी मानवता ही नष्ट हो जायगी। अगर अुनमें कोअी खामी थी, तो वह यही थी कि जिम तरह धौंकनी चलाकर अग्निको प्रज्वलित रखा जाता है, अुसी तरह जीवनके शुद्धीकरण और संस्करण द्वारा धर्मका भी संस्करण करनेकी आवश्यकता होती है, अिसके वारेमें वे पर्याप्त रूपसे जाग्रत नहीं थे।

शिवाजीके समयमें समाज पर सन्तमतका प्रभाव बहुत पड़ चुका था, और तुकाराम तथा रामदास जैसे प्रभावशाली धर्म-सुधारक धर्मसेवा कर रहे थे। तुकाराम जैसे कअी साधुओंने पंढरपुरकी वारी* संस्था चलाकर भक्ति-संप्रदायका संगठन किया, और रामदासने जगह-जगह अपने मठों और हनुमानके मंदिरोंके माथ-माथ अखाड़ोंकी स्थापना करके वर्णाश्रम-धर्मका संगठन किया।

अिसके साथ ही जो किले प्राचीन कालसे देशकी रक्षा करते आ रहे थे, अुन्हें जीत कर शिवाजीने अपने राज्यका संगठन किया। धर्मान्तरित सरदारोंको फिरसे हिन्दूधर्ममें लेकर, सेवामें हिन्दुओंके साथ मुसलमानोंको भी भरती करके, राज्यतंत्रमें सभी जातियोंके लोगोंको स्थान देकर, किसीको जागीर या अिनाम न देनेका नियम करके, राज्यको मजबूत बनाकर, अच्छे लोगोंकी सिफारिशसे आये हुअे निष्ठावान् लोगोंको ही सेनामें तथा शानन-प्रबंधमें शामिल करके और अैसे ही दूसरे अुपायोंसे शिवाजीने अपने शानन-प्रबंधको संगठित, सुदृढ़ और कार्यक्षम बनाया और धीरे-धीरे अपनी जल-सेना भी तैयार करके व्यापार बढ़ानेका प्रयत्न किया।

* वारी = प्रत्येक अेकादशीके दिन पांडुरंगके दर्शन करनेके लिये पंढरपुर जाना।

शिवाजीका अतिहास देखनेसे साफ ही मालूम होता है कि वे अपने जमानेसे बहुत आगे बढ़े हुये थे। प्रत्येक काम नियत समय पर होना ही चाहिये, निश्चित की हुयी योजनाको क्रमसे पूरा करना ही चाहिये, होने-वाला खर्च हिसाब और अनुपातसे वाहर जाना ही न चाहिये, हुकमकी तामीलमें थोड़ी भी गफलत हरगिज न होनी चाहिये — वगैरा तमाम बातोंमें शिवाजीकी दृढ़ता लगभग अंग्रेजों-जैसी ही थी। शिवाजी अच्छी तरह जानते थे कि राज्य चलानेके लिये अखंड द्रव्यबल और मनुष्य-बलकी आवश्यकता रहती है; इसलिये अपनी पूरी ताकत लगाकर अन्होंने अिन दोनोंका बहुत बड़ा संग्रह किया था। शिवाजीके पुत्र संभाजीने अपने पिताकी इस चौमुखी कमाठीको बहुत कुछ बरबाद कर दिया था; फिर भी राजारामके समयमें महाराष्ट्र औरंगजेबके खिलाफ, जो खुद वहां लड़ने पहुंचा था, अठारह बरस तक लड़ता रहा। यही नहीं, बल्कि अन्तमें महाराष्ट्रने अुस सम्राटकी बलि ली और अपना संघराज्य (फेडरेशन) प्रस्थापित किया। यह अेक ही बात शिवाजीकी योग्यताका पर्याप्त प्रमाण है।

शिवाजीके अेक सरदारने अुस जमानेके रिवाजके मुताबिक लड़ाईकी लूटमें कल्याणके सूबेदारकी खूबसूरत बहूको पकड़ा और अुसे शिवाजीको समर्पित किया। मगर नौजवान शिवाजीने अपने मनमें किसी तरहके पापको स्थान नहीं दिया। अुन्होंने अुसे बहन माना और भाभीकी तरफसे भेंटके तौर पर गांव अिनाममें देकर बड़े सम्मानके साथ अुसे अुसके घर भेज दिया। अुस युवतीका रूप-लावण्य देखकर शिवाजीने अितना ही कहा — “अगर मेरी मां अितनी खूबसूरत होती, तो मैं भी खूबसूरत होता।”

शिवाजीकी माताने अपने पुत्रको रामायण-महाभारतके आदर्शोंकी दीक्षा दी थी, और यह भी सिखाया था कि धर्मके लिये जीना चाहिये तथा धर्मके लिये मरना भी चाहिये। शक्तिके अुपासक शिवाजीने देशकी धर्म-शक्तिको चमका दिया और हिन्दुस्तानके सामने अेक अूंचा अुज्ज्वल आदर्श पेश किया। अुनका जीवनमंत्र था — ‘अन्यायके खिलाफ लड़ना और किसी हालतमें हिम्मत न हारना।’

शिवाजी-जयन्ती

फागुन वदी ३

१ दिन

गुजरात और महाराष्ट्रका संबंध अटूट है। जिस तरह महाराष्ट्रमें गुजराती लोग बसे हुये हैं, वुसी तरह गुजरातमें भी महाराष्ट्रीय लोग स्थायी रूपसे बस गये हैं। महाराष्ट्र अतिसव-प्रिय है। अुसने गणेश-चतुर्थी जैसे कुछ त्यौहारोंको बड़ा सामाजिक और राष्ट्रीय रूप दे दिया है। वे सब त्यौहार गुजरातमें नहीं चल सकते। लेकिन यह बांछनीय है कि खास महाराष्ट्रीयोंके लिये अेक त्यौहार रक्वकर गुजराती और महाराष्ट्रीय लोग अुने मिलकर मनायें।

शिवाजी-जयन्ती मनानेमें अेक विशेष अर्य है। अंग्रेज इतिहासकारोंने शिवाजीको गुजरातके दुश्मनके रूपमें चित्रित किया है। अिस असरको धो डालनेके लिये और महाराष्ट्रके रामदास-जैसे साधु-संतोंका स्मरण करनेके लिये फागुन वदी ३ निश्चित की जाय। ज्ञानेश्वर, अेकनाथ, तुकाराम, नामदेव, जनाबाजी, मुक्ताबाजी आदि महाराष्ट्रके संतोंका तर्पण अिली दिन किया जा मकेगा। अिस त्यौहारके मनानेमें महाराष्ट्रीयोंसे सलाह और मदद भले ही ली जाय, लेकिन अच्छा यह होगा कि अिसका सूत्रपात गुजराती लोग ही करें। रामदास और ज्ञानेश्वरका परिचय गुजरातीमें दिया जा सकता है। दूसरे साधु-संतोंके विषयमें भी अिन दिन थोड़ी-बहुत जानकारी दी जाय और अुनकी कविताओंका गुजरातीमें अनुवाद हो जाय, तो परिचायक साहित्यमें अुतनी वृद्धि होगी।

अिस दिन सब तरहके मरदाने खेल खेले जायें। खेलोंमें भालेका खेल अवश्य रखा जाय।

[यह तिथि अुत्तर भारतमें चैत्र कृष्ण ३ होती है।]

अन्यधर्मा त्यौहार

३८

प्रेमवीर ब्रह्मचारी

[२५ दिसम्बर]

प्रेममूर्ति, भगवद्-भक्त, ब्रह्मचारी श्रीसाने श्रीश्वरकी अेक अद्भुत विभूति व्यक्त की है। बुद्ध भगवान्की तरह श्रीसाका जीवन भी करुण-गंभीर और अुदात्त-कोमल है। अेक वढ़ीका अपढ़ लड़का अपने समयके साधु पुरुषों और धर्माचार्योंसे प्रश्न पूछ-पूछ कर स्वतंत्र रूपसे धार्मिकताका विकास करता गया, और केवल श्रद्धा और श्रीश्वर-कृपासे श्रीश्वर-परायण भक्त बना। यह तो सभी कहते थे कि श्रीश्वर सर्वशक्तिमान है; लेकिन श्रीश्वर क्षमावान ही नहीं, बल्कि सर्वसह भी है, अिसे पहचाननेवाले सत्पुरुषोंमें भी श्रीसाका अपना अनूठा स्थान है। ब्रह्मचर्यके माहात्म्यको पहचानकर अुस रसायनको सिद्ध करनेवाले तपस्वी तो बहुत हो गये हैं; लेकिन जिनके लिये ब्रह्मचर्य सहज-सिद्ध था, अैसे सत्पुरुषोंमें भी श्रीसा विशेष रूपसे अलग दिखायी देता है, क्योंकि अुसमें अिस श्रीश्वरी प्रसादका अहंकार न था। वह कहता था — 'ब्रह्मचर्य तो अुन्हीं लोगोंके लिये सहज-सिद्ध है, जिन्हें वह परमेश्वरसे मिला है; औरोंके लिये तो वह लोहेके चने चवाने-जैसा ही मुश्किल है।' यदि किसी ब्रह्मचारीने स्त्री-जातिके अुद्धारके लिये अपना हृदय निचोया हो, तो वह ब्रह्मचारी श्रीसा ही था। अितनी अुत्तमताको अुसका जमाना हजम न कर सका। जिस अपराधके लिये सुकरातको मौतकी सजा मिली, अुसी अपराधके लिये प्रभुभक्त श्रीसाको सूली पर चढ़ना पड़ा। अनेक अवतारी पुरुषोंने अपने-अपने शिष्यों और भक्तोंको भक्तिधर्मकी दीक्षा दी है। श्रीसाने अपने श्रावकों और अनुयायियोंको जो अुपदेश दिये, अुनमें से दो-चार संगृहीत हुये हैं। अुनका असर सैकड़ों वरसोंसे लोगों पर होता रहा। अिसे अेक तरहका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये कि अैसे कारुण्य-वीरके नामसे अेक स्वतंत्र धर्मकी स्थापना हुयी। वरवस यह अनुभव होता है कि श्रीसाके अनुयायियोंने अेक अलग धर्मकी स्थापना करके अुसके अुपदेशकी व्यापकताको मर्यादित कर दिया है। जो भी हो, सभी धर्मके लोगोंको चाहिये कि वे आजके श्रीसाकी कहे जानेवाले

लोगोंकी तरफ न देखकर भीसाके जीवन, अपुदेश और वलिदानकी ओर देखें और अुस अपुदेशके अनुसार चलनेवाले सन्तोंके जीवनका निरीक्षण करें।

यही दृष्टि दूसरे धर्मोंके वारेमें भी रखनी चाहिये।

१-६-'३८

बड़ा दिन

२५ दिसम्बर

१ दिन

हिन्दू देवीके दरवारमें हरअेक धर्म, पंथ और मतको स्थान है। हिन्दू-धर्मका किसी भी धर्मके साथ विरोध नहीं। 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः' यह वृत्ति हिन्दूधर्मकी नस-नसमें मौजूद है।

त्यागी, ब्रह्मचारी, भगवद्-भक्त, निष्ठावीर भीसा मसीहकी जयन्ती भी हम जरूर मनायें। अपने ढंगसे मनायें। हिन्दूधर्ममें सद्गुरुकी अुपासनाका जो मार्ग है, 'यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ' की जो वृत्ति है, अुसीका अेक स्वरूप भीसाभी धर्म है। अिस दिन भीसाका गिरि-प्रवचन पढ़ा जाय। अपने पड़ोसमें कोअी दीन, दुःखी या बीमार हो, तो अुसकी सेवा की जाय। जिसके पास कम हो, अुसे कुछ-न-कुछ दिया जाय। विद्यार्थियोंको भीसाके वलिदानकी कहानी पढ़कर सुनायी जाय। भीसाभी मित्रोंको अपने घर बुलाया जाय, और हम भी अुनके घर जायें।

३९

मुहर्रम

शिया और सुन्नी पंथियोंमें क्या मतभेद है, अिस्लामी धर्म-पुस्तकोंमें हसन और हुसैनका क्या स्थान है, अिस वारेमें हिन्दू लोग भले ही अुदासीन हों, लेकिन अेशियाके पश्चिमी प्रदेशोंमें, अरवस्तानकी पुण्यभूमिमें, धर्मके लिअे कितनी बड़ा वलिदान किया गया और हजरत पैगम्बरकी आज्ञा और अपुदेशोंके प्रति वफादार रहनेकी खातिर धर्मनिष्ठ मुसलमानोंने कैसे-कैसे त्याग किये, कितनी मुसीबतें अुठायीं, और सारे युद्धमें कितनी बहादुरीके साथ क्षात्रधर्मके सब अंगोंका पालन किया — आदि सब बातें हमारे लिअे बहुत महत्त्वकी हैं। मुहर्रमका त्यौहार मुसलमान भाअियोंके लिअे अ्राष्ट्रका त्यौहार

है। इस्लामके बड़े-से-बड़े शहीदोंकी याद दिलानेकी शक्ति इस त्यौहारमें है। हमारे मुसलमान भाभी मुहर्रमके दिनोंमें अक पुरानी कहानीसे धर्मनिष्ठा प्राप्त करते हैं; और उस हद तक भारतवर्षकी धर्मनिष्ठामें वृद्धि करते हैं। हिन्दुस्तान धर्मभूमि है। यहांकी हरअक जाति जिस हद तक धर्मनिष्ठाकी आदत डालेगी, उस हद तक इस धर्मभूमिकी शक्ति अवश्य बढ़ेगी।

३-९-'२२

मुहर्रम

१ दिन

यह धर्मवीरोंका त्यौहार है। भले ही हम ताजियेमें शरीक न हो सकें, फिर भी जो लोग धमके नाम पर प्राणार्पण करनेको तैयार हो जाते हैं, उनके जीवन और मरणसे हमें जरूर प्रेरणा मिल सकती है। अिमान हुसैनकी कहानी, खिलाफतका प्राचीन इतिहास और करबलाकी भीषण घटना आदिके वारेमें हम विद्यार्थियोंको समझायें। विद्यार्थी शिया और सुन्नीके भेदको भी जानें।

इस दिन हम अपने मुसलमान मित्रोंको विशेष रूपसे मिलनेके लिये बुलायें। अगर उस दिन उनके यहां पशु-वध न हुआ हो, तो हम खास तौर पर उनसे मिलने जायें।

४०

अकताका त्यौहार

[वक्र-अद]

अश्वर-भक्ति और कौटुम्बिक मोह, जिन दोनोंमें परापूर्वसे युद्ध होता रहा है। हरअक धर्ममें धर्म-पालनके लिये कौटुम्बिक मोहका नाश करनेवाले भक्तोंकी कसी मिसालें मौजूद हैं।

अकादशी व्रतकी अक कहानीमें कहा गया है कि राजा हदमांगदने अपनी चहेती रानीको अक वरदान दिया था। राजा परम वैष्णव था और अकादशीका व्रत रखता था। रानीने राजासे वरदान मांगा कि या तो व्रत-भंग करके भोजन करो, या अपने प्यारे बेटेका वध करो। व्रतभंग करना

राजाके लिये अमंभव था। पितृभक्त पुत्रने राजासे अनुरोध किया — “अुचित यही होगा कि अपने वचनकी पूर्तिके लिये आप मेरा वध करें। मैं मरनेके लिये तैयार हूँ।” राजा दस्र अुठाता है, किन्तु भक्त-वत्सल भगवान् विष्णु वीचमें ही अुसका हाथ पकड़ लेते हैं।

स्त्री-पुत्रको वेच डालनेवाले हरिश्चन्द्र और सीताका त्याग करनेवाले रामचन्द्र अिमी श्रेणीके मानव थे। मालिकके पुत्रकी रक्षा करनेके लिये अपने बेटेका बलिदान करनेवाली पद्मा भी अिसी कोटिकी थी।

अिमी तरहके अेक भक्तराजकी यादगारमें मुसलमान लोंगोंमें बक्र-अीदका त्यौहार प्रचलित हुआ है। यह त्यौहार हजरत मुहम्मद पैगम्बर साहबने शुरू नहीं किया। यह पैगम्बरसे भी पहलेके धर्मसे लिया गया है; अिसलिये बहुत प्राचीन है।

अीश्वर-निष्ठ अिब्राहीमके दो लड़के थे। अुनमें से छोटेका नाम अिस्माअील था। पिताका अिस्माअीलके प्रति विशेष प्रेम देखकर शैतानने अीश्वरसे कहा — “देख ली अपने भक्तकी भक्ति! तू समझता है कि वह तेरा भक्त है; लेकिन वह तो अपने पुत्रका भक्त है।” सपनेमें आकर अीश्वरने अिब्राहीमसे कुरवानी करनेको कहा। कुरवानीका कायदा यह है कि जो चीज हमें अत्यन्त प्रिय हो, जिसे हम सबसे ज्यादा कीमती मनझते हों, अुसकी कुरवानी की जानी चाहिये। दूसरे दिन अिब्राहीमने गाय या बकरेकी कुरवानी की। लेकिन रात अुसने फिर वही सपना देखा — ‘कुरवानी कर!’ अुसने पहलेसे कुछ बड़ी कुरवानी की; मगर वह मंजूर नहीं हुई। फिर सपना दिखाअी पड़ा। अुसने नम्र होकर अीश्वरसे प्रार्थना की और पूछा — “हे मालिक, तू किसकी कुरवानी चाहता है?” अीश्वरने कहा — “तेरे प्यारे बेटेकी।”

भक्तश्रेष्ठ अिब्राहीमके हृदय पर तनिक भी आघात न हुआ। अुसने अीश्वरको अपना सर्वस्व समर्पित किया था। दूसरे दिन लड़केको लेकर भक्तराज कुरवानगाहकी ओर निकल पड़ा। शैतानने मां और बेटेको बहकानेकी कोशिश की, लेकिन अुस प्रेमल कुटुम्बमें अीश्वर-भक्ति अितनी दृढ़ थी कि तीनोंमें से अेक भी व्यक्ति मोहवश न हुआ। पिताने पुत्रकी गर्दन पर छुनी रखी ही थी कि अितनेमें परमेश्वरने अुसे रोका और अिस्माअीलके बदलेमें

अक पशुकी कुरवानी ही स्वीकार की। अब्राहीम, अस्माबील और अस्मा-
 अीलकी माता, तीनोंकी परीक्षा पूरी हुई और शैतानकी फजीहत हुई।

अस अस्माबीलके वंशमें ही अस्लामी धर्मके नवी हजरत मुहम्मद पैगम्बरका जन्म हुआ था।

ऐसी अस अद्भुत घटनाकी यादमें अस्लामी भाभी वक्र-ओदके दिन कुरवानी करते हैं। कौटुम्बिक मोहको त्यागकर शुद्ध अश्वर-भक्ति करने और कर्तव्यके आगे मोहको नष्ट करनेका धार्मिक तत्त्व ही अस त्योंहारमें अभिप्रेत है। यह तत्त्व जितना अस्लामको प्रिय है, अतना ही दूसरे धर्मोंको भी प्रिय है। स्वार्थ, मोह, लोभ आदि सबका नाश करनेके लिये अपनी और अपनी प्रिय वस्तुकी कुरवानी करना ही सच्ची धार्मिकता है। यही महान् यज्ञ है। असके स्मृति-चिह्नके रूपमें प्रत्येक धर्ममें बलिदानकी प्रथा पुराने समयसे चली आयी है। लेकिन जैसे-जैसे हममें जीवदया बढ़ती गयी, वैसे-वैसे हम अस बलिदानसे अक-अक बाहरी चीजको कम करते गये। हमने नरमेघ छोड़ा, अश्वमेघ छोड़ा, मांसका भोग लगाना छोड़ा और अन्तमें भैंस या बकरेकी हत्या करनेके बदले अड्डके आटेका पशु बनाकर अुसकी बलि चढ़ाने लगे। आखिर कुम्हड़ा काट कर या नारियल फोड़कर ही हम संतोष मानने लगे। लेकिन बलिदानकी कल्पनाको हमने जाग्रत रखा है। मांसाहारी लोग पशुकी बलि चढ़ायें, तो अुसमें आश्चर्यजनक या अनुपयुक्त कुछ भी नहीं। हमने पशुहत्याको पाप समझकर मांसाहार त्याग कर दिया, असलिये पशुका बलिदान भी छोड़ दिया।

हिन्दुस्तानमें दयाधर्म है। वह जैनोंमें है और दूसरे हिन्दुओंमें भी है; और जिस तरह हिन्दुओंमें है, अुसी तरह मुसलमानोंमें भी है। यदि अस दयाधर्म पर हम विश्वास रखें, तो अुसका असर सर्वव्यापी हुअे बिना नहीं रहेगा। यह सोचना गलत है कि मुसलमान लोग हमेशा हिन्दुओंके दिलोंको ठेस पहुंचानेके लिये ही गोहत्या किया करते हैं। अगर हम अस विचारको त्याग दें, तो हमारे बिना कहे, बिना किसी तरहकी शर्त लगाये या कानून पास किये ही मुसलमान लोग यथासमय गायकी हत्या करना छोड़ देंगे। मुस्लिम समाजमें खानदानियत है। पड़ोसी-धर्मका पालन करनेके लिये अुन्होंने आज तक कभी बार अपनी जान खतरेमें झोंक दी है, और कभी मरतवा सर्वस्वका त्याग करके वे बरवाद हुअे हैं; मुसलमान लोग हमारी ही तरह

खेती-बाड़ी पर गुजर-बसर करते हैं; हमारी तरह वे भी अपने शेरोंसे प्यार करते हैं। गोरोंकी तरह बुन्होंने गोमांसको अपने नित्यके भोजनकी चीज नहीं बनाया है। गोरक्षाके वारेमें मुसलमान लोग हमारे शत्रु नहीं, मित्र बन सकते हैं। अगर हम बिस्लाम पर विश्वास करें, तो सिर्फ हिन्दुस्तानमें ही नहीं बल्कि बिस्लामी दुनियामें भी उनकी मददसे हम गोरक्षा कर सकेंगे।

बक्र-ओदका त्यौहार सिर्फ अब्राहीम और अुसके स्त्री-पुत्रका स्मरण करनेका त्यौहार नहीं है। आज तक धर्मके नाम पर जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित किया है अुन सभी धर्मवीरोंका स्मरण आजके बिस पवित्र अवसर पर हम करें। अगर बक्र-ओदके दिन हिन्दू भी बिस भक्तराजका स्मरण करें, तो उनकी धार्मिकतामें वृद्धि हुअे बिना न रहेगी। और बक्र-ओदका त्यौहार हिन्दुस्तानकी राष्ट्रीय अकेताको नष्ट करनेके बजाय अुसे बढ़ायेगा। जिन तरह जिलहिज्ज मासकी दसवीं तारीख अब्राहीमकी याद लेकर आती है, अुसी तरह वह बिस बातकी भी साक्षी रहेगी कि खिलाफत और स्वराज्यके लिये हिन्दू और मुसलमान अके हो गये थे। हम यह आश करें कि अब्राहीम जैसे पवित्र पुरुषके स्मृति-दिनको हम हिन्दू-मुसलमानोंके अगड़ेसे अपवित्र नहीं बनायेंगे। अितनी सावधानी धार्मिक हिन्दू-मुसलमान जरूर बरतें। अके-दूसरेके हृदयकी सच्चाअीको पहचान लेनेके बाद अगड़ोंका मूल कारण ही न रहेगा।

६-८-२२

बक्र-ओद

१ दिन

अब्राहीमके प्राचीन धर्मका यह त्यौहार है। बलिदानकी महिमाको समझानेके लिये मुसलमानोंके नवी साहबने बिसका महत्त्व बढ़ाया है। पशुओंको कत्ल करनेके शीकके तौर पर यह त्यौहार नहीं चलाया गया है। बिस त्यौहारका प्रयोजन यह है कि जो वस्तु हमें अत्यंत प्रिय हो, वह ओश्वरको समर्पित करनेकी तैयारी की जाय। छात्रोंको बिस दिनकी कहानी सुनाअी जाय।

राष्ट्रीय त्योहार

४१

स्वराज्य-महाव्रत

[अप्रैल ६ से १३ तक]

व्रत हो या त्योहार, अुसके पीछे कोअी-न-कोअी महान सामाजिक या आध्यात्मिक तत्त्व होता ही है। चैत्रकी प्रतिपदाके दिन दक्षिण हिन्दुस्तानमें वड़ा अुत्सव मनाया जाता है, क्योंकि अुस दिन श्री रामचन्द्रजीने वालिको हराकर दक्षिण भारतको स्वाधीनता और निर्भयता प्रदान की थी। अुसी दिन प्रजा-अुद्धारकर्ता शालिवाहनने विदेशी हूण और शक लोगोंके आतंकसे प्रजाको मुक्त किया था। और वह भी किस तरह? मिट्टीके पुतलोंमें संजीवनी डालकर और अुन्हें शूर सिपाही बनाकर!

आजका हमारा स्वराज्य-सप्ताह अिसी तरहके अेक महाव्रतका दिन है। स्वराज्यकी प्रस्थापना होनेके वाद यह अुत्सवका दिन वनेगा। अिसके पीछे कअी तारक तत्त्व हैं। अिस सप्ताहमें मिट्टीके पुतलों जैसी जनतामें सत्याग्रहकी वह संजीवनी डाली गयी, जिससे पेटके वल रेंगनेवाला राष्ट्र अुठ खड़ा हुआ। अिसी सप्ताहकी प्रेरणाके वल पर वरसोंसे आपसमें लड़कर अेक-दूसरेकी जानके गाहक वने हिन्दू-मुसलमान अेक हुअे और अिसी अेकताके कारण अैसा प्रतीत होने लगा, मानो अितने दिनों तक असंभव-सा मालूम होनेवाला स्वराज्य अचानक प्रकट हो गया हो। निराशमें ही पले और वढ़े हुअे लोगोंको तो यही लग रहा है कि अितनी जल्दी स्वराज्यके आगमनकी संभावना हो ही कैसे सकती है? लेकिन स्वराज्यका आगमन अितना अधिक प्रत्यक्ष है कि माननेकी तैयारी हो या न हो, अुसे माने विना छूटकारा नहीं।

जो लोग अब तक 'असंभव, असंभव' कहते थे, वे आज कहने लगे हैं कि 'यह सारा अिन्द्रजाल क्या है?' लेकिन अिसमें अिन्द्रजालकी क्या वात है? फी घंटा चालीस मीलकी रफतारसे दौड़नेवाली रेलगाड़ीको अगर

हवाके दबावसे अेकदम रोका जा सकता है, तो असहयोगके द्वारा अेक अुन्मत्त सलतनतको ठिकाने लानेमें अिन्द्रजाल क्या है ?

अपने पैरों चलकर आनेवाले अिस स्वराज्यका स्वागत हम कैसे करें ? हमें अिस बातकी जांच करनी चाहिये कि हमारा हृदय-मंदिर स्वराज्य-देवीके बैठने योग्य शुद्ध और पवित्र है या नहीं ? अिसीलिये अिस सप्ताहको हम 'आत्मशुद्धिका सप्ताह' कहते हैं।

अिस सप्ताहमें हम सब तरहके व्यसनोंका त्याग करनेका निश्चय करें। स्वराज्य-फण्डमें यथाशक्ति द्रव्य दें। यह कोअी दान नहीं, बल्कि स्वराज्यके लिये स्वेच्छासे दिया जानेवाला टैक्स है। स्वराज्यका अर्थ है जुल्म और जवरदस्तीका अभाव। अतः प्रत्येक व्यक्ति अपनी श्रद्धाके अनुसार अधिकसे अधिक कर दे। सत्ताका अुपयोग किये विना राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) हिन्दुस्तान पर राज करती है। रामराज्यमें अिससे अधिक और क्या होगा ?

आज हम अपने हृदयस्थ परमेश्वरकी प्रार्थना करें — "हे हृदयस्थ देव ! हे जनतारूपी जनार्दन ! तुम हमें स्वराज्यके सच्चे अुपासक बनाओ। स्वराज्य-विषयक अपनी श्रद्धाके विचलित होनेसे पहले ही अिस शरीरसे हमारे प्राण निकल जायं। हमने आज तक बहुत दुःख अुठाया है; अतः हममें किसीको भी दुःख देनेकी बुद्धि अुत्पन्न न हो। हम आज तक पराधीनतामें सड़ते आये हैं, अिसलिये किसीकी स्वाधीनताका अपहरण करनेकी वृत्ति या शक्ति हममें न आये। हम साम्राज्यके अमर्याद मदके शिकार बने हैं; अतः हमारे हृदयमें अैहिक साम्राज्य प्रस्थापित करनेकी लालसा कभी अुत्पन्न न हो। साम्राज्य तो अेक तुम्हारा ही सर्वत्र प्रस्थापित हो जाय। और अैसी तपश्चर्यासे पुनीत बना हुआ यह राष्ट्रीय सप्ताह कभी कलुपित न हो। सत्य, अहिंसा और मंथमके अुत्सवके रूपमें यह सप्ताह दुनियामें अनन्त काल तक स्थायी बने ! "

१२-४-'२१

राष्ट्रीय सप्ताह

६ अप्रैलसे १३ अप्रैल तक

८ दिन

राष्ट्रीय अेकताके अिस पर्वके दिन सभी हृदयोंको सूतके धागेसे अेकत्र बांधना ही अिस सप्ताहका अेकमात्र कार्यक्रम हो सकता है। अिस वक्त विद्यार्थियोंको अच्छी तरह समझा दिया जाय कि हरअेक भारतवासीके सिर

पर समान संकट मंडरा रहा है। जिस सप्ताहमें जितना हो सके अतना सूत काता जाय।

अमृतसरसे लेकर आज तकका कांग्रेसका इतिहास पढ़ा जाय या अुसका विवेचन किया जाय।

४२

गोखलेजीको श्रद्धांजलि*

[१९ फरवरी]

आजका दिन श्राद्धका दिन है। श्राद्धके मानी हैं, श्रद्धा द्वारा भूत-कालको जीवित रखनेका अेक अद्भुत अुपाय। गोखलेजीको जिस लोकसे गये आज सात साल हो चुके हैं, फिर भी अभी हम अुनसे प्रेरणा लेते हैं, स्फूर्ति लेते हैं, अखंड सेवाकी दीक्षा लेते हैं, और जिस तरह अुन्हें हम अपनेमें जीवित रखते हैं। सन् १९१५ के फरवरी महीनेकी १९ वीं तारीख तक वे अपने चैतन्यसे जीते थे; आज वे हम सबके चैतन्यसे जी सकते हैं। हममें जितना चैतन्य होगा, अुतने ही वे जियेंगे। गोखलेजीके जीवनने हममें जो जीवन डाला, वह हममें जीवित रहा तो गोखलेजी और भी जियेंगे। वह जीवन हममें बढ़ेगा तो गोखलेजी चढ़ेंगे। और जब वह जीवन हममें से समूल नष्ट हो जायगा, तभी गोखलेजी मर जायंगे। आज हम यहां अिकट्ठे होकर गोखलेजीका श्राद्ध कर रहे हैं। इसके द्वारा हम कह रहे हैं कि भारत-सेवक गोखलेजी चिरंजीवी हों।

किसी भी मनुष्यका जीवन देखिये, अुसमें परिवर्तन होते ही रहते हैं। जीवन ही परिवर्तन है। जीवन ही प्रगति है। प्रतिवर्ष, प्रतिदिन और प्रतिक्षण मनुष्यका अनुभव बढ़ता जाता है, मनुष्यकी दृष्टि विशाल होती जाती है, और मनुष्यका जीवन विकसित होता जाता है। विद्यार्थी गोखलेकी अपेक्षा अध्यापक गोखले आगे बढ़े; अर्थशास्त्री गोखलेकी अपेक्षा माननीय गोखले

* सन् १९२२ की गोखले-पुण्यतिथिके अुपलक्ष्यमें वम्बडीके भगिनी-समाजमें अर्पित श्रद्धांजलि।

अधिक श्रेष्ठ सिद्ध हुने; माननीय गोखलेकी अपेक्षा राष्ट्र-नायक गोखले अधिक श्रेष्ठ ठहरे। अिस तरह गोखलेजीकी श्रेष्ठता दिन-प्रतिदिन बढती ही गयी। साधारण लोग समझते हैं कि मनुष्य मृत्यु तक ही बढता है, लेकिन यह गलत है। जीवित गोखलेजीकी अपेक्षा राष्ट्रके हृदयमें बसनेवाले बाजके गोखलेजी कभी गुना श्रेष्ठ हैं। जीवित गोखले रोज सोते थे, काम करके थक जाते थे, भूख जाते थे, कभी खीझ भी भुठते थे। लेकिन बाजके गोखले — हृदयस्थ गोखले — आदर्श हैं, आजकी बुनकी देशसेवा अमर्याद और अखंड है। वह दिन-दिन अपूर चढती जायगी और विशुद्ध होती जायगी।

यह शक्ति किसकी है? यह शक्ति श्राद्धकी है। श्राद्धका मतलब स्मृति नहीं, श्राद्धका अर्थ इतिहासका अध्ययन नहीं, बल्कि श्राद्ध अमृत-संजीवनी है। स्मृति दुःखरूप होती है, और दुःखकी तरह वह अल्पजीवी भी होती है। जिस तरह दुःखका भी अन्त होता है, उसी तरह स्मृति भी मिटती जाती है। जिस तरह दुःख हमें दुर्बल बनाता है, उसी तरह स्मृति भी हमें करुणाद्रं कर डालती है। इतिहासका भी यही हाल है। इतिहास न चलता है, न बढता है। इतिहासकी स्थिरता मारक होती है। इतिहासमें जीवन नहीं होता। इतिहास अके पुतला है, अके तसवीर है। छोटी-सी बालिका जब प्रसन्नतापूर्वक हंसती है, तो उसमें कितना अपूर्व चैतन्य, माधुर्य और पावित्र्य होता है! लेकिन उसी हास्यकी तसवीर खींचो या मूर्ति बनाओ और देखो तो बुनकी स्थिरता ही सारे सौंदर्यको नष्ट कर डालती है। इतिहासचक्र भी यही हाल है। इतिहास सत्यके वर्णनको स्थिर करने जाता है, और बुनकी प्रयासमें स्वयं असत्यरूप बन जाता है। इतिहास सत्यका प्रेत है। इतिहास व्यक्ति या राष्ट्रके स्वरूपको स्थिर करके अके तरहसे बुन निर्जीव बना देता है।

श्राद्ध बिससे अलग ही चीज है। श्राद्ध मृत व्यक्तिको अमर बनाता है। रामायण और महाभारत इतिहास नहीं, बल्कि श्राद्ध हैं। जिसीलिअे ये राष्ट्रीय ग्रंथ युगोंसे बिस राष्ट्रमें प्राण डालते आये हैं। इतिहासमें यह शक्ति कहाँ? हम वार्षिक श्राद्ध द्वारा पूज्य व्यक्तिको दिन-प्रतिदिन अधिक राष्ट्रीय बनाते हैं। सन् १८६६ से १९१५ तक जीनेवाले गोखलेजी कैसे थे, इसका यथार्थ चित्रण इतिहास भले ही करके रखे। हमें बुनकी परवाह नहीं। जो गोखलेजी आज हमारे हृदयमें है, बुनकीके दर्शन हम करें, बुनकीका

स्मरण करें, अुन्हींसे देशसेवाकी दीक्षा लें। अुस समयके गोखलेजी हमसे कहते थे — “ज्यादा पैसे देकर भी स्वदेशी कपड़े ही पहनो।” वे ही गोखलेजी आज हृदयमें प्रवेश करके हमसे कह रहे हैं — “पैसेका खयाल ही मत करो, खादी ही पहनो।” हृदयस्थ गोखलेजी कहते हैं — “मैं अर्थशास्त्रका अव्यापक था, लेकिन आज मैं तुमसे कहता हूँ कि धर्मशास्त्रके आगे अर्थशास्त्र शून्य है। जो धर्मशास्त्रके अधीन रहता है, वही सच्चा अर्थशास्त्र है। खादी पहननेवाले हिन्दुस्तानका कभी आर्थिक अकल्याण होनेवाला नहीं है; क्योंकि खादीमें धर्म है।”

सरयू नदीके किनारे रहनेवाले रामचन्द्रजीने क्या किया, अुनका जीवन कैसा था, आदि बातें हमको मालूम नहीं हो सकतीं, न हमें अुनकी आवश्यकता ही है। लेकिन वाल्मीकिके प्रतिभा-स्रोतसे जन्मे हुअे और आर्या-वर्तके हृदय पर राज्य करनेवाले राजा रामचन्द्रको ही हम जानना चाहते हैं। क्योंकि अैतिहासिक रामकी अपेक्षा वाल्मीकिके राष्ट्रीय रामने ही भारत-वर्षका अधिक कल्याण किया है। शकुंतलाकी भावगम्य छविको चित्रित करते समय जैसे-जैसे शकुंतलाका ध्यान बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे विरही दुष्यन्त ‘यद् यत्साधु न चित्रे स्यात् क्रियते तत् तदन्यथा’ कहकर हेरफेर करता ही जाता था, और फिर भी वह तंसवीर तो शकुंतलाकी ही रहती थी। यही बात हम राष्ट्रीय पुरुषोंके श्राद्धमें करते हैं; हम अुनका राष्ट्रीय संस्करण तैयार करते हैं।

अँसा करनेमें जितना लाभ है, अुतना खतरा भी है। पवित्र पुरुषोंकी स्मृति अेक तरहकी विरासत है। अुसे हम बढ़ा भी सकते हैं और विगाड़ भी सकते हैं। कीमती विरासतके साथ हम पर भारी जिम्मेदारी भी आ पड़ती है; और अिस जिम्मेदारीका भान ही हमारे लिये प्रेरक और तारक होना चाहिये।

आजके श्राद्धके दिन मुझे गोखलेजीके विषयमें कुछ कहना चाहिये, लेकिन सच कहूँ तो मैंने अैतिहासिक दृष्टिसे या अव्ययनकी दृष्टिसे गोखले-जीके जीवनको न देखा है, न पढ़ा है। गोखलेजीको मैंने बहुत बार देखा भी नहीं। किसी फरिश्तेके दर्शनकी तरह मैं अुन्हें दो-चार बार ही देख पाया हूँ। अुस समयकी स्मृतिको मैंने श्राद्धकी भूमिमें संगृहीत करके रखा है —

नहीं, संगृहीत नहीं किया, बल्कि वो दिया है। जिस बीजको समय-समय पर सिंचन मिला है, जिससे वह अंकुरित होकर अनेक प्रकारसे फला-फूला है।

गोखलेजीका पहला दर्शन—अव्यक्त दर्शन—मुझे फर्ग्युसन कॉलेज (पूना) को मारफत हुआ। जब मैं खुस कॉलेजमें गया, तब गोखलेजी वहां नहीं थे, लेकिन वहांका वायुमण्डल गोखलेमय था। सब जगह गोखलेजीकी छाप दिखायी देती थी।

फर्ग्युसन कॉलेज यानी वाद-विवादका कुरुक्षेत्र! पूनामें जितने पढे हैं, अतने ही नहीं, बल्कि उससे भी अधिक पक्ष फर्ग्युसन कॉलेजके विद्यार्थी-निवास (होस्टेल) में दिखायी देते हैं। जब मैं पहले-पहल फर्ग्युसन कॉलेजमें गया, तो मेरी हालत वैसी ही थी, जैसी पहली बार शहरमें आनेवाले देहाती विद्यार्थीकी हुआ करती है। छात्रावासमें प्रत्येक पक्षके हिमायती मेरे पास आते और मुझे अपने मतोंको निश्चित करनेमें 'मद्द' करते। पूनामें कोई भी व्यक्ति पक्षरहित नहीं रह सकता। वहांका वायुमण्डल जैसे आदमीको बरदाश्त ही नहीं कर सकता। फर्ग्युसन कॉलेजके छात्रावासमें मैंने गोखलेजीकी निन्दा और स्तुति दोनों अितनी अधिक मात्रामें सुनी कि किसी निर्णय पर पहुंचना मेरे लिये असंभव हो गया। मेरे मनमें अितना निश्चय तो अवश्य हुआ कि गोखलेजी चाहें जैसे हों, फिर भी वे अेक जानने लायक व्यक्ति तो जरूर हैं। अुनकी निन्दा और स्तुतिने परस्पर विधातक कार्य किया, जिसलिये मैं अुनसे अछूता रह गया। मनमें अितनी भावना अवश्य रह गयी थी कि गोखलेजी बड़े देशमेवक तो हैं, फिर भी अुन्होंने अुन गोरे सिपाहियोंसे जो माफी मांगी, वह तो अुनके लिये कलंकरूप ही है। सवृत न मिलनेसे क्या हुआ? जब तक अपने मनको पूरा यकीन है, तब तक हम किस लिये माफी मांगें? मेरा यह मत बहुत बरसों तक रहा। आज वह वैसा नहीं है; सार्वजनिक जीवनके स्मृतिशास्त्रको अब मैं अधिक अच्छी तरहसे समझने लगा हूं।

कांग्रेसकी तरफसे विलायतमें प्रकाशित होनेवाला 'ब्रिण्डिया' नामक पत्र मैं कॉलेजमें बहुत ध्यानसे पढ़ा करता था। जिसलिये गोखलेजी विलायतमें जो भाषण देते, मध्य-निपेधकी जो योजनायें बनाते, और अपने देशके लिये कनाडा जैसा जो 'सेल्फ-नवर्नमेण्ट'—स्वशासन—मांगते, अुन सभी बातोंमें मैं परिचित रहता था और अुससे गोखलेजीके प्रति मेरे मनमें धीरे-धीरे

श्रद्धा अत्युन्नत होती थी। आखिर अंक दिन ऐसा आया, जब मैंने सुना कि आज गोखलेजी कॉलेजमें आनेवाले हैं। यह तो अब याद नहीं कि वह कौनसा अवसर था।

गोखलेजीकी प्रसन्न-गंभीर मूर्ति मंच पर खड़ी हुई थी। अुनकी भाषा या अुनकी आवाजमें शास्त्रोक्त वक्ताकी चमत्कृति या चमक नहीं थी, लेकिन अुनकी भाषामें संस्कारिता तथा देशकल्याण और देशसेवाकी लगन ओतप्रोत थी। अुनके स्वरमें अंतःकरणकी अुत्कटताका गुंजन था। यह स्पष्ट रूपसे दिखायी दे रहा था कि यह हमेशा अुदात्त वायुमंडलमें विहार करनेवाली कोयी विभूति है। और फर्ग्युसन कॉलेज तो अुन्हींके हाथों परवरिश पाया हुआ गोकुल था। अिसलिये अुनके अुपदेशमें अधिकार और वात्सल्य समान रूपसे भरे हुए थे। अुस दिनका व्याख्यान तो मैं अब भूल गया हूं, पर व्याख्यानका असर अब भी कायम है। अंक ही बात अभी अच्छी तरह याद है। अुन्होंने कहा था—“आपको मालूम है कि आय-कर लेनेवाले सरकारी कर्मचारी हर साल आपके दरवाजे पर आते हैं और आप लोगोंसे सरकारी कर वसूल करके चले जाते हैं। आज देशके नाम पर ऐसा ही अंक ‘टैक्स-नौदरर’ (कर अुगाहनेवाला) मैं आपके दरवाजेमें आकर खड़ा हूं। मुझे पांच फी-सदीके हिसाबसे कर चाहिये। लेकिन वह पैसोंका नहीं, नवयुवकोंके श्रद्धा-वान् जीवनका। मैं चाहता हूं कि अिस महाविद्यालयमें पढ़नेवाले युवक विद्यार्थियोंमें से पांच फी-सदी विद्यार्थी देशसेवाके लिये अपना जीवन समर्पित करें। ऐसा होने पर ही मुझे संतोष होगा।”

कितनी महत्त्वपूर्ण मांग, और फिर भी कितनी कम! अुस दिन मेरे हृदयमें नया प्रकाश आया, विचारोंको अंक नयी दिशा मिली, और मैं कुछ अंशोंमें द्विज बना।

अिसी अरसेमें गोखलेजी बनारसमें कांग्रेसके अध्यक्ष बने। बनारसकी भोलीभाली जनताने ‘पूनाका राजा’ कहकर अुनका स्वागत किया। अुस समयका अुनका भाषण कुछ ऐसा संपूर्ण था कि कयी वार पढ़ने पर भी मुझे संतोष न हुआ। अिसके बाद वंग-भंगके खिलाफ आन्दोलन बढ़ा। स्वदेशी, वहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज्यका चतुर्विध आन्दोलन जोरके साथ जाग अुठा। मैं अुसमें वह गया। विपिनचन्द्र पाल और अरविंद घोषने मेरे हृदय पर कब्जा कर लिया, और गोखलेजीकी छाप मिटती गयी। मैं यह

भी भूल गया कि मुझमें देशसेवाकी ज्योति गोखलेजीने ही प्रज्वलित की थी। उसके बाद सूरतमें गृहयुद्ध हुआ। उस समयके दोनों पक्षोंके अखबार पढ़कर मुझे निराशा हुआ। उन अखबारोंमें अितनी अधिक क्षुद्रता दिखायी देती थी कि उसे दुर्गन्धकी अपुमा दी जा सकती है। उसके बाद राजनीति कुछ अजीब ढंगसे वहने लगी। सरकार पागल हो गयी, और हमारे दोनों पक्ष अपीर्या, असूया और हिंसासे सराबोर हो गये। अिसका भी मुझ पर बहुत असर हुआ। राष्ट्रीय पक्षके तत्त्व मुझे पसन्द थे, अराजक लोगोंका युक्तिवाद मुझे यथार्थ प्रतीत होता था; फिर भी नरम दलके नेताओंके वारेमें जो निन्दा-प्रचुर वीभत्स लेख और चित्र अखबारोंमें निकलते थे, उनसे मुझे सख्त नफरत होती थी। असूया-वृत्ति समाजमें अितनी अधिक बढ़ गयी कि गोखलेजीको 'हिन्दू पंच' पत्रके खिलाफ मानहानिकी नालिश दायर करनी पड़ी। मुझे यह बात विलकुल अच्छी न लगी कि महान् गोखलेजी 'हिन्दू-पंच' जैसे क्षुद्र पत्रके खिलाफ मानहानिका मुकदमा चलाकर अुससे माफी मंगवायें। आज यह बात तो मेरी समझमें आती है कि गोखलेजीने ब्रिटिश सोलजरोंसे जो माफी मांगी थी, अुससे उनकी महत्तामें वृद्धि हुआ थी। लेकिन मैं मानता हूँ कि 'हिन्दू पंच' से क्षमा-याचना करानेमें गोखलेजीने कुछ भी हासिल नहीं किया। लेकिन अिसमें गोखलेजीकी अपेक्षा मैं अपने जैसे लोगोंका ही दोष अधिक देखता हूँ। गोखलेजीकी अभद्र निन्दा सुनकर तिलमिला अुठने-वाले मेरे-जैसे बहुतसे लोग होंगे। लेकिन हम चुपचाप बैठे रहे। अगर हमने अुस समय प्रकट रूपसे अिस तरहकी निन्दाका निषेध किया होता, तो गोखलेजीको अपने समाजके विषयमें अितना अधिक निराश न होना पड़ता।

अिसी अरसेमें बम्बयीमें प्रभु ज्ञातिकी महिलाओंने अेक कला-प्रदर्शनीका आयोजन किया था, और गोखलेजी द्वारा अुसका अुद्घाटन होनेवाला था। कलाके विषयमें भी अुन्होंने सोच रखा था। मैं अुनका वह भाषण सुनने गया, और वहां मैंने गोखलेजीको पहले-पहल मराठीमें बोलते सुना। अुसी समय मनमें विचार आया कि अगर यह राष्ट्र-पुरुष लेजिस्लेटिव काँग्रेसकी अपेक्षा समाजमें और अंग्रेजीके बदले मराठीमें काम करे, तो अिसकी देा-सेवा भी बढ़ेगी और कीर्ति भी बढ़ेगी। लेकिन फिर मुझे अैसा लगा कि लेजिस्लेटिव काँग्रेसमें ठोस काम करनेवाले लोग कम थे। शायद अिसील्लिअे गोखलेजीको काँग्रेसमें अधिक समय देना पड़ा होगा।

अन्त्यजोद्धारके वारेमें अुनका अेक भापण अिसी अरसेमें मैने वम्बअीके टाअुन-हॉलमें सुना । अुसके वाद देशमें आतंकवादी प्रवृत्तियां वढीं । लोकमान्य मांडले जेलमें 'गीता-रहस्य' लिखते थे, और देशमें ग्लानि फैल गयी थी । मैं गुजरात गया और वहां थोड़े दिनों तक अव्यापनमें व्यस्त रहा । गोखलेजी कहां हैं, क्या करते हैं, अिसके वारेमें मैं कुछ भी नहीं जानता था। रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, भगिनी निवेदिता आदिके ग्रंथोंमें ही मेरी दिलचस्पी बढ़ गयी थी । सन् १९११ या १२ में भगिनी निवेदिताका स्वर्गवास हुआ, अुस समय गोखलेजीकी अेक श्रद्धांजलि प्रकट हुअी । वह छोटी ही थी, पर अितनी सुन्दर थी कि मेरी श्रद्धा पुनः जाग अुठी । मुझे न्यायमूर्ति रानड़े पर दिये गये अुनके भाषणों और लेखोंका स्मरण हो आया, और गोखलेजीके प्रति मेरे हृदयमें जो आदर था, वह फिर जाग्रत हुआ । मैं गोखलेजीका अधिक अध्ययन करने लगा । विद्यार्थी और राजनीति, हिन्दू-मुस्लिम अेकताके प्रश्न, दुनियाके समस्त राष्ट्रोंकी कांग्रेसमें दिया हुआ अुनका भाषण, आदि पढ़कर मुझे पूरा विश्वास हो गया कि गोखलेजी पांच-दस सालका विचार करनेवाले 'पॉलिटीशियन' (राजनीतिज्ञ) नहीं, दीर्घदृष्टिसे राष्ट्रहितका विचार करनेवाले अेक राष्ट्रोद्धारक हैं । खासकर हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकताके विषयमें अुन्होंने जो नीति अस्तित्थार की थी, अुसे देखकर ही अुनके ध्येय और अुनकी दीर्घदृष्टिका मुझे पूरा यकीन हो गया । वे यह देख सके कि हिन्दू-मुसलमानोंकी अेकता ही भारतीय राजनीतिकी बुनियाद है । अिस अेक कार्यके लिये भी हिन्दुस्तानको गोखलेजीके प्रति कृतज्ञ रहना चाहिये ।

वे देशकी राजनीतिको जड़-मूलसे शुद्ध और आव्यात्मिक बनानेके आग्रही थे । देशकी स्थितिको देखते हुअे गोखलेजीने यह महसूस किया कि जब तक रात-दिन देशकी सेवाका ही विचार करनेवाले लोगोंका वर्ग देशमें पैदा न होगा, तब तक देशकी राजनीति अिसी तरह भटकती रहेगी । अपने अनुभवसे वे यह वात अच्छी तरह देख सके थे कि दुनियादार बनने और फुरसतके वक्त देशसेवा करनेकी वृत्तिसे देशसेवा नहीं हो सकती । दूसरी अेक चीज जो हिन्दुस्तानियोंके स्वभावमें—भारतीय संस्कृतिमें—अनादि कालसे चली आयी है, अुसे अुन्होंने विशेष आग्रहके साथ देशसेवाके काममें भी दाखिल किया और देशके सामने विशेष रूपसे रखा । वह चीज थी, 'गरीबीका महत्त्व' ! देशसेवाके लिये पैसेकी जरूरत है, पैसेके वगैर किया

हुआ काम अटक जाता है, सदुपयोग करने पर अंक हृद तक संपत्ति आशी-
 वार्दरूप बन सकती है, आदि सब सच है। फिर भी देशसेवक स्वयं जिस
 हृद तक निर्धन रहेगा, अुस हृद तक अुसकी देशसेवा अधिक ठोस होनेकी
 संभावना रहती है। गोखलेजी अिस बातको अच्छी तरह जानते थे। दावा-
 वैयागी बनकर यात्रा करते हुअे घूमना अपेक्षाकृत आसान है; लेकिन समाजमें
 घुल-मिलकर, समाजको साथ लेकर देशोन्नतिके कार्य करना, देशका नेतृत्व
 करना और साथ ही दरिद्रताका व्रत लेकर, थोड़ेमें गुजारा करके, द्रव्यलोभको
 अंक तरफ रखकर निस्पृहताकी आदत डालना बहुत मुश्किल है। जो लोग
 विद्वान होते हुअे भी नम्र, गरीब होते हुअे भी तेजस्वी और तपस्वी होते
 हुअे भी दयालु हैं, वे समाज पर, और खास कर भारतीय समाज पर,
 प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं। बन कमानेकी शक्ति होने पर भी जो मनुष्य
 गरीबीको पसन्द करता है, लाखों रुपये हाथमें होते हुअे भी जो पैसेमें
 मिलनेवाली सहूलियतोंका अुपयोग करनेके लालचमें नहीं फंसता, वही मनुष्य
 समाजकी सच्ची सेवा कर सकता है, और स्वयं स्वतंत्र रह सकता है।
 गरीबीका आदर्श सामने न रहने पर देशसेवकके पैसेका सेवक, पैसेवालेका आश्रित
 और देशहितका द्रोही बन जानेका डर हमेशा रहता है।

गरीबीके आदर्शके साथ अखंड अुद्योगका व्रत न रहे, तो वह गरीबी
 जड़ताका रूप धारण कर लेती है। तमोगुणी गरीबी किसी कामकी नहीं।
 मनुष्य संतोष रखकर अपने निजी मतलबके लिये या अँग-व-बिधरतके लिये
 चाहे मेहनत न करे, लेकिन अुसे मेहनत तो करनी ही चाहिये। सकाम हो
 या निष्काम, कर्म तो किया ही जाना चाहिये। अगर हम कर्म न करें, तो
 हमें जीनेका कुछ भी अधिकार नहीं है। परिश्रम करनेका अवसर न मिलना
 तो अीश्वरका सबसे बड़ा शाप समझा जाना चाहिये। यह सोचना ठीक नहीं
 कि अुद्योग सिर्फ पेट भरनेके लिये है। मैं मानता हूँ कि अुद्योग तो
 जीवनका आनन्द है; कायिक, वाचिक और मानसिक शक्तियोंको विकसित
 करनेका साधन है; और पवित्रता तथा मोक्षकी साधना है। देशभक्तको
 फुरसतका वक्त वितानेका अंक अुपाय या नाम कमानेका अंक तरीका समझ-
 कर कोई व्यक्ति या संस्था अखंड रूपसे देशकी सेवा कर ही नहीं सकती।
 दिखावेके लिये किया हुआ काम भड़कीला चाहे हो, लेकिन वह ज्यादा
 देर तक टिक नहीं सकता।

देशसेवा करनेका मुख्य अुपाय यही है कि हम अपना जीवन निष्पाप बनावें। समाजमें जो दुःख हम देखते हैं, उनमें आधेसे भी अधिक दुःख तो स्वयं हमारे ही पैदा किये हुअे होते हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन सुधारनेका प्रयत्न करे, तो समाज-सेवकका बहुत-कुछ काम हलका हो जाय। दूसरी दृष्टिसे देखें तो जब तक हम स्वयं निष्पाप नहीं बनते, हमें समाज-सेवाका अधिकार या सामर्थ्य प्राप्त ही नहीं हो सकता। इस बातका अनुभव करके ही गोखलेजीने भारत-सेवक-समाज (सर्वेण्ट्स ऑफ़ अिण्डिया सोसाबिटी) की योजना और कार्य-प्रणालीमें सादगी, गरीबी, आज्ञाकारिता आदि ब्रतोंको विशेष रूपसे स्थान दिया है।

गोखलेजीके दक्षिण अफ्रीका जानेका हाल तो सबको मालूम ही है। उस समय जनरल स्मट्स और गांधीजीके बीचकी बातचीतके संबंधमें जब गलतफहमी पैदा हुअी, तो विलायतके पत्रोंको हमारे गोखलेजी ही अधिक विश्वासपात्र आप्त मालूम हुअे। यह देखकर मेरा हृदय अभिमानसे फूल उठा, और मुझे पूरा विश्वास हो गया कि यह गोखलेजीके निर्मल चरित्रका ही प्रभाव है। दक्षिण अफ्रीकाका काम बढ़ा। महात्माजीने वहां युद्धकी घोषणा की और हिन्दुस्तानमें देशभक्त गोखलेजीने उस यज्ञके लिये ब्राह्मणोचित भिक्षा मांगना शुरू किया। वह अपूर्व अवसर मेरी स्मृतिमें आज भी ताजा है।

वह यज्ञ पूरा हुआ। गांधीजी हिन्दुस्तान वापस आये और कवीन्द्रसे मिलने शान्तिनिकेतन गये। वहां गांधीजीका स्वागत हो ही रहा था कि अितनेम गोखलेजीके परलोक सिधारनेका तार मिला। शान्तिनिकेतनके अेक आम्रवृक्षके नीचे हम कुछ लोग गांधीजीके आसपास बैठे थे। उस समय गांधीजीकी आंखोंमें आंसू तो नहीं थे, किंतु आंसुओंसे भी मृदु और गंभीर श्रद्धाका सागर छलक रहा था। अुन्होंने हमें गोखलेजीके जीवनकी धार्मिकता समझायी। राजनीतिके लिये भी हमें अपनी खानदानियतका त्याग नहीं करना चाहिये, गोखलेजीके इस आग्रहका रहस्य अुन्होंने हमें समझाया, और अुसी क्षण गोखलेजीकी श्रद्धा-निर्मित मूर्तिकी मेरे हृदयमें प्रतिष्ठापना हुअी। मैं गोखलेजीका अनुयायी नहीं हूं, उनका शिष्य भी नहीं हूं, लेकिन अुनके शिष्यका शिष्य हूं, गोखलेजीका पूजक हूं और अुनको समझनेकी कोशिश करता हूं। गोखलेजीके सच्चे अनुयायियोंकी देशसेवा, धर्मनिष्ठा और निडरता देखकर मनमें गोखलेजीकी मूर्ति अधिकाधिक स्पष्ट और दृढ़ होती जा रही

है। आज खुस मूर्तिका ही श्राद्ध कर रहा हूं और खुस मूर्तिसे आशीर्वाद मांग रहा हूं।

यह जानकर कि भगिनी-समाज जिस मूर्तिका अके मंदिर है, मैं यहां अपनी श्रद्धांजलि लेकर आया हूं। गोखलेजीकी देशभक्ति खुनकी देशसेवासे बड़ी थी। पचास सालसे भी कमकी आयुमें खुनकी देशभक्तिको पूर्ण अवसर कहाँसे मिलता? शिक्षा और राजनीतिके दो क्षेत्रोंमें ही खुन्होंने कुछ देशसेवा की थी। लेकिन जो भी की, वह अपूर्व और अज्ज्वल थी। फिर भी खुन्हें खुससे संतोष न था। वे हमेशा कहा करते थे कि कामके पहाड़ पड़े हैं, जिन्हें उठानेके लिये हजारों देशसेवकोंकी जरूरत है। स्त्री-शिक्षाके महत्त्वपूर्ण विभागकी गोखलेजीकी देशभक्ति भगिनी-समाज द्वारा कार्यमें परिणत हो रही है; इसीलिये मैं जिस मंदिरमें श्राद्ध करने आया हूं। आपने मुझे आजका यह अवसर दिया, जिसे मैं आप नवका प्रसाद ही समझता हूं।

१९-२-२२

गोपालकृष्ण गोखले

[१९ फरवरी]

देशसेवक, अध्यापक, अर्थशास्त्री और राजदरवारमें जनताके प्रतिनिधि आदिके नाते की हुयी गोखलेजीकी सेवाओं भुलायी नहीं जा सकतीं। हिन्दु-स्तानकी आर्थिक स्थितिके विषयमें खुनकी मीमांसा आज भी ताजी है। लाजिमी और मुफ्त प्राथमिक शिक्षाको देशमें दाखिल कराने और नमक-कर कम करवानेके खुनके प्रयत्नोंसे गरीबोंके साथ खुनका मेल स्पष्ट हो जाता है। भारत-सेवक-समाजकी स्थापना करके खुन्होंने राजनीतिक आन्दोलनको दीक्षाका रूप दे दिया। वे स्वयं गरीबीमें पले और बढ़े थे; फिर भी देशके कामके लिये वे प्रसन्नतापूर्वक गरीबीसे ही चिपटे रहे। ये सब बातें आज भी विद्यार्थी-वर्गके मन पर अंकित की जानी चाहिये। यह भी जरूरी है कि गांधीजीके साथ खुनके संबंधकी जानकारी विद्यार्थियोंको रहे। न्यायमूर्ति रानडेका गोखलेजी पर बहुत असर था, जिसलिये रानडेजीका भी जिस दिन परिचय कराया जाय।

दांडी-कूचके कारण नमक-कर पर जो असर हुआ है, खुनकी चर्चा भी की जा सकती है।

त्यागी देशबन्धु

[१६ जून]

कालिदासका अेक वचन है कि “देवोंको अपना अमृत पिलाकर क्षीण बना हुआ कृष्णपक्षका चन्द्रमा शुक्लपक्षके चन्द्रकी अपेक्षा अधिक सुन्दर दिखायी देता है।” देशबन्धु चित्तरंजन दास अिस सुन्दरता तक पहुंचे थे। विद्यार्थी-जीवन पूरा करके जब अुन्होंने अपना व्यवसाय शुरू किया, तब अुन पर अुनके पिताजीके समयका बहुत ज्यादा कर्ज था। अथक परिश्रम करके अुन्होंने वह सारा कर्ज चुका दिया। अिस कर्जके कारण अुन्हें बहुत तकलीफें अुठानी पड़ी थीं। सार्वजनिक कामोंमें वे शरीक न हो पाते थे। ऋणमुक्त होनेके बाद शुक्लपक्षके चन्द्रकी तरह अुनकी समृद्धि बढ़ी। हमेशा दान करते रहने पर भी अुनकी आमदनी तो बढ़ती ही गयी। जिस दिन अुन्होंने अपना आलीशान मकान बनवाकर पूरा किया, अुस दिन अुन्हें कितना आनन्द हुआ होगा ?

परंतु देशबंधुकी देशभक्ति अैसी नहीं थी, जो केवल दान करके ही तृप्त हो जाय। अुन पर त्याग-धर्मका रंग चढ़ चुका था। अुन्होंने अपनी वकालत छोड़ दी, स्वयं गरीब बने, और गरीबोंकी सेवा करनेकी दीक्षा ली। अदालतने अुनका घर कुर्क करनेका फैसला किया। देशबंधु पैसा कमानेकी बात सोचते, तो अेक क्षणके अन्दर वे अपनी सारी मिल्कियत बचा सकते थे। लेकिन अुन पर त्याग-धर्मकी धुन सवार थी। घर बनाते समय अुन्हें जो आनन्द हुआ था, अुससे भी अधिक आनन्द अुस घरको हायसे जाने देते समय अुन्हें हुआ होगा।

यदि अैसे पुण्य-पुरुषोंके त्यागसे भारतीय समाजकी आत्मशुद्धि न हुयी, तो क्या अुससे कोअी आशा रखी जा सकती है? प्राचीन कालसे शिवि और हरिश्चन्द्र जैसे त्यागशूरोंने जो परम्परा चलायी, वह आज भी हिन्दु-स्तानमें मौजूद है। लेकिन अुसके साथ ही यदि हमने दान पर परिपुष्ट होनेकी और निरे स्वार्थी या पामर मनुष्यको ही शोभा देनेवाले मोहके लिये

मलिन जीवन वितानेकी परम्परा भी जारी रखी, तो हम पर अीस्वरकी दया न रहेगी और हम उसके महान् कोपको भी जाग्रत करेंगे।

देशबन्धुजीका देहान्त होते ही महात्माजीने उनके स्मारकके लिये लाखों रुपये अिकट्टा करके उनका वह भव्य प्रासाद छुड़ा लिया, और उसमें अुन्हींके नामसे स्त्रियोंके लिये अेक बड़ा अस्पताल खोल दिया।

स्वराज्यका आन्दोलन चलानेके तरीकेके बारेमें गांधीजीके साथ मतभेद हो जाने पर देशबन्धुजीने पण्डित मोतीलाल नेहरूकी मददसे स्वराज्य पक्षके नामसे अपना अेक अलग दल कायम किया था। लेकिन दोनोंके अन्तःकरण बहुत विशाल थे। असलिये मतभेद दूर होते ही अुन्हींने बड़े प्रेमके साथ गांधीजीसे मेल कर लिया। असमें कोअी शक नहीं कि गांधीजीने तो शुरुसे ही अुनके साथ बड़े प्रेम और आदरका बरताव रखा था।

अखीर-अखीरमें देशबन्धु और गांधीजीके बीच कुछ भी मतभेद नहीं रहा था। अुन्हींने गांधीजीके सारे कार्यक्रमको अपने कार्यक्रमके तौर पर स्वीकार कर लिया था।

२५-१-२३

देशबन्धु-पुण्यतिथि

१६ जून

१ समय

देशबन्धु यानी वंगालकी खानदानियत और वंगालका हृदय! अुनका जीवन अैसा था, मानो अुन्हींने विक्वजित् यज्ञ ही किया हो! देशभक्तोंकी सेवा और भक्ति करना अुनके जीवनका प्रवान सुर था। देशबन्धुजीकी जीवनीसे विद्यार्थियोंको यह सीख दी जाय। ग्राम-संगठन और स्त्रियोंके अुद्धारके विषयमें अस दिन विवेचन किया जाय। अुनके रचे हुअे कुछ भजन गाये जाय, और अुनका 'सागर संगीत' काव्य पढ़ा जाय।

दादाभाजी नौरोजी

३० जून

१ समय

राष्ट्रीय महासभाके इतिहासमें दादाभाजीका नाम हिन्दके दादाके नाते अमर बन चुका है। 'हिन्दुस्तानका खास रोग अुसकी बढ़ती हुई दरिद्रता है; अुसका कारण अंग्रेजोंका राज है; और अुसका इलाज स्वराज्य है;' यह सब सप्रमाण साबित करके दादाभाजीने देशको जाग्रत किया। कांग्रेसके अध्यक्ष-पदसे यह कहकर कि 'अक्सर जी चाहता है कि विप्लव मचा दिया जाय', अुन्होंने इस बातका सूचन किया कि देशकी दुर्दशाको दूर करनेका अुपाय कितनी जल्दी किया जाना चाहिये। इस तरह मानो अुन्होंने स्वदेशी और असहयोगकी नींव डाली। इसीलिअे 'दादा-जयन्ती' मनाना चाहिये। दादाभाजीका सारा जीवन सादा, निर्मल और असाधारण अुद्यमी था। छात्रोंको इस बारेमें भी बहुत कुछ बताया जा सकता है।

४५

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक

[पहली अगस्त]

अीस्वी सन् १८५७ के असफल प्रयत्नके बाद अंग्रेजोंकी सत्ता इस देशमें पूरी तरह जम गयी, क्योंकि आपसी फूटके कारण देशका शारीरिक बल छिन्न-भिन्न हो चुका था। शरीर-बलके इस युद्धमें अनुशासन और अेकताके अभावमें देश हार गया; लेकिन भारतीय राष्ट्र और भारतीय संस्कृति अंग्रेजोंके चंगुलमें न फंसी है; न फंसनेवाली है। हिन्दुस्तानियोंको और अंग्रेजी सल्तनतको इस बातका अखण्ड स्मरण और पूरा विश्वास दिलानेवाली जो चन्द हस्तियां इस देशमें पैदा हुआं, अुनमें से अेक विक्रम-वीर इस लोकको छोड़कर चल बसा है। सन् सत्तावनमें, जब स्वतंत्रताका महाप्रयत्न हुआ, बाल गंगाधर अेक वर्षके बालक थे। जिस शिक्षाके बल पर अंग्रेज यहां विजय प्राप्त कर सके, अुसी शिक्षाको हासिल करके अंग्रेजोंके साथ लड़नेका विचार

रखनेवाले व्यक्तियोंमें तिलक अग्रसर सिद्ध हुये। सार्वजनिक जीवनमें अुनके साथी और गुरु श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकर अंग्रेजी साहित्यको 'शेरनीका दूध' कहते थे। अुस 'दूध' का पान करके तिलकजीने जनहितके लिये राज्यकर्ताओंके साथ लड़नेका निश्चय किया।

शुरुसे स्वदेश-सेवाके सपने देखनेवाले वाल गंगाधरके जीवनमें अिस व्योरेका कोअी खास महत्त्व नहीं कि अुन्होंने बीस सालकी अुम्रमें बी० अे० का अिम्तहान पास किया, और फिर अेल-अेल० बी० की परीक्षा दी, वगैरा वगैरा। सन् सत्तावनके अनुभवसे यह तो निश्चित हो चुका था कि प्रजा-शरीर कमजोर हो चुका है। अुसे बलशाली बनानेका, जन-जाग्रतिका, अेक-मात्र अुपाय राष्ट्रीय शिक्षा है, अिसका निर्णय तिलकने वचनमें ही चिपळूणकर, नामजोशी, आगरकर आदि मित्रोंके साथ कर लिया था। विष्णुशास्त्री स्वाभिमानकी मूर्ति थे। स्वधर्म, स्वदेश और स्वभापाके वारेमें अुनके मनमें आदर और अभिमान था। अिसलिये स्वाभिमानवश सरकारी नौकरीका मार्ग छोड़कर अुन्होंने जन-शिक्षाके कार्यमें अपना जीवन समर्पित कर दिया। देशमें तेजस्वी शिक्षाका प्रसार हो, लोगोंको निर्दोष साहित्य पढ़नेको मिले, देशहितके प्रश्नोंकी चर्चा हो, यही नहीं बल्कि लोगोंकी अभिरुचि धर्मको हानि पहुंचानेवाली न बन जाय, अिस अुद्देश्यसे श्री विष्णुशास्त्री चिपळूणकरने 'न्यू अिंग्लिश स्कूल' नामका अेक स्कूल, 'नवीन किताबखाना' नामकी पुस्तकोंकी अेक दुकान, 'निबंधमाला' नामकी अेक तेजस्वी मासिक पत्रिका और पौराणिक तथा हिन्दू-जीवनसे संबंध रखनेवाली तसवीरों अ्यापनेके लिये 'चित्रशाला' नामके अेक कलागृहकी स्थापना की। आगरकर अुनके समान ही देशाभिमानी थे, लेकिन अुनका अुकाव अंग्रेजी साहित्यकी ओर विशेष होनेसे अुनमें समाज-सुधारकी वृत्ति अवििक तीव्र थी। अिन लोगोंने लोक-शिक्षाका-कार्य शुरु किया। तिलक 'न्यू अिंग्लिश स्कूल' में गणित पढ़ाते थे; वदमें अिस मित्र-मंडलने अेक कॉलेजकी स्थापना की। पहले अुसका नाम 'महाराष्ट्र कॉलेज' रखनेका अिरादा था; लेकिन फिर अुसे 'फर्ग्युसन कॉलेज' का नाम दिया गया। अिमके साथ ही तिलक अेक लॉ क्लब भी चलाते थे। देशभक्तोंका यह युवक-मंडल सभी प्रश्नोंकी चर्चा किया करता था। लेकिन तिलकजीकी अपनी वृत्ति यह थी कि राष्ट्रीय शिक्षाका काम हाथमें लेनेके बाद जहां तक हो सके दूसरे कामोंमें नहीं पड़ना चाहिये।

विद्यार्थी-जीवनमें अनुकी अेकाग्र अध्ययनशीलता और अध्यापनके प्रति अनुकी रुचि व कलाको देखते हुअे अनुकी यह वृत्ति अनुके लिअे स्वाभाविक थी । यही कारण था कि डेक्कन अेज्युकेशन सोसायटीको 'जेस्युइट' संस्थाके ढंग पर चलाने और अुसमें काम करनेवाले व्यक्तियों द्वारा अपना सर्वस्व संस्थाको समर्पित करनेके आदर्शके वारेमें वे आग्रही थे । आगरकरजी अिस विचारसे सहमत न हो सके । मतभेद बढ़ता गया और तिलकजीने फर्ग्युसन कॉलेज छोड़ दिया । जन्मसिद्ध अध्यापकके जीवनमें परिवर्तन हुआ, और अेक पत्र-कारकी हैसियतसे जन-शिक्षाका व्यापक कार्य हाथमें लेकर वे लोकमान्य बने ।

तिलकजीने मराठीमें 'केसरी' नामका पत्र निकालना शुरू किया, और वे अंग्रेजीमें 'मराठा' भी चलाने लगे । जब 'केसरी' के साथ मतभेद अुत्पन्न हुआ, तो आगरकरजीने 'सुधारक' पत्र शुरू किया । अिन दो पत्रोंने समाज-सुधारके वारेमें और हिन्दू समाज-व्यवस्थामें सरकारी हस्तक्षेपकी मर्यादाके वारेमें कभी वर्षों तक चर्चा करके महाराष्ट्रको भली या दुरी किन्तु बड़ी-से-बड़ी शिक्षा प्रदान की । 'केसरी' में फूट पड़नेसे पहले ही अिस युवक-मंडल पर अेक भारी आफत आ पड़ी ।

जब शिवाजी महाराजके अेक वंशज, कोल्हापुरके महाराजको पागल ठहराकर मद्रास भेजा गया, तो अिन देशाभिमानी नवयुवकोंका पुण्यप्रकोप भड़क अुठा । अुन्होंने अिस घटनाकी गहराअीमें अुतरकर 'केसरी' में लेख लिखे, जिसके परिणामस्वरूप 'केसरी' पर मुकदमा चलाया गया । अिस मुकदमेके दरमियान विष्णुशास्त्री वत्तीस सालकी छोटी अुन्नमें चल बसे, और आगरकर तथा तिलकको अेक सौ अेक दिनकी सरकारकी मेहमानगीरी स्वीकार करनी पड़ी । जनमत तैयार करके सरकार तक अुसकी आवाज पहुंचानेके अिरादेसे महामति रानड़े जैसे व्यक्तियोंने पूनामें 'सार्वजनिक सभा' की स्थापना की थी । 'सार्वजनिक सभा' कांग्रेसकी जननी समझी जाती है । अिस सभामें भी अिस प्रश्न पर मतभेद पैदा हुआ कि सरकारके साथ किस हद तक सहयोग किया जाय; और जिन्हें तिलकके विचार पसन्द न थे, अुन्होंने 'डेक्कन सभा' की नींव डाली । अिस तरह पूनावालोंमें परस्पर तीव्र मतभेद रहने लगा और अुसके कारण पूनाका राजनीतिक वायुमंडल गरम रहने लगा । आज भी राजनीतिक चर्चामें और अंग्रेजोंकी नीतिके प्रति सजग रहनेमें सारे देशमें पूना शहर सबसे आगे गिना जाता है ।

जैसे छूटकर आनेके बाद तिलकजीने अपना सारा ध्यान 'केसरी' पर केन्द्रित किया। मराठी भाषाको गढ़कर उसे समृद्ध बनाने, वर्तमान समयके सभी विचारों और राजनीतिक सिद्धान्तोंको मराठी भाषा द्वारा जनसमुदायको समझाने, जनताके भावोंकी सभी छटाओंको उसमें व्यक्त करने और भाषामें राष्ट्रीय जाग्रतिके प्राण अुत्पन्न करनेके विविध अुद्देश्यको सामने रखकर अुन्होंने प्रति सप्ताह लिखना शुरू किया। अगर कोई कहे कि 'केसरी' ने राजनीतिक महाराष्ट्रका निर्माण किया, तो वह अयथार्थ न होगा। लोकमान्यके 'केसरी' की भाषा आडम्बर-रहित, सीधी किन्तु प्रौढ़ होती थी। अुसमें प्रकाशित होनेवाला साहित्य विषय पर पूर्ण अधिकार बतानेवाला, दलीलोंमें युक्त और जोशीला होता था। जब 'केसरी' किसी प्रतिपक्षीके खिलाफ मैदानमें अुतरता, तो अुसकी भाषाका आवेश कमाल तक पहुंच जाना। जोशके साथ कटुता या जहर न रहता हो सो बात नहीं; लेकिन अुसमें भी गंभीरताका पालन बहुत हद तक किया जाता था। प्रतिपक्षीको हरानेके लिये 'केसरी' जिस जहरका प्रयोग करता था, वह बहुतसे लोगोंकी सौम्य अभिरुचिको असहनीय-सा लगता था। अिसलिये बहुतोंने अिस आशयकी आलोचना भी की थी कि तिलककी भाषामें विनय नहीं होता, आदर नहीं होता। अिस आक्षेपका जवाब तिलक अिस तरह दिया करते — "लड़वैया आदमी अिससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकता। अगर मुझे निवृत्तिमें ही समय बिताना होता, तो मैं भी सब तरहकी अुदारता अवश्य दिखलाता; लेकिन जिसे काम करना है, अुसे तो मांका पड़ने पर प्रखर भी होना ही चाहिये।" देगी वृत्तपत्रोंमें 'केसरी' के समान व्यवस्थित, प्रतिष्ठित और लोकप्रिय वृत्तपत्र हिन्दुस्तानमें शायद ही कोई हो। महाराष्ट्रका सार्वजनिक जीवन, हिन्दुस्तानकी जाग्रति, अेशियाकी भवितव्यता, युरोपकी राजनीति और दुनियाकी प्रगतिके बारेमें 'केसरी' में हमेशा विद्वत्तापूर्ण और जानकारीसे भरे हुए प्रौढ़ लेख छपा करते थे। 'केसरी' अत्यन्त नियमित पत्र है। अुसका सब विधान और प्रबंध स्वयं तिलकजीने ही किया था। कहा जाता है कि दुनियामें जहां-जहां नगदी भाषा बोली या पढ़ी जाती है, वहां-वहां 'केसरी' पहुंच जाता है।

लेकिन अेक 'केसरी' ही तिलक महाराजका कार्यक्षेत्र न था। अुन्हें अेक तरफ सरकारके खिलाफ और दूसरी तरफ समाज-सुधारकोंके खिलाफ लड़ना पड़ता था। वास्तवमें तिलक पुराणप्रिय (दकियानूसी) नहीं थे; कभी

सामाजिक सुधार अन्हें बहुत जरूरी मालूम होते थे। फिर भी अन्होंने बहुतसे सुधारोंका विरोध किया, जिससे गलतफहमियां पैदा हुंहीं। लोग अन्हें कुधारक (सुधारोंके दुश्मन) मानने लगे। तिलकजीकी धारणा यह थी कि "समाज-सुधारका काम तो हमेशाका काम है; जिसलिये वह आहिस्ता-आहिस्ता होना चाहिये; खासकर जब विदेशी राज्यके नीचे दबकर जनता आत्म-विश्वास खो बैठी हो और जब विधर्मी पादरियों द्वारा रातदिन हमारी संस्कृति पर प्रहार हो रहे हों, तब समाजको स्वाभिमान-शून्य और हतोत्साह बनाना बड़ी गलती है। फिर अगर हम समाज-सुधारके पीछे पड़ जायं, तो शिक्षित और अशिक्षितके बीच अक खाओ-सी पैदा हो जायगी; अुनमें फूट पड़ेगी और राजनीतिक मामलोंमें हम अधिक कमजोर बन जायंगे। जिसलिये समाज पर हमला करके नहीं, बल्कि धीरे-धीरे समाजको अपने बशमें करके ही यथासंभव सुधार किये जायं। जब सरकारकी शक्तिसे चौंधियाकर हम अुसके सामने नरम बन जाते हैं, तो फिर श्रद्धा और आदरके साथ समाजके सामने भी हम नम्र क्यों न बनें?" अपने अैसे विचारोंके कारण, जहां तक बन पाता, वे 'केसरी'में समाज-सुधारके सवालको अुठाते ही न थे। अितनेमें 'सम्मति वयका विल' — Age of consent bill — पेश हुआ। यह नहीं कि तिलकजीको जिस विलका तत्त्व मान्य न था; फिर भी अन्होंने अुसका घोर विरोध किया। अुनका कहना था कि "अंग्रेज लोग पराये हैं, वे जान-बूझकर हमारी सामाजिक बातोंमें दखल नहीं देते। जिसलिये अुनकी अुदासीनताके कारण ही क्यों न हो, धार्मिक और सामाजिक विषयोंमें हमें जो स्वराज्य मिला है अुसे हम अपने ही हाथों क्यों खोयें? अगर हम खुद ही सरकारको अपने घरके अन्दर प्रवेश करने देंगे, तो हमारा स्वाभिमान और स्वातंत्र्य कम हो जायगा और हम अधिक दुर्बल और पराधीन बन जायंगे।" तिलक सभी पुराने रिवाजोंका पालन नहीं करते थे। पंक्ति-भेदके वारेमें आज जिस स्वतंत्रताका अुपयोग किया जाता है, वे भी अुसका वैसे ही अुपयोग करते थे। अुनका जीवन अत्यन्त सादा और निष्पाप था, और फिर भी अुसमें धार्मिकताका आडम्बर विलकुल नहीं था। समाज और धर्मके अतिकारको स्वीकार करनेके विचारसे अन्होंने विलायतसे लौटने पर प्रायश्चित्त भी किया था, हालांकि विलायतमें अन्होंने खाने-पीनेमें संपूर्ण शुद्धिका पालन किया था। अन्होंने राजनीतिक जलसोंमें मुसलमानों

और औसाखियोंके साथ बैठ कर भोजन किया था। बुन्होंने यह घोषित कर दिया था कि शास्त्रोंमें कहीं यह आज्ञा नहीं मिलती कि अन्त्यर्जोंको अस्पृश्य समझा जाय। उनके कभी घनिष्ठ मित्र सामाजिक सुधारोंमें अगुआ थे।

सन् १८९६में बम्बयीमें ताबून (प्लेग) का प्रकोप हुआ और पूनामें भी उसने प्रवेश किया। यह अेक अनपेक्षित और विलकुल नयी आपत्ति थी। सब लोग इससे घबड़ा अुठे। सरकारको भी यह न सूझा कि प्लेगकी रोकके लिये क्या अिलाज किये जायं। इसलिये 'सेग्रीगेशन' और 'क्वारेण्टाइन' (अलहदा रखना) जैसे कठोर अुपाय बरते गये। और अुनका ठीक-ठीक अमल करवानेके लिये भावना और सभ्यतासे रहित गोरे सिपाहियोंकी नियुक्ति की गयी। प्लेगकी तकलीफकी वनिस्वत अिन सोल्जरोंकी तलाशीका आतंक लोगोंके लिये अधिक असह्य हो अुठा और सर्वत्र हाहाकार मच गया। जिसे जिधर रास्ता मिला, वह अुधर भाग निकला। लेकिन तिलकजीने अैसे बक्त पूना नहीं छोड़ा। वे शहरमें रहकर अेक ओर लोगोंकी मदद करने लगे, और दूसरी ओर अुपायके बदले अपाय करनेवाली विवेक-अून्य सरकारी सख्तीके कारण अुत्पन्न होनेवाले जनक्षोभको 'केसरी' द्वारा प्रकट करने लगे। तिलकजीने तो क्षोभ व्यक्त भर किया था, मगर सरकारको लगा कि बुन्होंने अुसे पैदा किया है। इस लोकक्षोभकी परिणति प्लेग-अफसर रैण्ड साहबकी हत्यामें हुयी। सरकारने अपनी प्लेग-नीतिमें परिवर्तन तो जरूर किया, लेकिन अुग्र स्वरूप धारण करके लोगोंको दवानेमें भी कोअी कसर न रखी। पूनाके सरदार नातु-बन्धुओंको सरकारने नजरबन्द किया, और 'केसरी' पर राजद्रोहका मुकदमा दायर किया। कुछ मित्रोंने तिलकजीको माफी मांगनेकी सलाह दी, लेकिन बुन्होंने कहा—“जो काम मैंने सच्ची नियतसे किया है, अुसके लिये मैं माफी क्यों मांगूं? जिस तरह मल्लाहका काम करनेवाला किसी दिन समुद्रमें डूब भी सकता है, अुसी तरह देगसेवा करनेवालेके लिये जेल-यात्राकी नौबत भी आ सकती है। ये तो हमारे व्यवसायके खतरे हैं। माफी मांगकर मैं देशकी कुछ भी सेवा न कर सकूंगा। दूसरे, यदि अुसके कारण मेरा सत्त्व नष्ट हो गया, तो फिर मुझमें रद्द ही क्या जायगा?” सरकारने अुन्हें डेढ़ सालकी सजा दी; यही नहीं, चल्कि असल कानूनमें भी तब्दीली करके राजद्रोहवाली धाराको अधिक कड़ा बना दिया। कहा जाता है कि जब तिलक जेल गये, तो पहले ही दिन अुन्हें

असा सख्त काम दिया गया कि चक्की पीसते-पीसते वे वेहोश हो गये। लेकिन होशमें आते ही वे फिर काममें जुट गये। अन्होंने छुट्टी नहीं मांगी। छुट्टी मांगना अन्हें बहुत अपमानजनक मालूम होता था। जब अेक सालके बाद वे जेलसे छूटे, तो अुनके शरीरका वजन बहुत ही घट गया था; किन्तु जनतामें अुनका वजन अतना ही बढ़ गया था। वापस आने पर अुन्होंने फिर 'केसरी' को हाथमें लिया और 'पुनश्च हरिः ॐ' कहकर लिखने लगे।

तिलकजीके कारावासके दिनोंमें पश्चिमके संस्कृत-पंडित मैक्समुलरके हाथमें अुनकी लिखी, 'ओरायन्' अथवा 'मृगशिरस्' नामकी कितावें पड़ीं। 'ओरायन्' में ज्योतिषशास्त्रकी दृष्टिसे वैदिक काल-निर्णयकी चर्चा थी। अिस किताबको देखकर मैक्समुलर दंग रह गये, मुग्ध हुअे और अुन्हें लगा कि अिस तरहकी अगाध विद्वत्ता रखनेवाले विद्वानके पास ऋग्वेदका अपना अनुवाद सम्मतिके लिये भेजना चाहिये। लेकिन अुन्हें पता चला कि ग्रंथ-कर्ता तो जेलमें है। अिसलिये अुन्होंने सरकारकी मारफत पहले यह प्रवन्ध करवाया कि तिलकजीको जेलमें कितावें दी जायं, पढ़नेके लिये समय दिया जाय और वृत्ती दी जाय। फिर अुनकी मध्यस्थताके कारण सरकारको नियत अवधिसे छः महीने पहले ही तिलकजीको छोड़ देना पड़ा। जेलमें वेदोंका निरीक्षण करते हुअे अुन्हें सूझा कि आर्योंका मूल निवासस्थान अुत्तर ध्रुवकी ओर होना चाहिये। अुनका यह खयाल हुआ कि वेदोंमें अिस आशयका अुल्लेख मिलता है कि आर्य लोग सुमेरुके आसपास रहते थे। जेलसे छूटनेके बाद, जब ताकी महाराजके मुकदमे-जैसा सिर खानेवाला मुकदमा चल रहा था, अुसी अरसेमें 'आर्कटिक होम अिन दि वेदाज' यानी 'वेदकालमें आर्योंका सुमेरुकी ओरका निवासस्थान' नामक विद्वत्ता और शोध-खोजने भरा हुआ ग्रंथ अुन्होंने प्रकाशित किया। अिस ग्रंथके कारण अुनकी कीर्ति युरोपके विद्वानोंकी मंडलीमें फैल गयी। 'आर्कटिक होम' ग्रंथ लिखते समय अुन्होंने पारसियोंके धर्मग्रंथोंका अव्ययन किया। फिर अीरान, मेसोपोटेमिया, खाल्डिया, सीरिया, असीरिया आदि देशोंके प्राचीन अितिहास और अुनकी संस्कृतिकी ओर अुनका ध्यान गया। और अुन्होंने अपने कअी विद्वन्मान्य निबन्धोंमें यह दिखा दिया कि वैदिक संस्कृतिके साथ अिनका कितना साम्य है। कअी लोग अुनकी विद्वत्ता देखकर अुनसे अनुरोध करते — "आप अिन

राजनीतिक झमेलोंको छोड़ दीजिये, और अपनी विद्वत्तासे दुनियाकी जो बड़ी-से-बड़ी सेवा आप कर सकते हैं कीजिये।” जिसके उत्तरमें वे कहते — “मुझे जिस तरह स्वच्छन्द (मनमानी) नहीं करना है। देशके लिये लड़ना ही मेरा कर्तव्य है। विद्वत्ताका काम करनेवाले पंडित तो हिन्दुस्तानमें कभी पैदा होंगे; आर्यवृद्धि बंध्या नहीं हो गयी है।” अन्के अेक मित्रने अन्से पूछा — “स्वराज्य मिलने पर आप किस विभागके मंत्री बनेंगे?” अन्होंने कहा — “मुझे राजनीतिमें कोअी दिलचस्पी नहीं। स्वराज्य मिलने पर मैं तो गणितका अध्यापक बन जाऊंगा और निश्चिन्तताके साथ विद्यानन्दका सुख लूटता रहूंगा।”

जब तक अपने देशबन्धुओंको भरपेट खानेको नहीं मिलता, तब तक विद्यानन्द-जैसा सात्त्विक आनन्द भी अन्हें हराम मालूम होता था। वे हमेशा कहते — “स्वराज्यका आन्दोलन तो रोटीका आन्दोलन है।” जिसलिये जब सरकारने खेतीके लगानके कानूनमें परिवर्तन करके अनादिकालसे चलते आये जमीनके वंशपरम्परागत स्वामित्वका अधिकार भूमिके वालकोंसे छीन लिया, सात समुद्र पारसे आयी हुअी सरकारको हिन्दुस्तानकी भूमिका स्वामी करार दे दिया, और हिन्दुस्तानी किसानको सिर्फ अपना भाड़ेका नौकर बना दिया, तो तिलकजीने सरकारको भूमिकर न देनेका आन्दोलन चलानेका विचार किया था। लेकिन अुस वक्त जनता अतनी तैयार नहीं हुअी थी।

जिसी अरसेमें बम्बयी और पूनामें हिन्दू-मुसलमानोंमें किसी कारणसे अगड़ हुआ और बहुत मारपीट हुअी। पूनाके हिन्दू बरसोंसे मुहर्रममें शरीक होते थे। अब अन्होंने शरीक होना बन्द कर दिया। तिलकजीने स्वीकार किया था कि जिस दंगेमें दोनोंकी गलती थी; मगर अन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि ज्यादा कसूर मुसलमानोंका ही था। जिसलिये कुछ मुसलमानोंके दिलमें यह बहम पैदा हुआ कि तिलक मुस्लिम जमातके खिलाफ हैं। लेकिन चूँकि वह गलत था, जिसलिये कुछ समयके बाद निकल भी गया। खिलाफत डेप्युटेशनवाले सैयद हुसेन साहबने जाहिरा तौर पर यह बात स्वीकार की है कि ‘हमारी यह धारणा गलत थी कि तिलक मुसलमानोंके खिलाफ हैं।’ क्योंकि लखनऊकी कांग्रेसमें हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच कोअी विरोध और संशय न रखनेके लिये जो अधिकार-विभाजन किया गया था, अुसमें मुसलमान जो कुछ मांगते थे वह सब अन्हें दे देनेकी सलाह

स्वयं तिलकजीने दूसरे नेताओंको दी थी। उस समयका उनका एक मशहूर वाक्य यह है — “पहले देशका विचार होना चाहिये। मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान, यह भेद देशके हितका विचार करते समय मनमें नहीं आना चाहिये।” यह देखकर कि पूनाके हिन्दू-मुसलमानोंमें जो मनमुटाव पैदा हुआ, वह धर्मकी संकुचित कल्पना रखनेके कारण हुआ था, और जिस खयालसे कि हिन्दुओंको भी मुहर्रमके बदले अुत्सव मनानेका कोई साधन मिल जाय, अुन्होंने गणेश-अुत्सव शुरू किया। गणेश-अुत्सवमें स्वयंसेवकों और दूसरे युवकोंके दल भजन गाते हैं; विद्वान् नेता धार्मिक, सामाजिक और कभी-कभी राजनीतिक विषयकी चर्चा करते हैं। जिस तरह लोगोंको समयानुकूल शिक्षा मिलती है।

जिस तरह गणेश-अुत्सवसे धार्मिक जाग्रति हुई, उसी तरह गणेश-अुत्सवसे पहले ही देशाभिमान और स्वाभिमानको जाग्रत करनेके लिये तिलकजीने जो शिवाजी-अुत्सव शुरू किया था, उससे भी बहुत-कुछ जन-जाग्रति हुई। इन दोनों आन्दोलनोंके कारण महाराष्ट्रमें स्वदेशीका प्रचार बहुत हुआ, और शिक्षित तथा अशिक्षितके बीचका भेद कम होता गया। शिवाजी-अुत्सवके कारण ही पुराने इतिहासकी जांच-पड़ताल करनेकी वृत्ति बढ़ी, और कुछ चुने हुये विद्वानोंका ‘भारत-इतिहास-संशोधक-मंडल’ बना।

सन् १९०४ में युनिवर्सिटी अेक्ट पास हुआ, और सरकारने शिक्षा-विभागको — अुच्च शिक्षाको भी — अपने अंकुशके नीचे और भी दबा दिया। सन् १९०५ में बंग-भंग हुआ। बंगालियोंने अर्जियों, सभाओं आदिके रूपमें जो कुछ किया जा सकता था सो सब किया; और अन्तमें स्वदेशी तथा वहिष्कारका महाराष्ट्रीय आन्दोलन शुरू किया। स्वाभाविक रूपसे बंगाली लोगोंको पहली सहानुभूति महाराष्ट्रकी तरफसे मिली। सरकार तो यही समझती है कि अत्याचारका अपदेश भी बंगालको पूनाकी ओरसे ही मिला है। यह राष्ट्रीय मूलमंत्र सब जगह फैल गया कि स्वदेशी, वहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा, इन तीन अुपायोंसे हमें स्वराज्य हासिल करना है। तिलकजीने इसे ‘स्वराज्यकी चतुःसूत्री’ कहा है।

बंगालके राष्ट्रीय नेता स्वराज्यका अर्थ ‘पूर्ण स्वाधीनता’ और वहिष्कारका अर्थ ‘अंग्रेजी राज्य और अंग्रेजी राष्ट्रके साथ संपूर्ण असहयोग’

करते थे। जिस पर बहुतसे नरम नेताओंको यह लगा कि कांग्रेसके लिखे अके नयसूत्र (creed) का बंधन रखना चाहिये। तिलकजीका खयाल था कि असा बन्धन अके तरहसे सब लोग स्वेच्छासे मानते ही आवे हैं। जिसलिखे सौगन्धके साथ हस्ताक्षर करके असे स्वीकार करनेमें अके प्रकारकी मानहानि होगी, और देशके सभी पक्षोंको कांग्रेसमें आने देनेमें असुविधा होगी। जिसलिखे अन्होंने असे पसंद न किया। सूरतमें कांग्रेसके अन्दर फूट पड़ गयी।

बंग-भंगके कारण स्वावलम्बनका मार्ग अस्तित्थार करनेवाली जनता परसे अके तरफ कांग्रेसका अंकुश दूर हुआ और असी वक्त दूसरी तरफ सरकारने दण्डनीतिका अवलम्बन किया। जिसके फलस्वरूप बंगालमें युरोपके आसुरी हथियारका अर्थात् बमका जन्म हुआ। 'देशका दुर्दैव' शीर्षक अपने अके अग्रलेखमें तिलकजीने जिसके लिखे सरकारकी नीतिको ही जिम्मेदार करार दिया। महाराष्ट्रमें बंगालके प्रति संपूर्ण सहानुभूति थी, लेकिन तिलकजीकी दूरन्देश नीतिके कारण अत्याचारकी प्रवृत्ति पर रोक लगी हुआ थी। किसी अरसेमें स्वदेशी और वहिष्कारके आन्दोलनके साथ-साथ शरावबन्दीके आन्दोलनको गति देकर अन्होंने जनताके जीवनको विशुद्ध बनानेका प्रयत्न किया। सरकारको यह भी अच्छा न लगा। शरावकी दुकानोंके सामने खड़े होकर लोगोंको समझानेवाले समाज-सेवकोंको सरकारने दवा दिया। तिलकजीने बम्बयीके मिल-मजदूरोंमें भी शरावबन्दीका आन्दोलन चलाया, जिससे बहुत ही जन-जाग्रति हुआ। लोकमान्य मिल-मजदूरोंसे कहते — "आप लोग अज्ञान और ब्यसनोमें किसलिखे सड़ रहे हैं? अगर आप अपने जीवनमें सुधार कर लेंगे, तो समझिये कि बम्बयी आपकी ही होगी, क्योंकि यहां आपकी तावाद तीन लाख है। आप अपने जीवनमें सुधार कीजिये, अपने बीच अकेता स्थापित कीजिये और वर्तमान स्थितिको समझ लीजिये।" यह शुद्ध सात्त्विक आन्दोलन भी सरकारको भारी पड़ गया। तिलकजीके कारण महाराष्ट्रमें अत्याचार या आतंकवादके आगमनमें बाधा पड़ी थी; लेकिन सरकारने जिसे भी अुलटा ही समझा। देशके आंर सरकारके दुर्भाग्यसे तिलकजीके 'देशका दुर्दैव' नामक लेखमें सरकारको राजद्रोह दिखायी दिया। "जिस देशसे प्रेम करनेका आप दावा करते हैं, अुस देशसे आपको छः सालके लिखे बाहर रखनेमें ही देशका

भला है”, यह कहकर हाजीकोर्टने तिलकजीको देश-निकालेकी सजा दी। “व्यक्तियों और” राष्ट्रोंका भाग्य जिस न्याय-मन्दिरकी अपेक्षा अधिक अुच्च व्यक्तियों और शक्तियोंके हाथमें रहता है; और शायद जगन्नियन्ताकी यह अिच्छा है कि जिस सिद्धान्तके लिये मैं लड़ रहा हूं, उसका अुत्कर्ष मेरे मुक्त रहनेकी अपेक्षा मेरे कारावाससे ही हो” — अिन शब्दोंके साथ अुस महात्माने अुसे दी गयी सजा स्वीकार की। लोकमान्यकी अिस तपश्चर्यासे स्वराज्यका मंत्र प्रत्येक भारतवासीके हृदयमें प्रस्फुरित होने लगा। छः सालकी अिस तपश्चर्याका दूसरा फल ‘गीता-रहस्य’ जैसे साहित्य-रत्नके रूपमें प्रकट हुआ।

तिलकजीको सजा देकर सरकार जो परिणाम पैदा करना चाहती थी, अुससे अलटा ही परिणाम हुआ। तिलकजीकी प्रेरणा और अंकुशके दूर होते ही महाराष्ट्रके युवक निरंकुश बन गये और जो अत्याचार तिलकजीके रहनेसे रका हुआ था तथा तिलकजीको सजा करके जिसे सरकार रोकना चाहती थी, वही अत्याचार महाराष्ट्रमें फूट निकला। नासिकमें पड्यंत्र हुआ, कलेक्टर जैक्सनकी हत्या हुयी और अनर्थ-परंपराका प्रवाह बहने लगा।

करीब-करीब पूरे छः साल बाद अुसके लिहाजसे बूढ़े, क्षीणकाय, किन्तु अुत्साहमें नवयुवक लोकमान्य कर्मयोगका सन्देश लेकर वापस आये। यह सन्देश हिन्दुस्तानकी लगभग सभी भाषाओंमें फैल गया। कर्मयोगके आचार्यने ‘स्वराज्य-संघ’की स्थापना की और देशमें स्वराज्यका आन्दोलन शुरू हुआ। राष्ट्र-मदसे अन्धे बने युरोपियन राष्ट्रोंमें युद्ध शुरू हुआ, और साम्राज्य-सरकारको डर लगा कि अैन मीके पर हिन्दुस्तान वफादार रहेगा या नहीं। अुस वक्त तिलकजीने यह घोषणा करके कि ‘अिस समय ब्रिटिश साम्राज्यके साथ रहनेमें हिन्दुस्तानका हित है’, ब्रिटिश साम्राज्यकी बहुत भारी सेवा की। अितने पर भी शक्की सरकारको तिलकजीके भाषणमें राजद्रोह ही दिखायी दिया। अेक बार फिर सरकारने तिलकजी पर नोटिस तामील किया, लेकिन अिस बार हाजीकोर्टको तिलकजीके निर्दोष होनेमें विश्वास हुआ, और वे बरी कर दिये गये।

अिसके बादका अितिहास विलकुल ताजा है। फौजके लिये रंगरूट भरती करनेके अुनके प्रयत्न, पंजाब और दिल्लीकी तरफ न जानेकी अुन

पर लगायी गयी पावन्दी, भाण्टेग्यूसे मुलाकात, विलायत जानेकी मुमानियत — लेकिन बादमें मिली अिजाजत — विलायतमें किया हुआ काम आदि बातें तो अभी पिछले साल जितनी ताजा हैं। तिलकजीकी सारी जिन्दगी लड़नेमें ही बीती। जैसा कि अेक पत्रकारने कहा है — ‘मृत्युने ही पहली बार अुन्हें शान्ति प्रदान की।’ अुनका निजी जीवन सादा और शुद्ध था। अुनकी राजनीतिक प्रवृत्ति जोशीली और लड़ाकू थी। लड़ावीके मैदानमें अुतरनेके बाद वे किसीसे दयाकी याचना नहीं करते थे, न स्वयं ही किसी पर दया करते थे। फिर भी अुनके मनमें द्वेष नहीं रहता था। अुन्होंने आगरकरजीका कसकर विरोध किया; लेकिन अुनके अन्त समयमें अुनकी सेवा करनेके लिये वे स्वयं अुपस्थित रहे। वे प्रहार तो अपने विद्यागुरु भाण्डारकरजी पर भी करते थे, लेकिन साथ ही अुनकी कद्र करके अुनके प्रति शिष्यभावका पालन भी करते थे। गोखलेजीके साथ अुनकी कभी न बनी। लेकिन सन् १९०४-५ में गोखलेजीने विलायतमें हिन्दुस्तानकी जो सेवा की, अुसकी कद्र करनेके लिये पूना शहरकी तरफसे अुनका सार्वजनिक अभिनन्दन करनेमें स्वयं तिलकजी ही अग्रसर थे। आज यह देखनेका अवसर नहीं कि तिलकजीके राजनीतिक मत क्या थे। भारतीय जगत् अुनके मतोंसे भलीभांति परिचित है। अगर कोई अुन्हें न जानता हो, तो वह तिलकजीका दोष नहीं। अपने मतका प्रचार करनेकी तिलकजीकी शक्ति और कला सचमुच अलौकिक थी। दुनियाको अुनकी विद्वत्ताका साक्षात्कार हुआ है। लेकिन भारतीय जनताके मोक्षके लिये अुन्होंने अपनी सारी विद्वत्ता जन्मभूमिके चरणोंमें समर्पित कर दी थी। ‘स्वराज्य’ अुनके जीवनका आधार-स्तंभ था। वे बुद्धिसे ब्राह्मण और वृत्तिसे क्षत्रिय थे। वे भारतीय जाग्रतिके जनक, आधुनिक महाराष्ट्रके पंचप्राण, राष्ट्रीय पक्षके अध्वर्यु, स्वराज्य-मंत्रके ऋषि, नाँकरगाहीके शत्रु, और हिन्दू-देवीके अनन्य अुपामक थे। जब हम हिन्दुस्तानी लोग अुनके जीवनसे स्वदेश-सेवाकी दीक्षा लेकर स्वराज्यके अधिकारी बनेंगे, तभी अुनकी पराक्रमी आत्माको शान्ति मिलेगी, और तभी अुनका जीवन सफल होगा। स्वप्रयत्नसे मनुष्य जितना जीवन-साफल्य प्राप्त कर सकता है, अुतना अुन्होंने पूर्ण रूपसे प्राप्त कर लिया था।

तिलक-पुण्यतिथि

पहली अगस्त

१ दिन

अस दिन विद्यार्थियोंको तिलकजीकी जीवनी सुनायी जाय । अन्हें यह भी समझाया जाय कि जन्ताको नौकरशाहीके स्वरूपका ज्ञान करानेमें अपना सारा जीवन लगाकर अन्होंने राष्ट्रीय आचार्यका पद प्राप्त कर लिया था । 'स्वराज्य लोगोंका जन्मसिद्ध हक है, और असे प्राप्त करनेके लिये प्रत्येकको अश्वर-निष्ठा पूर्वक निष्काम कर्म करना चाहिये' — अस तिलक-गीता-रहस्य पर विशेष जोर दिया जाय । 'गीता-रहस्य'की अच्छी-अच्छी कण्डिकायें (पैराग्राफ) पढ़ी जायं ।

आजके दिन कभी विद्यार्थी लोकमान्यके स्मरणके साथ यह प्रतिज्ञा ले सकते हैं कि जब तक स्वराज्य नहीं मिलेगा, तब तक वे सरकारी नौकरी नहीं करेंगे ।

नरसिंह मेहता

गुजरातके बिस आदि-कविकी जयन्ती अत्कट भक्तके रूपमें मनायी जानी चाहिये। यदि रास-दर्शन, 'मामेरं', हुण्डी, हारमाला आदि चमत्कारोत्ति कोभी आध्यात्मिक सार निकालने बैठे, तो वह असंभव न होगा। लोक-हृदयको ये कहानियां जैसी हैं वैसी ही, दृश्य अर्थमें, रोचक मालूम पड़ी हैं। लेकिन मेहताजीकी जयन्ती मनाते समय हम लोग बिस झंझटमें न पड़ें तो अच्छा हो। उनुकी दृढ़ भक्ति, सादा जीवन, हरिजन-प्रेम और गरीबीमें संतोष — ये खास-खास बातें उनुकी जयन्तीके दिन विद्यार्थियोंके दिल पर अंकित करायी जायं।

बिस दिन नरसिंह मेहताकी अुत्तमोत्तम 'प्रभातियां' गानेका रिवाज रखा जाय। दूसरा भी अेकाध आख्यान विवेचनके साथ गाया जाय। बिस दिन सबर्ण हिन्दुओंको चाहिये कि वे हरिजन-निवासमें जाकर हरिजनोंके साथ भजन-भोजन बगैराके कार्यक्रम रखें।

मीरा

हिन्दुस्तानके संत कवियोंमें अव्यात्म-स्वातंत्र्यवादी मीराका स्थान कुछ निराला ही है। सामान्य विवाह-संबंध धर्म, अर्थ और कामके लिझे ही है। लेकिन सच्चा विवाह तो अन्तरात्माके साथ ही हो सकता है। मीराने हिन्दुस्तानको यह चीज दी है। यदि बुद्धका राज-त्याग कीर्तन करने योग्य है, तो मीराका अमीरी छोड़ना भी अुतना ही कीर्त्य है। विद्यार्थियोंके मन पर मीराकी भक्ति, निर्भयता और संसार-विमुखता अंकित करनेके लिझे अुसके वैसे भजन चुन कर बिस दिन गाये जायं। 'विपदो नैव विपदः' श्लोकमें मीराकी मनोवृत्ति प्रकट होती है।

अमर शहीदोंमें भी मीराका नाम अमर है।

चोखामेळा

पंढरपुरके पास मंगलवेढे गांवके चारों ओर अेक चहार-दीवारी बनानी थी। बादशाह गरीबोंको बेगारमें पकड़ लाया और अनसे गांवकी रक्षाके लिअे दीवार बनवायी गयी। जिन्हें गांवमें रहनेकी अिजाजत नहीं थी, जिन्हें गांवके रास्तों पर चोरोंकी तरह डर-डरकर चलना पड़ता था, और जिन्हें गांवके बाहरके कतवारखानेके पास रहना पड़ता था, अुन हरिजनोंको भी गांवकी दीवार बनानेमें बेगार करनी पड़ी। जिस तरह अीसा मसीहको वह क्रूस, जिस पर अुसे चढ़ना था, अपने ही हाथों अुठाना पड़ा था, अुसी तरह अपनेको गांवसे बहिष्कृत करनेवाली दीवारें भी हरिजनोंको अपने ही हाथों बनानी पड़ीं।

राजोंकी कोअी गफलत हुआी होगी, अधिकारियोंने जल्दवाजी की होगी, गारा पतला बना होगा, किसी भी कारणसे हो, लेकिन यह दीवार गिर गयी और हरिजनोंकी अेक टोली अुसके नीचे दब गयी। चन्द लोगोंने अफसोस जाहिर किया, कुछ लोग दुःखी भी हुआे, लेकिन अुन्होंने अुन मरने-वालोंको अुस मिट्टीके ढेरके नीचे ही पड़ा रहने दिया। अुन श्रमजीवी गरीबोंकी नींदमें वे क्यों बाधा डालें? अुस मिट्टीके नीचे अुनके मुर्दे सड़ गये, अुनकी मिट्टी बन गयी, और सिर्फ हड्डियां ही रह गयीं। अपनी ही मिट्टीके साथ मिलकर रहनेवाली अुन हड्डियोंको कितनी शांति मिली होगी!

लेकिन अुनकी अिस शांतिमें बाधा डालनेवाली अेक घटना घटी। कुछ अच्छे 'अभंग' (दोहे) पढ़कर अेक संतको स्फूर्ति हुआी। वह खोज करता हुआ मंगलवेढे आया और कहने लगा— "चोखोवाकी हड्डियां कहां पड़ी हैं? मैं अुनको गति देना चाहता हूं।" अुसने वह प्राचीन ढेर खोदना शुरू किया। अेकके बाद अेक हड्डियां मिलने लगीं। वह सन्त पुरुष हाथमें अेक-अेक हड्डी लेकर अुसे अपने कानों तक ले जाता और जिन हड्डियोंसे 'विट्टल! विट्टल!!' नामकी ध्वनि सुनायी देती, अुन्हें अलग रखता जाता। अैसा करते-करते अुसने चोखामेळाकी सब हड्डियां खोज लीं और अुन पर अेक समाधि बनायी।

आज अुन हड्डियोंकी भी मिट्टी बन गयी होगी। लेकिन अखण्ड रूपसे 'विट्टल, विट्टल' का गान करनेवाले चोखोवाके अभंग आज भी महाराष्ट्रकी

अनास्थाके ढेरके नीचे छिपे हुअे मिलेंगे। किसी-किसीने अुन्हें जमा करके किताबोंकी जिल्दोंमें गाड़ दिया है; लेकिन अिससे तो चोखोवाका धाड न होगा।

चोखोवाकी वाणी शुद्ध मराठी, करुण रससे भरी हुअी, अपनी जाति पर होनेवाले अत्याचारोंसे पीड़ित, किन्तु अीश्वर-कृपाके संवंधमें आत्म-विद्वानके साथ बोलनेवाली है। वर्ण और जाति, शास्त्र और पुराण, आदि सब अूपरके स्वांग हैं, अुनमें नहीं फंसना चाहिये। आन्तरिक मर्मको पहचानना चाहिये — अपने और पराये — जी हां, हम सब अत्याचारी सवर्ण हिन्दू बेचारे हरि-जनोंके लिये पराये ही हैं! — सब लोगोंको अैसा अुपदेश देनेवाली चोखो-वाकी वाणी हमारे कण्ठों और हृदयोंमें अखंड निवास करती रहे, अैसा कोअी कार्य हमें करना चाहिये। कहते हैं कि अीसाने मनुष्य-जातिके लिये प्रायश्चित्त किया था; किया होगा। लेकिन अिसमें शक नहीं कि चोखोवाकी नम्र सेवाने महाराष्ट्रके हरिजनोंके लिये चक्रवृद्धि व्याजके हिसाबसे प्रायश्चित्त किया है। चोखामेळाकी पुष्यतिथिके दिन हरिजनोंको बुलाकर अुनसे भजन कराया जाय; हम सब बैठकर भजन सुनें, और हरिजन हमें जो प्रसाद दें, अुसका सेवन करके हम अुन्हें अिस बातका विश्वास दिलायें कि अब वे हमारे लिये पराये नहीं, बल्कि अपने ही हैं।

१९-१२-३९

४९

जनावाजी

जनावाजीके माता-पिताने अुसे अेक भगवद्-भक्तके घर दासीकी तरह रख दिया। जनावाजी जीवन्तभर अुस घरमें रही। अुसने घरके छोटे-मोटे काम करके अपना गुजारा किया और अीश्वर-भक्ति करके अपने जन्मको सार्थक बनाया।

जनावाजीका व्याह नहीं हुआ था। जिनके घर वह रहती थी, वे सब अीश्वर-परायण तथा धर्मभीरु लोग थे। जिस तरह मीरावाजीने भगवान्से विवाह कर लिया था, अुसी तरह जनावाजीने भी किया था। मीरावाजी

राजवंशकी थीं, जिसलिये उन्हें बहुत सताया गया, और अपने बलिदानके बाद वे पूजी जाने लगीं। बेचारी जनावाजीको कौन पूछता या पूजता ?

यों देखा जाय तो जनावाजी महाराष्ट्रकी मीरावाजी है। उसने नम्रताके साथ नामदेवके कुटुम्बियोंकी सेवा की और विवाहके अभावमें जो प्रेम-जीवन अतृप्त था, उसको हृदयसे विठोवाके साथ रममाण होकर समृद्ध बनाया। विठोवा स्वयं आकर उसके बाल संवारते थे, दलने-पीसनेके काममें उसकी मदद करते थे, और जाड़ेके दिनोंमें उसकी गुदड़ी थोढ़कर सो जाते थे।

मीरावाजीके काव्यमें जो प्रेमोत्कट भक्ति है, बिलकुल वही भक्ति भोली-भाली भाषामें जनावाजीके अभंगोंमें दिखायी देती है। यदि भक्ति-काव्यमें स्त्री-सहज भाषा देखनी हो, तो वह जनावाजीके अभंगोंमें देखी जा सकती है। जनावाजीने शरीर-धारणके लिये अन्त तक शरीरश्रम किया। सचमुच जनी जनताकी प्रतिनिधि थी, और उसने जनता-जनार्दनको अपना जीवन समर्पित करके कृतार्थता प्राप्त की थी।

लड़कियोंके स्कूलमें जनावाजीका दिन मनाकर उस दिन उसके अभंग गाते हुये दलने-पीसनेका कार्यक्रम रखा जाय।

१९-१२-३९

[सूचना]

जिसी तरह दूसरे सन्त कवियों, सेवावीरों और राष्ट्रपुरुषोंकी जयन्तियां मनायी जा सकती हैं। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिये कि सारा साल त्यौहारमय न बन जाय। हमने सारे समयका विचार करके यह नीति निश्चित की है कि पचाससे ज्यादा दिन त्यौहारोंमें खर्च न हों। अगर नये त्यौहार बढ़ते हैं, तो पुराने कम होने चाहिये। लेकिन अधिकतर त्यौहार स्थायी होने चाहिये; वरना परंपरा नामकी कोबी वस्तु बन ही न पायेगी और संस्कृति क्षीण होगी।

जीवित अतिहास

हिन्दुस्तानका अतिहास हिन्दुस्तानियों द्वारा नहीं लिखा गया है । रामायण और महाभारत आजके अर्थमें अतिहास नहीं कहे जा सकते । आधुनिक दृष्टिसे तो वे अतिहास हैं भी नहीं । रामायण, महाभारत और पुराणोंमें भी कुछ अतिहास तो है, लेकिन वह सब धर्मका निश्चय करनेके लिये दृष्टान्तरूप है । महावंश और दीपवंश अतिहास माने जा सकते हैं, पर वे लंकाके हैं; और धुनमें अतिहासकी चर्चा बहुत कम हुई है । काश्मीरकी राजतरंगिणीके विषयमें भी यही कहना पड़ता है । तो फिर हमारा अतिहास क्यों नहीं है? जीवनके किसी भी अंगको लीजिये, हम लोगोंने उसमें असाधारण प्रवीणता प्राप्त की है; फिर भी हमारे यहां अतिहास क्यों नहीं है?

अतिहासका अर्थ है मनुष्य-जातिके सम्मुख अुपस्थित हुअे प्रश्नोंका अुल्लेखन । अिनमें से कुछ प्रश्नोंका निराकरण हुआ है और कुछ अभी तक अनिर्णीत हैं । जिन प्रश्नोंका निश्चय हो सका है, वे अब प्रश्न नहीं रहे; धुनका निराकरण हो चुका; अब वे समाजमें — सामाजिक जीवनमें — संस्काररूपसे प्रविष्ट हो गये हैं । जिस प्रकार पचे हुअे अन्नका रक्त बन जाता है, अुसी प्रकार अिन प्रश्नोंने राष्ट्रीय मान्यता या सामाजिक संस्काररूप रूप प्राप्त कर लिया है । खाना हजम हो जाने पर मनुष्य अिस बातका विचार नहीं करता कि कल अुसने क्या खाया था । ठीक अिसी तरह जिन प्रश्नोंका अुत्तर मिल चुका है, अुनके विषयमें भी वह अुदासीन रहता है ।

अब रहा सवाल अनिर्णीत प्रश्नोंका । हम लोग परमार्थी (serious) हैं । हम अनिर्णीत प्रश्नोंको कागज पर लिखकर छोड़ देना नहीं चाहते । अनिर्णीत प्रश्नोंमें मतभेद होते हैं । जितने मतभेद होते हैं, अुतने ही सम्प्रदाय हम रूढ़े कर देते हैं । वेदोंके अुच्चारणमें मतभेद हुआ, तो हमने भिन्न-भिन्न शाखायें खड़ी कर दीं ! ज्योतिषमें मतभेद हुआ, तो वहां भी हमने स्मार्त और भागवत अेकादशियां अलग-अलग नानीं ! दर्शनशास्त्रमें तत्त्वभेद मालूम हुआ,

तो हमने द्वैतवादी तथा अद्वैतवादी सम्प्रदायोंका निर्माण किया। आहार या व्यवसायमें भेद हुआ, तो हमने भिन्न-भिन्न जातियां बना लीं। जहां सामाजिक रीति-रिवाजोंमें मतभेद हुआ, वहां हमने झट अुपजातियां खड़ी कर दीं। अगर गलतीसे कोअी आदमी किसी रिवाजको तोड़ दे या वड़े-से-बड़ा पाप करे, तो अुसके लिअे भी प्रायश्चित्त है; सिर्फ अुसके लिअे नयी जाति खड़ी नहीं की जाती। महान् अैतिहासिक और राष्ट्रीय महत्त्वकी घटनाओंके अितिहासको हम लोग त्यौहारों द्वारा जाग्रत रखते हैं। अिसी तरह हरअेक सामाजिक आन्दोलनके अितिहासको, अुस आन्दोलनके केन्द्रको, तीर्यका रूप देकर हम लोगोंने जीवित रखा है। अिस तरह अितिहास लिखनेकी अपेक्षा अितिहासको जीवित रखना, अर्थात् जीवनमें अुसे चरितार्थ कर दिखाना, हमारे समाजकी खूबी है। चिथड़ोंके बने कागज पर अितिहास लिखकर अुसे सुरक्षित रखना अच्छा है या जीवनमें ही अितिहासका संग्रह करके रखना अच्छा है? क्या यह कहना मुश्किल है कि अिन दोनोंमें से कौनसा मार्ग अधिक सुधरा हुआ है? जब तक हमारी परंपरा टूटी नहीं थी, तब तक हमारा अितिहास हमारे जीवनमें जीवित था। आज भी यदि लोगोंके रीति-रिवाजों, अुनकी धारणाओं, जातीय संगठनों और त्यौहारोंकी खोज की जाय, तो बहुतसा अितिहास मिल सकता है। हां, यह ठीक है कि वह अधिकांशमें राजकीय या राजनीतिक नहीं, बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय होगा। क्या अितिहासके संशोधक अिस दिशामें परिश्रम न करेंगे?

आवश्यक वाचन

अस पुस्तकमें त्यौहारों पर जो छोटी-छोटी टिप्पणियाँ दी गयी हैं, वे कोची त्यौहारोंकी संहिता (codé) तैयार करनेके लिये नहीं, बल्कि त्यौहारोंकी तहमें रहे परम्परागत रहस्य और अनुमें जोड़े जा सकनेवाले तत्त्वोंकी तरफ नयी पीढ़ीका ध्यान खींचनेके लिये हैं। अस तिलकिलेमें पढ़ने लायक बहुत-सा साहित्य है भी, और नहीं भी है। सिर्फ त्यौहारोंका महत्त्व समझानेवाली किताबें हिन्दीमें बहुत कम होंगी। मराठीमें लिखी गयी 'आर्योकि त्यौहारोंका इतिहास' नामकी एक ही किताब अस क्षेत्रको व्याप्त करती है। असके लेखकने नयी जानकारी जोड़कर असका एक नया संस्करण भी प्रकाशित किया है। त्यौहारोंकी स्वतंत्र रूपसे छानबीन करके और हिन्दीमें अस विषय पर जो एक-दो किताबें लिखी गयी हैं, उनका अुपयोग करके असका नया संस्करण तैयार करनेकी आवश्यकता है। 'Hindu Fasts and Feasts' जैसी किताबें भी कुछ नयी दृष्टि दे सकती हैं। लोक-जीवन और समाज-विज्ञानका अध्ययन करनेवाले कुछ गिरे लोग अलग-अलग त्यौहारों पर कुछ तो समभावपूर्वक और कुछ मनोविनोदके लिये लिखते हैं। अुसमें से भी तुलना करने लायक कुछ अंश मिल जाते हैं। बंगाली लेखकोंने भी अंग्रेजी और बंगलामें बहुत-सी जानकारी अिकट्ठी की है। जामनगरके श्री मणिशंकर शास्त्रीकी गुजराती किताब विलकुल पुराने ढंगकी है, लेकिन शोध-खोज करनेवाला अुसमें से भी कुछ न कुछ जानकारी अवश्य प्राप्त कर सकता है। अिसी ढंगकी 'आर्योत्सवप्रकाश' नामकी एक मराठी किताब है। लोकमान्य तिलककी 'ओरायन' (मृगशीर्ष) नामकी किताब परसे नूची हुयी और होलीके त्यौहार पर लिखी गयी 'शिमगा' नामकी एक मराठी किताब है। अुसके बारेमें यह कहा जाता है कि संशोधनकी दृष्टिसे वह मूल्यवान है। सूरतमें भाभी काजीने त्यौहारों पर एक व्याख्यान दिया था, वह भी पढ़ जाने लायक है। हमारे त्यौहारोंके साथ देशकी आबोहवा, ऋतु-चक्र, व्यापारियों और प्रवासियोंकी आवश्यकताओं और किसानों आदिके जीवनका संबंध है। विदेशी लोगोंमें हिन्दू-जीवनका बहुत गहरा अध्ययन

भगिनी निवेदिताने किया है। अुनके कुछ लेख भी मूल्यवान सूचनायें दे सकेंगे।

हमारा प्राचीन राष्ट्रीय जीवन प्रवानतया रामायण, महाभारत और भागवतमें प्रतिबिम्बित हुआ है। देवीके अुपासकोंकी विशेषता देवी-भागवतसे प्राप्त हो सकती है। अिन महाग्रंथोंका परिचय सभीको होना चाहिये। श्री किशोरलालभायीकी अवतारमालाकी 'राम और कृष्ण', 'बुद्ध और महावीर' तथा 'सहजानन्द' नामकी किताबें बालकोंके कामकी हैं। 'सीता-हरण' भी बालकोंके लिअे अच्छी किताब है। कृष्ण-चरित्रके लिअे श्री चिन्तामणराव वैद्यकी 'कृष्ण-चरित्र' तथा वंकिमबावूकी 'कृष्ण-चरित्र' नामक दोनों पुस्तकें विशेष अुपयोगी हैं।

अिसी संबंधमें जैन-साहित्य विशेष रूपसे देखने लायक है। 'त्रिपष्टि-शलाकापुरुष'में तीर्थंकरोंकी जानकारी तो मिलेगी ही। जैसे-जैसे जैन आगमोंके सुलभ सारानुवाद आजके पाठकोंके सामने आते जायंगे, वैसे-वैसे जैन-जीवन-पद्धति अधिकाधिक समझमें आती जायगी। जब यह बात समझमें आ जायगी कि जैन सिर्फ अेक सम्प्रदाय नहीं, बल्कि अेक अैसी जीवन-दृष्टि है, जो विश्वव्यापी होनेकी योग्यता रखती है, तो अुसका असर न्यूनाधिक मात्रामें सभी त्वाहाराँ पर पड़ेगा ही।

हमारे यहां थोड़ा-बहुत बौद्ध साहित्य तैयार हुआ है। 'बुद्धलीला', 'धम्मपद', 'सुत्तनिपात', 'बौद्ध संघका परिचय', 'समाधि मार्ग', 'बुद्ध, धर्म और पंथ', 'बुद्ध-चरित'—आदि पुस्तकोंसे बौद्ध धर्म और अुसके 'अवेर'के महान् संदेशका वायुमण्डल आसानीसे ध्यानमें आ जायगा। श्री धर्मानन्दजीने शांतिदेवाचार्यके 'बोधिचर्यावतार'से अच्छे-अच्छे श्लोक चुनकर हमें दिये हैं। वे पारायण करने योग्य हैं। दुनियाकी शिक्षित जनताको बौद्धधर्म और ब्राह्मधर्म अधिकसे अधिक मात्रामें आर्कापित करते हैं, क्योंकि अुनमें धारणाओं और वादोंका साम्राज्य कम-से-कम है। अुनमें सदाचारकी साधना ही मुख्य है।

सदाचारकी साधना पर अुग्रताके साथ जोर देनेवाला अेक बड़ा धर्म अिस्लाम है। फिर भी अुसमें खास तौर पर यह दृष्टि रखी गयी है कि मनुष्य-स्वभाव पर अधिक नियंत्रण न रखा जाय। अिस्लाममें त्वाहार ज्यादा

नहीं हैं। दो ओरों अन्तर्हीमके धर्मसे ली गयी है। मुहर्रम अतिहासिक त्यौहार माना जायगा। मुहम्मद पैगम्बर साहबकी वफात (मृत्यु) का दिन कहीं-कहीं मनाया जाता है। यह अके अलग सवाल है कि इस्लामी संस्कृतिमें विलासिताके लिये कितना अवकाश है। इस्लामी धर्म तो संयम-धर्मी (व्यूरिटन) ही है। कुरान शरीफ, मुहम्मद साहबकी जीवनी और हदीसके पढ़नेसे अुस संस्कृतिका खयाल आ सकेगा। अमीरअलीकी 'स्पिरिट ऑफ इस्लाम' और आर्नोल्डकी 'प्रीचिंग ऑफ इस्लाम' ये दो किताबें शिक्षकोंको पढ़ लेनी चाहिये। 'कसस-अल्-अंबिया' का अनुवाद कोश कर दे, तो बड़ी सहूलियत हो जाय। अुससे हमें इस्लाममें प्रतिष्ठा पाये हुअे पैगम्बरोंके जीवन-चरित्र मिलेंगे। 'मुस्लिम महात्माओ' नामकी किताब गुजरातमें बहुत मशहूर है।

ओसाकी धर्मके लिये 'नया अहदनामा' और 'सेण्ट जॉनका भागवत', डीन फेरारकी 'ओसाकी जीवनी', केम्पीसकी 'अिमिटेडशन ऑफ क्राइस्ट' और वनियनकी 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' नामकी किताबें अवश्य पढ़ लेनी चाहिये। सेण्ट पॉल, अिग्नेशियस लॉयला, मार्टिन ल्यूथर आदिके बारेमें हिन्दीमें लिखनेकी आवश्यकता है। टॉल्स्टॉयने वादन परिच्छेदोंमें वच्चोंके लिये ओसाकी जीवनी लिखी है। वह भी अच्छी चीज है। रोमन कैथोलिक दृष्टिसे लिखी पापीनी-कृत ओसाकी जीवनी खास पढ़ने योग्य है।

शिक्षकोंको ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, प्रार्यनासमाज, रामकृष्ण मिशन जैसे व्यापक और आधुनिक धर्म-संस्करणके प्रयोगोंके बारेमें अच्छी जानकारी होनी चाहिये, क्योंकि हमें अिसीसे भविष्यकी दिशा मिलती रही है। थियोसॉफीने भी अनेक धर्मोंके अध्ययनके लिये अुपयुक्त साहित्य प्रकाशित किया है। आचार्य श्री आनन्दशंकर ध्रुवने गुजरातीमें जो किताबें लिखी हैं, वे प्रत्येक शिक्षकको पढ़नी चाहिये; खासकर अुनकी 'धर्म-शिक्षण' नामकी पुस्तकमें सब धर्मोंके बारेमें थोड़ी-थोड़ी जानकारी दी गयी है।

सिक्ख धर्मके कार्य बहुत कीमती हैं। अुसके बारेमें हमें अधिक जानना चाहिये। श्री मगनभायी देसाजीकी 'सुखमनी' तथा 'जपजी' नामक गुजराती किताबोंकी भूमिकाओंसे अिसमें काफी मदद मिलेगी।

हिन्दुस्तानके प्रमुख सन्त-कवियोंका अध्ययन प्रत्येक संस्थामें हमेशा होता रहना चाहिये। त्यौहारोंकी योजना बनानेका काम अके तरहसे हिन्दुस्तानकी

विविधरंगी संपूर्ण संस्कृतिका प्रतिविव पैदा करनेका काम है; और वह भी साहित्यके द्वारा नहीं, बल्कि जीवनके अुत्सवों द्वारा। यह महान् काम प्रस्तुत कार्यक्षेत्रके बाहरका है, और जिस कामके अेकदम हो जानेकी अपेक्षा जिसका धीरे-धीरे बढ़ना ही अच्छा है।

व्यापक दृष्टिसे अध्ययन करनेके लिये आवश्यक वाचनकी यह सूची यथेच्छ बढ़ायी जा सकती है। फ्रेजरकी 'गोल्डन वाञ्छु' नामकी किताब नास्तिक दृष्टिसे लिखी गयी है, फिर भी वह अत्यन्त पठनीय है। मूल ग्रंथके १०-१२ हिस्से पढ़नेकी जरूरत नहीं। स्वयं ग्रंथकारने सारांशका अेक हिस्सा तैयार किया है, वह पढ़ लेना काफी है।

पुस्तकालय

कुमारप्पा गांधी स्वराज्य संस्थान

बो-190, यूनिवर्सिटी मार्ग

बापू नगर, जयपुर-302015

हमारे कुछ महत्त्वके हिन्दी प्रकाशन

गोखले — मेरे राजनीतिक गुरु	१-०-०
खादी	२-०-०
हिन्दुस्तान और ब्रिटेनका आर्थिक लेन-देन	०-८-०
महादेवभाभीका पूर्वचरित	०-१४-०
हिमालयकी यात्रा	२-०-०
जीवनका काव्य	२-०-०
उत्तरकी दीवारें	०-१४-०
भावी भारतकी अंक तस्वीर	०-८-०
जीवनशोधन	३-०-०
बापू — मैंने क्या देखा, क्या समझा ?	३-०-०
सर्वोदय	२-८-०
हमारी वा	२-०-०
वा और बापूकी शीतल छायामें	२-८-०
बापू — मेरी मां	०-१०-०
मरुकुंज	१-४-०
गांधीजी	०-१२-०
कलकत्तेका चमत्कार	१-०-०
सरदार पटेलके भाषण	५-०-०
दिल्ली-डायरी	३-०-०
बापूके पत्र मीराके नाम	४-०-०
शिक्षाका माध्यम	०-४-०
भूदान-यज्ञ	१-४-०
अस्पृश्यता	०-३-०
आरोग्यकी कुंजी	०-७-०
खुराककी कमी और खेती	२-८-०
बापूके पत्र — १ : आश्रमकी बहनोंके	१-४-०
बापूके पत्र — २ : सरदार बल्लभभाभीके नाम	३-८-०
अहिंसक समाजवादकी ओर	२-०-०
सरदार बल्लभभाभी — १	६-०-०
सरदार बल्लभाभी — २	५-०-०
महादेवभाभीकी डायरी — १	५-०-०

महादेवभाजीकी डायरी — २	५-०-०
महादेवभाजीकी डायरी — ३	६-०-०
वापूकी छायामें	२-८-०
रचनात्मक कार्यक्रम	०-६-०
रामनाम	०-१०-०
राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी	१-८-०
वर्ण-व्यवस्था	१-८-०
सत्याग्रह आश्रमका इतिहास	१-४-०
हरिजनसेवकोंके लिखे	०-६-०
सयानी कन्यासे	१-०-०
ओशु ख्रिस्त	०-१०-०
शराबबंदी क्यों ?	०-१०-०
जीवनका सव्यय	१-०-०
स्मरण-यात्रा	३-८-०
वापूकी झांकियां	१-०-०
भुस पारके पड़ोसी	३-८-०
स्त्री-पुरुष-मर्यादा	१-१२-०
जड़मूलसे क्रान्ति	१-८-०
गांधी और साम्यवाद	१-४-०
शिक्षाका विकास	१-४-०
शिक्षामें विवेक	१-८-०
गांधीजीकी संक्षिप्त आत्मकथा	१-८-०
ग्रामसेवाके दस कार्यक्रम	१-४-०
सूची शिक्षा	२-०-०
बुनियादी शिक्षा	१-८-०
नजी तालीमकी ओर	१-०-०
शिक्षाकी समस्या	३-०-०
विद्यार्थियोंमें	२-०-०
गोसेवा	१-८-०
विवेक और साधना	४-०-०

डा. क. ल. चर्च अलग

नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद-१४

